दायित्वबोध

त्रैमासिक
जुलाई-सितम्बर 2003
पन्द्रह रुपये

उन बुद्धिजीवियों की पत्रिका जिन्होंने जनता का पक्ष चुना है

इराक : मदमत्त हाथी फिर दलदल में

बहस के लिए

साम्राज्यवाद के बारे में

मार्क्सवाद पर अम्बेडकर के विचार

दूरसंचार का निजीकरण

पूँजीवादी निवेश के कारण तबाह हो रहे हैं गरीब किसान

पश्चिम एशिया : शान्ति की शर्त फलस्तीन की आजादी

दायित्वबोध

हिन्दी में अपने ढंग की अकेली पत्रिका

हर अंक में संग्रहणीय सामग्री

पिछले अंकों में प्रकाशित कुछ महत्वपूर्ण सामग्री

नवम्बर'95–फरवरी'96

• साम्राज्यवाद आज भी कागजी बाघ है (भूमंडलीकृत पूंजीवाद के चरित्र और उसके अन्तर्निहित संकट का विस्तृत विश्लेषण) • सर्वहारा अधिनायकत्व के युग में अर्थनीति और राजनीति : *लेनिन* • जनवादी केन्द्रीयता का सवाल : *माओ त्से-तुङ* • शिखर पर रुदन : आत्मविश्लेषण और आत्म आलोचना से आत्म-भर्त्सना तक पश्चिम की विचारयात्रा • माओ और सुरजीत पातर की कविताएं • आइजेंस्ताइन और *'पूंजी'* पर फिल्म बनाने की योजना

मार्च–अगस्त 1996

• माओवादी नियोजन का सिद्धान्त और व्यवहार : एक स्वप्नदर्शी और व्यावहारिक समाजवाद के पक्ष में • भाषा, इतिहास और वर्ग संघर्ष • आज के दौर में नारीवादी लेखन : कुछ अहम सवाल, कुछ बुनियादी समस्याएं • *हावर्ड फास्ट के विश्वविख्यात उपन्यास* 'दि अमेरिकन' के अंश

सितम्बर–अक्टूबर 1996

• मार्क्स और पर्यावरण • क्रान्ति का विज्ञान • विज्ञान, कला और अधिरचना—*एमिल बर्न्स* • ताचाई की कहानी • 'जनवाद' का विभ्रम और सर्वहारा अधिनायकत्व

नवम्बर'96–फरवरी'97

समाजवाद के सिद्धान्त और प्रयोग,
समस्याओं और चुनौतियों पर
विशेष सामग्री

• माओ के अमर अवदान और महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति की युगान्तरकारी शिक्षाएं • स्तालिन : एक मूल्यांकन • स्तालिन के समय में सोवियत समाजवाद • रूसी क्रान्ति का मूलभूत अभिप्राय—*रोजा लक्ज़ेमबर्ग* • सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति क्या, क्यों और किस प्रकार • सोलहसूत्रीय सर्कुलर • सांस्कृतिक क्रान्ति के सैद्धान्तिक आधार के बारे में—*जार्ज थामसन* • कला में विचारधारात्मक अन्तर्वस्तु और यथार्थवाद पर मार्क्स-एंगेल्स • पाब्लो नेरूदा और माओ त्से-तुङ की कविताएं

मार्च–जून 1997

• मजदूर आन्दोलन पर कुछ सवाल • पेरिस कम्यून की महान शिक्षाएं • सर्वहारा अधिनायकत्व की विजय अमर रहे • सूचना क्रान्ति का सच

जुलाई–अक्टूबर 1997

• एक ऐतिहासिक विश्वासघात और उसके बाद की अंधकारमय अर्द्धशताब्दी • माओवादी अर्थशास्त्र और समाजवाद का भविष्य • चाङ चुन-चियाओ का लेख: बुर्जुआ वर्ग पर सर्वतोमुखी अधिनायकत्व लागू करने के बारे में • सेर्गेई आइजेंस्ताइन कला का मनोविज्ञान • मार्क्सवाद के विरोध में ''नव'' दक्षिणपंथी लोकरंजकतावाद के नये-नये मिथक

नवम्बर '97–फरवरी '98

बेर्टोल्ट ब्रेष्ट की अट्ठाइस कविताएं व ब्रेष्ट पर मोहन थपलियाल का लेख • गैर सरकारी स्वयंसेवी संगठनों और दाता एजेंसियों का असली चरित्र • मदर टेरेसा और उनके उत्तराधि- कारियों का ''मिशन'' : सेवा का सच • महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के दस्तावेज • माओ त्से-तुङ की कविताएं

मार्च–जून 1998

चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की नवीं कांगेस में प्रस्तुत रिपोर्ट • 'कम्युनिस्ट घोषणापत्र' की 150वीं वर्षगांठ पर विशेष लेख • ग्राम्शी का लेख 'बुद्धिजीवी' • पूंजीवाद की पूंजीवादी समालोचना के निहितार्थ • मदर टेरेसा : मिथक और यथार्थ • शशि प्रकाश की पच्चीस कविताएं

जुलाई–दिसम्बर 1998

ब्रेष्ट, लोर्का और रॉबसन की जन्मशती के अवसर पर
विशेष सामग्री :

• बेर्टोल्ट ब्रेष्ट और उनका थियेटर • लोर्का की कविताएं • लोर्का पर नेरूदा की कविता • रॉबसन पर नाजिम हिकमत की कविता • उत्तर- औपनिवेशिक सिद्धान्त और 'उत्तर' -अवस्था : *एजाज अहमद* • गैर सरकारी संगठनों का असली मिशन • भूण्डलीकरण और सामाजिक विज्ञान • माओकालीन चीन में मार्क्सवाद : *जार्ज थामसन* • हेनरिख हाइने, फर्डिनांड फ्रेलिग्राथ, जार्ज वेयेर्थ और पाब्लो नेरूदा की कविताएं

जुलाई–सितम्बर 1999

• स्वयंसेवी संगठनों और दाता- एजेंसियों का नेटवर्क : एक खतरनाक साम्राज्यवादी कुचक्र • तीसरी दुनिया में कृषि-अनुसंधान का ढांचा • भारतीय क्रान्ति व कृषि प्रश्न • बेर्टोल्ट ब्रेष्ट की सर्वाधिक महत्वपूर्ण सैद्धान्तिक कृति 'थियेटर का एक संक्षिप्त तर्कशास्त्र'

अक्टूबर–दिसम्बर 1999

• जनता के सांस्कृतिक आन्दोलन की चुनौतियां • 'बीसवीं सदी की दूसरी महानतम क्रान्ति और उसकी प्रासंगिकता' • बुर्जुआ से सर्वहारा क्रान्ति की ओर : *जार्ज थामसन* • मूलाधार और अधिरचनाओं के सम्बन्ध के बारे में : *वोलोशिनोव* • विद्रोही कवि काजी नजरुल इस्लाम • *इस्तवान मेस्जारोस* की चर्चित कृति 'बियॉण्ड कैपिटल' की समीक्षा

जनवरी–मार्च 2000

• कम्युनिस्ट घोषणापत्र की स्मृति में : *अंतोनियो लाब्रियोला* और *रेमंड लोट्टा* के महत्वपूर्ण लेख • जार्ज लुकाच के विरोध में : *ब्रेष्ट* • कहां हैं हमारी भाषा के वे कारीगर हाथ : *आलोक श्रीवास्तव* • माओवादी चीन में स्त्रियां • महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के दस्तावेज और लेख • नजरुल की कविता 'विद्रोही' • नये वर्ष में हड़तालों की लहर और इसकी विफलता के सबक

जुलाई–सितम्बर 2000

आपातकाल के कुछ अनुत्तरित यक्ष-प्रश्न और हमारा समय *हांस आइसलर* का लेख एक नई संगीत संस्कृति के निर्माता समाजवादी काल में वर्ग संघर्ष के नियम • स्त्री मुक्ति का राजनीतिक अर्थशास्त्र • महत्वपूर्ण होती है आम जनता : एक गणितज्ञ की आस्था

जनवरी–मार्च 2001

इतिहास के लिए कुछ कार्य- स्थगन प्रस्ताव •औपनिवेशिक भारत में लोकभाषाओं एवं लिपियों का शिक्षा व्यवस्था से निष्कासन • सोवियत संघ में समाजवाद की आर्थिक समस्याओं पर माओ का लेख • राष्ट्रीय सवाल पर जार्ज थामसन का लेख • 'मजदूर वर्गीय संगीत की समस्याएं'—हांस आइसलर • महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के दस्तावेज

जुलाई–सितम्बर 2001

भारतीय कृषि का संकट और नरोदवादी-राष्ट्रवादी ''मार्क्सवाद'' • शेयर बाजार—एक मार्क्सवादी विश्लेषण : फ्रेडरिक एंगेल्स, हरपाड़ बराड़, तापस चक्रवर्ती, सत्यम वर्मा और प्रो. अरुण कुमार के लेख • निरंकुश दमनकारी राज्यतंत्र की ओर धकेलती आर्थिक नीतियां • 'सोवियत संघ में समाजवाद की आर्थिक समस्याएं ' की आलोचना—माओ त्से-तुङ • खाद्यान्न की वैश्विक राजनीति • महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के दस्तावेज

अक्टूबर 2001–मार्च 2002

• दक्षिण एशिया में अमेरिकी साम्राज्यवाद की चुनौती • अफगानिस्तान और उसके बाद • एन.जी.ओ. : साम्राज्यवाद के चाकर • एन.जी.ओ. की सैद्धान्तिकी और व्यवहारशास्त्र के बारे में हमारी समझ कैसे बनी? • वास्तविक पूँजीवाद की असलियत • जनता की सुरक्षा के लिए जरूरी क्या है?

पत्रिका के पुराने अंकों के लिए लिखें :

प्रत्येक अंक का मूल्य : पन्द्रह रुपए

11 साम्राज्यवाद के बारे में

आज देश भर में क्रान्तिकारी परिवर्तन की व्यावहारिक कार्रवाइयों में जुटे संगठन और ग्रुप भूमण्डलीकरण के दौर में उभरी साम्राज्यवाद की नयी प्रवृत्तियों-परिघटनाओं के अध्ययन-विश्लेषण में जुटे हुए हैं। बेशक किसिम-किसम के 'मुक्त चिन्तक' भी आज के साम्राज्यवाद की ''नई-नई चीजों'' से चकित-विस्मित हो अपने-अपने ढंग से चिन्तन-मनन कर रहे हैं। आज के साम्राज्यवाद को समझने के लिए अहम बात यह है कि साम्राज्यवाद की क्लासिकी मार्क्सवादी समझ की बुनियादी पहुँच-पद्धति पर कमान रखते हुए नई प्रवृत्तियों-परिघटनाओं का सृजनात्मक ढंग से विश्लेषण किया जाये। इस नजरिये से प्रस्तुत आलेख महत्वपूर्ण है। एक कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी ग्रुप द्वारा साम्राज्यवाद पर आयोजित विभिन्न सेमिनारों-गोष्ठियों में बहस के लिए इसे प्रस्तुत किया गया था।

मार्क्सवाद पर अम्बेडकर के विचार 21

जाति प्रश्न भारतीय समाज की एक बड़ी समस्या है जिससे कन्नी काटकर क्रान्ति की राह पर आगे नहीं बढ़ा जा सकता, और जाति प्रश्न की बात करते ही हमारे सामने डा. भीमराव अम्बेडकर आ खड़े होते हैं। समाज बदलने की चाहत रखने वाले और किसी न किसी रूप में इसके लिए प्रयासरत लोगों के बीच अम्बेडकर को लेकर तीन तरह की प्रवृत्तियां दिखाई देती हैंएक ओर उन्हें यांत्रिक ढंग से खारिज कर देने की प्रवृत्ति रही है तो दूसरी ओर अनालोचनात्मक ढंग से, श्रद्धाभाव से उन्हें पूजने जैसी प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। इसके साथ ही, मार्क्सवाद और अम्बेडकरवाद की खिचड़ी पकाने की तीसरी प्रवृत्ति भी मौजूद है। आज सबसे बड़ी जरूरत अम्बेडकर के विचारों के साथ खुले दिमाग से 'पॉलिमिक्स' करने की है। तेलुगू की प्रसिद्ध लेखिका **रंगनायकम्मा** का यह विचारोत्तेजजक निबन्ध उनकी पुस्तक 'जाति प्रश्न के समाधान के लिएबुद्ध पर्याप्त नहीं, अम्बेडकर भी पर्याप्त नहीं, मार्क्स जरूरी हैं' का एक अध्याय है।

पश्चिम एशिया : शान्ति की शर्त फलस्तीन की आजादी

पश्चिमी तट और गाजापट्टी पर पिछले तीन साल से जारी इजरायली हमले ने समूची फलस्तीनी धरती को कत्लगाह में तब्दील कर दिया है। इतिहास गवाह है कि कोई भी कौम कभी भी इतनी पीछे नहीं धकेली जा सकती कि वह आगे बढ़ने का साहस हमेशा के लिए खो बैठे। न ही किसी कौम का पूरा सफाया ही किया जा सकता है। फीनिक्स पक्षी की तरह बार-बार राख से उठ खड़े होने वाला इंतिफादा यही साबित कर रहा है कि फलस्तीनी राष्ट्र के सवाल को दरकिनार कर पश्चिम एशिया में शान्ति नहीं कायम की जा सकती है। 59

दूरसंचार का निजीकरण

सूचना युग और सूचना राजमार्ग के बारे में बड़े-बड़े दावे प्रस्तुत किये गये हैं। बिल गेट्स और निकोलस नेग्रोपोन्ते जैसे स्वयम्भू स्वप्नदर्शी एक नये स्वर्णयुग की तस्वीरें पेश करते हैं। इस रामबाण का दूरसंचार उद्योग की वास्तविकता से कोई लेना-देना नहीं है। बहुत सी उपयोगी और सम्भावनायुक्त तकनोलॉजी ठण्डे बस्ते में डाल दी जाती हैं क्योंकि वे मुनाफा नहीं देतीं। इसके विपरीत, बहुत सी तकनोलॉजी केवल विलासितापूर्ण उपयोग के लिये विकसित की जाती हैं। सूचना राजमार्ग की "अन्तर्वस्तु" पर विज्ञापन और मनोरंजन हावी रहते हैं। यह सच्चाई बिल्कुल उजागर हो चुकी है। 65

इस अंक में

आपकी बात 4

अपनी बात

मदमत्त हाथी फिर दलदल में 5

पूँजीवादी निवेश के कारण तबाह हो रहे हैं गरीब किसान
प्रो. निर्मल सिंह आजाद 9

बहस के लिए

साम्राज्यवाद के बारे में 11

मार्क्सवाद पर अम्बेडकर के विचार *रंगनायकम्मा* 21

महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के दस्तावेज

पूंजीवादी पथगामी पूंजीवादी उत्पादन सम्बन्धों के प्रतिनिधि हैं
चुआङ लान 17

पचासवीं बरसी पर विशेष

स्तालिन के निधन के पचास वर्ष बाद *लूडो मार्टेन्स* *50*

लेख

इराक : संगठित और व्यापक होता प्रतिरोध संघर्ष
सत्यप्रकाश 57

क्या हम पहले भी यह सब देख चुके हैं? *मूमिया अबु-जमाल* 58

पश्चिम एशिया : शान्ति की शर्त फलस्तीन की आजादी
योगेश पन्त 59

दूरसंचार का निजीकरण *निकोलस बरान* 65

"गड़बड़ी करना, फिर असफल होना, फिर गड़बड़ी करना, फिर असफल होना...जब तक सर्वनाश न हो जाये; साम्राज्यवादी और दुनिया के तमाम प्रतिक्रियावादी जनता से निपटने के लिए इसी राह पर चलते हैं, और वे इसके खिलाफ हरगिज नहीं जायेंगे। यह एक मार्क्सवादी नियम है। जब हम कहते हैं कि 'साम्राज्यवाद बहुत क्रूर है' तो इसका मतलब यह होता है कि उसकी प्रकृति कभी नहीं बदल सकती, तथा साम्राज्यवादी अपना सर्वनाश होने से पहले न तो कभी अपने हाथ से कसाई का छुरा छोड़ेंगे और न ही भगवान बुद्ध बनेंगे।
संघर्ष करना, असफल होना, फिर संघर्ष करना, फिर असफल होना, फिर संघर्ष करना...जब तक विजय प्राप्त न हो जाये; यह जनता की राह है और वह भी इसके खिलाफ हरगिज नहीं जायेगी। यह दूसरा मार्क्सवादी नियम है।"

माओ त्से-तुङ

दायित्वबोध

वर्ष–10 अंक–1
जुलाई–सितम्बर 2003

सम्पादक मण्डल :
विश्वनाथ मिश्र
अरविन्द सिंह

आवरण एवं सज्जा :**रामबाबू**

सम्पादकीय कार्यालय :
29, यू.एन.आई. अपार्टमेंट, जीएच-2
सेक्टर-11, वसुंधरा, गाजियाबाद-201010
फोन : (0120) 3096414
ईमेल : **dayitvabodh@rediffmail.com**

एक प्रति : 15 रुपये
वार्षिक : 60 रुपये (डाक व्यय 15 रुपए अतिरिक्त)
आजीवन : 1000 रुपये

•

सम्पादन एवं संचालन
पूर्णतः अवैतनिक एवं अव्यावसायिक
कम्पोजिंग : **कम्प्यूटर प्रभाग,**
राहुल फाउण्डेशन, लखनऊ-226 010

स्वत्वाधिकारी विश्वनाथ मिश्र द्वारा एम. आई.जी. 134, राप्तीनगर फेज-एक, गोरखपुर से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा आफसेट प्रेस, नखास, गोरखपुर से मुद्रित

आपकी बात

'दायित्वबोध' के साथ जब भी लम्बा और टिकाऊ रिश्ता बनता दिखता है, आप लोग उसे तोड़ देते हैं। क्या आप पाठक और पत्रिका के बीच सम्बन्ध में भी ब्रेष्ट का 'एलिएनेशन इफेक्ट' पैदा करना चाहते हैं? मेरे ख्याल से यह उचित नहीं है। पत्रिका को किसी भी तरह नियमित बनाइये। यदि अनियमितता का कारण वित्तीय है तो लिखिये, हम लोग मदद जुटाने का पूरा प्रयास करेंगे। वैसे आपने अपील तो की ही है। मैं कुछ मित्रों की सदस्यता राशि के अलावा अतिरिक्त सहयोग भी जुटाकर भेजने की कोशिश करूंगा।

'दायित्वबोध' भारत के वामपंथी आन्दोलन में एक बेहद महत्वपूर्ण काम कर रही है। आज कम लोग इसके महत्व को समझ रहे हैं लेकिन इसका मूल्यांकन करना ही होगा। यदि यह इसी सघन अन्तर्वस्तु के साथ कम से कम दो महीने पर नियमित आ सके तो आन्दोलन की बड़ी सेवा होगी। मेरे योग्य और कोई भी काम हो तो लिखियेगा।

शेखर प्रसाद, पटना, बिहार

मैं पिछले आठ वर्षों से 'दायित्वबोध' का नियमित पाठक हूं। दायित्वबोध का हरेक अंक इतनी जरूरी और महत्वपूर्ण सामग्री से भरा होता है कि इस पर अलग से विचार-गोष्ठी रखी जानी चाहिए। हम कुछ मित्र यहां मिलकर इसके लेखों को पढ़ते और चर्चा करते हैं। यदि कभी आप में से कोई यहां आ सके तो हमारा मार्गदर्शन हो सकेगा।

आप अपनी टीम में मुझे शामिल समझिये।

रामकृष्ण भारती, गुवाहाटी

हिंदी की पत्रिकाओं में 'दायित्वबोध' की अपनी विशिष्ट पहचान बनी है। मार्क्सवादी-लेनिनवादी तथा माओवादी विचारों को आप अत्यन्त प्रखरता के साथ प्रस्तुत करते हैं। लेकिन मुझे इसमें सबसे अच्छी चीज जो मिलती है वह है भारत तथा विश्व के ज्वलन्त प्रश्नों का ऐसा स्पष्ट और बेलाग विलेषण जो और कहीं नहीं मिलता। भारत में क्रान्तिकारी आन्दोलन की समस्याओं, सांस्कृतिक आन्दोलन की समस्याओं, कृषि प्रश्न, पूंजीवादी विकास, साम्राज्यवाद के आपसी अन्तरविरोध तथा उसकी आर्थिक समस्याओं पर आपका विश्लेषण बहुत कुछ सोचने का देता है। लेकिन लगता है कि जिन्हें सबसे पहले सोचना चाहिये वे लोग अभी सोचने को तैयार नहीं हैं। (जब तैयार होंगे तब जक जाने सोचने लायक रह भी पायेंगे या नहीं।) यह ठसपन भारतीय समाज की पुरानी और गहरे पैठी व्याधि है। लेकिन आपको हथौड़े से चोट करते रहना होगा। मगर लगता है कि पत्रिका काफी अनियमित हो जाती है। इसे दुरुस्त करिये।

सतबीर, हरियाणा

पाठकों से

विभिन्न मजबूरियों के कारण दायित्वबोध के पांच अंक स्थगित रहे। अक्टूबर 2001–मार्च 2002 अंक (जनवरी 2002 में प्रकाशित) के बाद यह अंक आपके हाथों में है। अगला अंक जनवरी के प्रथम सप्ताह में आपके पास होगा। –सम्पादक

आवरण के चित्र

इजरायली दमन विरोधी पोस्टर, 1999
फासिस्ट सत्ता के खिलाफ इन्तिफादा; अब्दुल रहमान अल मोजायन, 1988
हां, फलस्तीन हमारा है; बुरहान करकुतली, 1982

अपनी बात

मदमत्त हाथी फिर दलदल में

इराक पर अमेरिकी कब्जा कायम हुए अभी कुछ महीने ही हुए हैं, लेकिन इस बर्बर साम्राज्यवादी कुकृत्य की तार्किक परिणतियाँ अभी ही उभरकर सामने आने लगी हैं तथा उस भविष्य की दिशाएँ भी कुछ-कुछ स्पष्ट होने लगी हैं जब साम्राज्यवादी शक्तियों के विरुद्ध विश्व-स्तर पर नये सिरे से, नयी जमीन पर, दुर्दान्त शक्तिशाली जनसंघर्ष उठ खड़े होंगे।

अमेरिका के इराक युद्ध के गहरे ऐतिहासिक निहितार्थों के उद्घाटित और फलित होने में बहुत समय नहीं लगने वाला है। इराक में अमेरिकी बर्बरों के दुस्साहसिक अभियान ने वस्तुतः पूरे पश्चिम एशिया में एकत्र बारूद की ढेरी तक आग पहुँचाने वाली रस्सी में माचिस की जलती तीली लगा दी है। आने वाले दिनों में पश्चिम एशिया के जनसंघर्षों का प्रचण्ड वेगवाही तूफान न सिर्फ साम्राज्यवादी विश्व में अमेरिका की नेतृत्वकारी भूमिका को समाप्त करने में अहम भूमिका निभाने वाला है, बल्कि असाध्य दीर्घकालिक संकट और ठहराव के थपेड़ों में झूलते समूचे विश्व-पूँजीवादी तंत्र पर सांघातिक चोट करने वाला है। पिछली सदी में वियतनाम और पूरे हिन्द-चीन ने अमेरिका और सभी साम्राज्यवादियों को जो झटका दिया था, उससे भी कहीं अधिक गम्भीर नतीजे इराक में और पूरे पश्चिम एशिया में उन्हें झेलने पड़ सकते हैं। अमेरिकी शासकों की तमाम दम्भोक्तियों के बावजूद, यह सच्चाई अब छिपाये नहीं छिप पा रही है कि मदमत्त हाथी एक बार फिर दलदल में जा धँसा है।

पश्चिम एशिया विगत आधी सदी से भी कुछ अधिक समय से साम्राज्यवादी विश्व के तमाम अन्तरविरोधों की एक गाँठ बना रहा है। यह एक लगातार तपता हुआ क्षेत्र बना रहा है, जिसमें कभी यहाँ, कभी वहाँ आग भड़क उठती रही है और लगातार यह सम्भावना बनी रही है कि पूरा क्षेत्र ही इसकी चपेट में आ जाये। इराक में अमेरिकी विनाशलीला ने इस सम्भावना को अभूतपूर्व ढंग से प्रबल बना दिया है।

पश्चिम एशिया विगत आधी सदी से भी कुछ अधिक समय से साम्राज्यवादी विश्व के तमाम अन्तरविरोधों की एक गाँठ बना रहा है। यह एक लगातार तपता हुआ क्षेत्र बना रहा है, जिसमें कभी यहाँ, कभी वहाँ आग भड़क उठती रही है और लगातार यह सम्भावना बनी रही है कि पूरा क्षेत्र ही इसकी चपेट में आ जाये। इराक में अमेरिकी विनाशलीला ने इस सम्भावना को अभूतपूर्व ढंग से प्रबल बना दिया है।

इराक पर हमले का औचित्य सिद्ध करने के लिए अमेरिकी शासक वर्ग ने बुर्जुआ मीडिया के भाड़े के टट्टुओं की मदद से जितने भी झूठ गढ़े थे, वे सभी आज तार-तार हो चुके हैं। जैव-रासायनिक हथियारों के जखीरे और नाभिकीय हथियारों के गुपचुप निर्माण का काफी शोर अमेरिकी शासकों ने मचाया था। वर्ल्ड ट्रेड सेण्टर पर हमले के पीछे सद्दाम हुसैन का हाथ होने तथा ओसामा बिन लादेन से उनके सम्बन्ध का भी काफी शोर मचाया गया था। ये दोनों बातें इस कदर बेशर्म झूठ साबित हुईं कि अब अमेरिका-ब्रिटेन के सत्ताधारी और उनके अन्धप्रचारक भी इस मसले पर कुछ कहने से कतराने लगे हैं।

बुश-ब्लेयर गिरोह के चेहरों पर कालिख पुत गयी है। न सिर्फ उनके अपने देशों की जनता में उनके विरुद्ध नफरत और गुस्से का सैलाब भड़क उठा है, बल्कि शासक वर्गों के बीच भी अन्तरविरोध उठ खड़े हुए हैं। यह बात अब दुनिया की आम जनता के बीच दिन के उजाले की तरह साफ हो चुकी है कि अमेरिका की इस ऐतिहासिक बर्बरता के पीछे बस एक ही उद्देश्य था, और वह था, पश्चिम एशिया की अकूत तेल-सम्पदा पर अपना निर्णायक एकाधिकार कायम करना। कहने की जरूरत नहीं कि तालिबानी आतंकवाद और ओसामा बिन लादेन के सफाये के नाम पर अफगानिस्तान पर हमले के पीछे भी अमेरिका का मूल उद्देश्य था कैस्पियन सागर के द्रोणीक्षेत्र (बेसिन) के विशाल तेल भण्डार तक अपनी पहुँच सुनिश्चित करना। पश्चिम एशिया के बाद, दुनिया का सबसे बड़ा तेल भण्डार कैस्पियन सागर-क्षेत्र का ही है, जिस पर दुनिया भर के साम्राज्यवादियों की गीध-दृष्टि टिकी हुई है।

अमेरिकी सत्ताधारी इराक पर कब्जा कायम होने से पहले ही बड़बोलेपन के साथ ऐसे दावे कर रहे थे कि बहुत जल्दी ही इराक में शान्ति-व्यवस्था कायम हो जायेगी, कि सद्दाम की तानाशाही और कुशासन से त्रस्त जनता का उन्हें व्यापक समर्थन हासिल होगा, कि जल्दी ही वहाँ एक "लोकप्रिय सरकार" की स्थापना के बाद अमेरिकी सेनाओं की वापसी का सिलसिला शुरू हो जायेगा, वगैरह-वगैरह। वास्तव में उनकी सोच यह थी कि हथियार के बूते एक कठपुतली सत्ता की स्थापना वे जल्दी ही कर लेंगे और इराकी तेल पर अमेरिकी बहुराष्ट्रीय दैत्यों का नियंत्रण सुनिश्चित हो जायेगा। लेकिन उनकी यह सोच एकदम हवाई सिद्ध हुई। शिया-सुन्नी और कुर्द आबादी के बीच के अन्तरविरोधों को हवा देकर फायदा उठाने का ख्याल भी धरा का धरा रह गया।

आज की सच्चाई यह है कि पूरे इराक में अमेरिकी सेना पर छापामार ढंग से हमले हो रहे हैं। प्रतिरोधक दस्ते अब ज्यादा से ज्यादा संगठित होते जा रहे हैं और देशव्यापी स्तर पर छापामार जन-युद्ध का स्वरूप उभरता हुआ दीखने लगा है। थके-उकताये और बौखलाये हुए अमेरिकी सैनिक यहाँ-वहाँ निहत्थी जनता पर गोलियाँ बरसा रहे हैं और अपने को ज्यादा से ज्यादा, एक क्रुद्ध जनसागर के बीच फँसा हुआ पा रहे हैं। एक सुविधासम्पन्न समाज के इन युवा सैनिकों को पता नहीं कि पश्चिम एशिया के रेगिस्तानों और अपरिचित इलाकों में उन्हें कब तक फँसे रहना होगा, जबकि उन्हें बताया यह गया था कि यह महज कुछ महीनों का अभियान होगा।

उधर अमेरिकी हवाई अड्डों पर लगातार उतरते सैनिकों के ताबूतों के चलते पूरे देश में बुश प्रशासन के विरुद्ध आक्रोश बढ़ता जा रहा है, जो लगातार आतंकवाद का हौव्वा खड़ा करने के बावजूद और अन्धराष्ट्रवादी प्रचार की तगड़ी खुराकों के बावजूद रोके नहीं रुक पा रहा है। अमेरिकी समाज में तेजी से स्थिति कुछ वैसी ही बनती जा रही है, जैसी वियतनाम युद्ध के दिनों में थी। शासक वर्गों के बीच भी अन्तरविरोध बढ़ रहे हैं। बुश की नीतियों की मुखर आलोचना हो रही है और इराक युद्ध के भारी खर्च के लिए बुश को अपनी पार्टी के प्रतिनिधियों से भी तीखी आलोचना का सामना करना पड़ रहा है। अमेरिकी तेल-सम्राट बेचैन हैं कि इराकी तेल से निर्बाध अकूत लाभ कमाने की स्थितियाँ आखिर कब तक बन पाएँगी। बदहवास बुश-ब्लेयर कोशिश कर रहे हैं कि कानून-व्यवस्था कायम करने में संयुक्त राष्ट्र संघ को भी भूमिका निभाने देने की आड़ में, अन्य देशों की सेनाएँ भी इराक में काम करें और अपनी सेना को हो रहे नुकसान के चलते उन्हें जिस संकट का सामना करना पड़ रहा है, उससे कुछ निजात मिले। लेकिन दुनिया के अमेरिकापरस्त देशों के शासक भी ऐसा करने का साहस नहीं जुटा पा रहे हैं। इसका एक कारण तो विश्व भर की जनता है, जिसमें अमेरिका द्वारा इराक में चलाये जा रहे बर्बर अभियान के विरुद्ध तीव्र आक्रोश है। दूसरा कारण यह है कि कुछ छूटों और मुनाफे में आंशिक भागीदारी के बावजूद किसी भी देश का सत्ताधारी वर्ग उस दुर्गति का साझीदार नहीं बनना चाहता जो आने वाले दिनों में इराक में अमेरिका की होनी है।

आज की सच्चाई यह है कि पूरे इराक में अमेरिकी सेना पर छापामार ढंग से हमले हो रहे हैं। प्रतिरोधक दस्ते अब ज्यादा से ज्यादा संगठित होते जा रहे हैं और देशव्यापी स्तर पर छापामार जन-युद्ध का स्वरूप उभरता हुआ दीखने लगा है। थके-उकताये और बौखलाये हुए अमेरिकी सैनिक यहाँ-वहाँ निहत्थी जनता पर गोलियाँ बरसा रहे हैं और अपने को ज्यादा से ज्यादा, एक क्रुद्ध जनसागर के बीच फँसा हुआ पा रहे हैं।

अमेरिकी सेना ने एक अत्यन्त खर्चीले और जनसंहारक अभियान में सद्दाम हुसैन की सत्ता को ध्वस्त किया है, लेकिन इराकी जनता को वह घुटने टेकने के लिए विवश नहीं कर पाई है। जनता के प्रतिरोध संघर्ष की वास्तविक शुरुआत तो अब हुई है। शक्तिशाली आक्रमणकारियों और सत्ताधारियों के हथियारों के बड़े से बड़े जखीरे जनसंघर्षों के महासमुद्र में डूब जाते हैंइतिहास का यह स्वयंसिद्ध तथ्य इराक में एक बार फिर सत्यापित होगा, इसकी प्रक्रिया चाहे जितनी लम्बी और चढ़ावों-उतारों से भरी हो।

अमेरिका का इराक युद्ध इराक की जनता, पूरे पश्चिम एशिया की जनता और पूरी दुनिया की जनता के विरुद्ध वाशिंगटन-लन्दन साम्राज्यवादी धुरी द्वारा छेड़ा गया एक नृशंस युद्ध तो है ही, इसका एक और भी पहलू है। यह एक ऐसा परोक्ष युद्ध भी है जिसमें मुख्यतः आंग्ल-अमेरिकी धुरी और फ्रांसीसी-जर्मन धुरी एक-दूसरे के आमने-सामने खड़े हैं। विश्व-पूँजीवादी तंत्र की आज जो स्थिति और संरचना है, उसमें अमेरिका का वर्चस्व निर्विवाद रूप से स्थापित है और यह भी लगभग तय है कि यह स्थिति आने वाले वर्षों में बहुत जल्दी नहीं बदलने वाली है। लेकिन यह भी सच है कि प्रतिद्वंद्वी साम्राज्यवादी शक्तियों की

एक समान्तर शक्ति यूरोपीय संघ के रूप में अमेरिकी वर्चस्व को प्रभावी चुनौती देने की स्थिति में तेजी से उभर रही है। डालर और यूरो के बीच मुद्रा-युद्ध शुरू हो चुका है जो तेजी से गहराता जा रहा है।

अमेरिकी अर्थतंत्र के गम्भीर, दीर्घकालिक ढाँचागत संकट के बावजूद डालर का वर्चस्व बने रहने का एक प्रमुख कारण यह है कि डालर विश्व की मुख्य, वास्तव में अकेली, रिजर्व मुद्रा है। हर देश को डालर आयात करने पड़ते हैं। वे अपने सामान और सेवाएँ अमेरिका को बेचते हैं और बदले में अमेरिका उन देशों को कुछ और डालर छापकर दे देता है। यानी, अपने आयात के बदले अमेरिका को वास्तव में कुछ नहीं देना पड़ता है। इसी के चलते जबर्दस्त बजट घाटे और विदेश व्यापार घाटे के बावजूद अमेरिकी अर्थव्यवस्था की गाड़ी चलती जा रही है और अपनी शीर्षस्थता को भी मुख्यतः जड़ता की शक्ति के सहारे बनाये रखने में वह कामयाब है।

अब इस पूरे परिदृश्य में तेल के विश्व-व्यापार की स्थिति को समझा जाये। विश्व का सबसे बड़ा व्यापार आज भी तेल व्यापार है, जिसकी मुख्य मुद्रा डालर है। दुनिया के अधिकांश देशों के लिए आयात का सबसे बड़ा मद तेल है। इसके लिए उन्हें डालर की दरकार होती है जिसके लिए वे अमेरिका की शर्तों पर उसे अपना सामान और सेवाएँ बेचने को बाध्य हैं। दूसरी ओर, तेल उत्पादक देशों के प्रास जमा डालरों का विपुल भण्डार अधिकांशतः अमेरिकी बैंकों में ही जमा होता है, जिसका इस्तेमाल अमेरिकी साम्राज्यवाद की विश्वव्यापी महाजनी को मजबूती से कायम रखने के लिए होता है। यदि दुनिया के तेल-व्यापार का आधा भी डालर के बजाय यूरो में होने लगे तो डालर का सिंहासन डोल जायेगा और अमेरिकी साम्राज्यवाद की चौधराहट को गम्भीर खतरा उत्पन्न हो जायेगा। दुनिया के कुल तेल भण्डार के 16 प्रतिशत के मालिक इराक का सबसे बड़ा "गुनाह" वस्तुतः यह था कि उसने नवम्बर 2000 में तेल व्यापार के लिए डालर के बजाय यूरो को मुद्रा के रूप में अपना लिया था और सामान्यतः यूरो इसके विदेश व्यापार की मुख्य मुद्रा बन गया था। अकेले इराक के इस निर्णय के चलते, जिस यूरो की कीमत अमेरिकी डालर के मुकाबले 82 सेण्ट थी, वह बढ़कर 1.5 डालर हो गयी और यूरो पहली बार डालर को चुनौती देने की स्थिति में आ खड़ा हुआ।

अमेरिका के लिए यह भयंकर आतंककारी सम्भावना थी कि कल को यदि सिर्फ ईरान और वेनेजुएला भी ऐसा ही करें तो डालर का पराभव अवश्यम्भावी हो जायेगा। ऐसी स्थिति में दशकों से जिस तरह अमेरिका घाटे की अर्थव्यवस्था चलाता आ रहा है, वह सम्भव नहीं रह जायेगा। विश्व में डालर की माँग घटते ही अमेरिका को अपने ऋणों की एक हद तक अदायगी के लिए बाध्य होना पड़ेगा, जबकि और अधिक डालर छाप पाना उसके लिए मुमकिन ही नहीं रह जायेगा। ऐसे में अमेरिकी अर्थव्यवस्था का ध्वस्त होना अवश्यम्भावी हो जायेगा। यह एक बुनियादी कारण था कि हर सम्भव बहाना ढूँढ़कर इराकी शासकों को उनकी "हिमाकत" के लिए सजा देना और उनके फैसले को उलटने के लिए उनके तेल भण्डार पर सीधे कब्जा कर लेना अमेरिकी साम्राज्यवाद की अपरिहार्य आसन्न आवश्यकता बन गया। कहा जा सकता है कि अमेरिकी साम्राज्यवाद इराक की जनता और वहाँ के बुर्जुआ शासक वर्ग के विरुद्ध लड़ते हुए, प्रतिस्पर्धी साम्राज्यवादी ब्लाक के विरुद्ध भी एक परोक्ष लेकिन अहम युद्ध लड़ रहा था। यानी अमेरिका के इराक युद्ध में एक पहलू अन्तर-साम्राज्यवादी प्रतिस्पर्धा का भी काम कर रहा था।

इराक पर अमेरिकी हमले की घटना ने यह सिद्ध कर दिया है कि...अन्तर-साम्राज्यवादी प्रतिस्पर्धा साम्राज्यवाद की एक बुनियादी अभिलाक्षणिकता है। समय-समय पर यह विविध प्रकार के युद्धों के रूप में भी भड़कती रहेगी और एक व्यापक महायुद्ध के रूप में इसके विस्फोट की सम्भावना भी बनी रहेगी। या तो क्रान्तियाँ युद्ध को रोकेंगी या युद्ध क्रान्तियों को जन्म देगा।

सोवियत संघ के बिखरने के बाद बहुतेरे अकादमिक मार्क्सवादी तक अमेरिकी नेतृत्व में एकाश्मी, एकलध्रुवीय साम्राज्यवादी विश्व की बात करने लगे थे और अन्तर-साम्राज्यवादी प्रतिस्पर्धा की समाप्ति के दावे करते हुए साम्राज्यवाद-विषयक लेनिन की थीसिस के पुराना पड़ जाने और उसमें सुधार करने की बात करने लगे थे। इराक पर अमेरिकी हमले की घटना ने यह सिद्ध कर दिया है कि ये राजनीतिक पण्डित लोग यथार्थ की एक तात्कालिक, संक्रमणशील अवस्था को स्थायी मानने की, तथा साथ ही, आभासी यथार्थ को सारभूत यथार्थ मानने की भ्रान्ति के शिकार थे। अन्तर-साम्राज्यवादी प्रतिस्पर्धा साम्राज्यवाद की एक बुनियादी अभिलाक्षणिकता है। समय-समय पर यह विविध प्रकार के युद्धों के रूप में भी भड़कती रहेगी और एक व्यापक महायुद्ध के रूप में इसके विस्फोट की सम्भावना भी बनी रहेगी। या तो क्रान्तियाँ युद्ध को रोकेंगी या युद्ध क्रान्तियों को जन्म देगामार्क्सवाद की यह बुनियादी प्रस्थापना

इक्कीसवीं सदी में भी विश्व-सर्वहारा क्रान्ति का एक मार्गदर्शक सूत्र बना रहेगा।

दूसरे विश्वयुद्ध के बाद जो अन्तर-साम्राज्यवादी प्रतिस्पर्धा निर्णायक रूप से कम हो गयी थी और बीसवीं सदी के अन्तिम दशक में जिसके विलोप के दावे किये जाने लगे थे, उस प्रतिस्पर्धा के सतह पर उभरने और उग्र होते जाने की प्रथम अवस्था वह मुद्रा-युद्ध है जो आज विश्व पटल पर सामने आ चुका है। इराकी तेल भण्डारों पर कब्जा इसके साथ अविभाज्यतः जुड़ा हुआ है।

इराक में अब भी जारी अमेरिकी बर्बर मुहिम की ऐतिहासिक अर्थवत्ता का एक और पहलू है, जो गौरतलब है। फलस्तीन और इराक में जारी घटनाओं ने समूची अरब जनता की साम्राज्यवाद-विरोधी एकजुटता को मजबूत करने के साथ ही सभी अरब देशों के सत्ताधारियों के दोमुँहेपन एवं ऐतिहासिक विश्वासघात को उनकी निगाहों के सामने एकदम नंगा कर दिया है। जनता के भीषण दबाव के चलते ये अरब शासक अमेरिकी गुण्डागर्दी के विरुद्ध कभी-कभार भुनभुनाते हुए कुछ विरोध भले ही दिखाएँ, भले ही ये लगातार इजरायल के जियनवादियों को कोसें, लेकिन इनकी नपुंसकता और समझौतापरस्ती जनता की नजरों में साफ हो चुकी है। शेखों और शाहों की सत्ताओं की साम्राज्यवादपरस्ती तो पहले से ही जगजाहिर थी, अब उन बुर्जुआ जनतांत्रिक हुकूमतों का दोहरापन और समझौतापरस्ती भी जनता के सामने है, जिन्होंने कुछ दशक पहले तक, एक हद तक रैडिकल साम्राज्यवादी तेवर अपनाये थे और देश के भीतर सीमित हद तक बुर्जुआ जनवादी सुधार के कुछ कदम भी उठाये थे।

दरअसल, यह स्थिति कमोबेश आज समूची तीसरी दुनिया के उस बुर्जुआ शासक वर्ग की है, जो कभी साम्राज्यवाद-विरोधी राष्ट्रीय संघर्षों का भागीदार (और अधिकाँशतः नेता) रहा था और औपनिवेशिक-नवऔपनिवेशिक दासता से राजनीतिक स्वतंत्रता पाने के बाद जिसने कुछ दशकों तक अन्तर-साम्राज्यवादी प्रतिस्पर्धा का लाभ उठाकर तथा जनता से पैसे जुटाकर राजकीय पूँजीवादी तंत्र निर्मित करते हुए अपनी सीमित आजादी की सुरक्षा एवं विस्तार के लिए सम्भव कोशिशें भी की थीं। पिछली सदी के आखिरी दो दशकों के दौरान, एक साम्राज्यवादी विश्व में पिछड़ी उत्पादक शक्तियों वाले नवस्वाधीन देशों के बुर्जुआ शासक वर्ग की आजादी की ऐतिहासिक सीमाएँ स्पष्ट हो चुकी थीं। यह साफ हो चुका था कि पूँजीवादी रास्ते पर चलते हुए किसी पिछड़े देश का बुर्जुआ शासक वर्ग विश्व पूँजीवादी तंत्र में सापेक्षिक स्वायत्तता भी लम्बे समय तक कायम नहीं रख सकता। अन्ततोगत्वा उसे विश्व पूँजीवादी तंत्र में अपनी आर्थिक शक्ति के हिसाब से विश्व स्तर के अधिशेष के छोटे भागीदार की स्थिति को स्वीकारते हुए, मुख्यतः और सामान्यतः साम्राज्यवादियों के दिशा-निर्देशों पर चलने की नियति को स्वीकारना ही होगा। यही वह चीज है, जो भूमण्डलीकरण के दौर में विश्व व्यापार संगठन और अन्य अन्तरराष्ट्रीय मंचों पर घटित होती हुई दीख रही है और और विश्व-राजनीति में अनेक रूपों में परिलक्षित हो रही है। पिछड़े देशों के बुर्जुआ शासकों के हितों का साम्राज्यवादियों के साथ टकराव बना रहेगा और आने वाले दिनों में वे अन्तर-साम्राज्यवादी प्रतिस्पर्धा का भी लाभ उठाएँगे, लेकिन अब वे साम्राज्यवाद-विरोधी क्रान्तिकारी संघर्षों में जनता के विभिन्न वर्गों के रणनीतिक सहयोगी की भूमिका निभाने की ऐतिहासिक क्षमता मूलतः और मुख्यतः खो चुके हैं। कहा जा सकता है कि यह बुर्जुआ राष्ट्रवाद की वह ऐतिहासिक सीमा है, जो साम्राज्यवाद की शताब्दी का अवसान होते-होते एकदम स्पष्ट हो चुकी थी। पिछली सदी का अन्त होते-होते, राष्ट्रीय मुक्ति संघर्षों के नायकों की कहानी यदि खण्डित नायकत्व और पराभूत गौरव की त्रासद गाथा बन चुकी थी, तो यह उनकी ऐतिहासिक नियति ही थी।

फलस्तीन के बाद इराक की घटना ने समूची अरब जनता की निगाहों में सभी अरब देशों के बुर्जुआ वर्ग के चरित्र और सीमाओं को साफ कर दिया है और इस दृष्टि से इसका एक ऐतिहासिक महत्व है। आने वाले दिनों में अरब धरती पर साम्राज्यवाद विरोधी संघर्षों का जो ज्वार उठेगा, उसका बुनियादी चरित्र पिछली सदी में वहाँ लड़े गये साम्राज्यवाद विरोधी संघर्षों से भिन्न होगा। अब इन संघर्षों को किसी किस्म का राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग नेतृत्व नहीं दे सकेगा। वह इन संघर्षों का रणनीतिक भागीदार भी शायद ही बन सके। भौतिक परिस्थितियाँ अरब जनता को बाध्य करती जाएँगी कि साम्राज्यवाद- विरोधी संघर्ष में लड़ते हुए वह बुर्जुआ जनवाद की सीमाओं को पहचाने और उनका अतिक्रमण करे। ●

आने वाले दिनों में अरब धरती पर साम्राज्यवाद-विरोधी संघर्षों का जो ज्वार उठेगा, उसका बुनियादी चरित्र पिछली सदी के साम्राज्यवाद-विरोधी संघर्षों से भिन्न होगा। अब इन संघर्षों को किसी किस्म का राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग नेतृत्व नहीं दे सकेगा।... भौतिक परिस्थितियाँ अरब जनता को बाध्य करती जाएँगी कि साम्राज्यवाद-विरोधी संघर्ष में लड़ते हुए वह बुर्जुआ जनवाद की सीमाओं को पहचाने और उनका अतिक्रमण करे।

पूँजीवादी निवेश के कारण तबाह हो रहे हैं गरीब किसान

• निर्मल सिंह आजाद

एक छोटा किसान निजी तौर पर तथा छोटे किसान समुदाय के रूप में पूँजीवादी किसान वर्ग का आर्थिक क्षेत्र में मुकाबला करने में असमर्थ है। यह मुकाबला केवल जिन्स की माल मण्डी के जरिए ही हो सकता है और मंडी में यह मुकाबला असमान तथा हमेशा ही पूँजीवादी किसान (ग्रामीण बुर्जुआ वर्ग के पक्ष में होता है। वैसे भी छोटा गरीब किसान अपने मालिकाने के छोटे से जमीन के टुकड़े से चिपका रहता है। बढ़ती गरीबी तथा कर्ज के बावजूद अपने मालिकाने वाली जमीन के टुकड़ों को आर्थिक सुरक्षा तथा सामाजिक रुतबे का प्रतीक समझता है। इस कारण भी वह आम तौर पर तंगदिल तथा कम चुस्त होता है तथा पीढ़ी दर पीढ़ी एक ही तरीके से पैदावार करता चला आता है।

इस सब का खात्मा खेती में विकसित होते (पहलेपहल बड़े किसानों द्वारा) उत्पादन के पूँजीवादी सम्बन्ध ही करते हैं। इसके साथ ही छोटे किसानों का अपने में सिमटे रहना, अलगाव तथा अपनी जमीन के छोटे-से टुकड़े के अलावा कुछ भी न जानने की आदत आदि खत्म होती जाती है। मजबूरन उनको उत्पादन के बदलते दौरों, जैसे कि कृषि उत्पादन का माल उत्पादन बनना तथा उसकी श्रमशक्ति की बिक्री शुरू होना आदि से गुजरना पड़ता है। इस तरह उसे जीवन के खुले मुकाबले के मैदान में कूदना पड़ता है। छोटे तथा बड़े किसानों का यह आपसी मुकाबला उनमें वर्गीय अन्तरविरोध पैदा करता है।

किसी भी देश की गरीबी का एक कारण उसके बहुत छोटे किसानों की घाटे पर चल रही खेती भी होता है। छोटे किसानों की हमेशा ही पूँजीवाले लोगों पर आर्थिक तथा सामाजिक निर्भरता बनी रहती है। भले ही ये पूँजीवाले लोग शहरों में रहते हों या देहात में रहनेवाले सूदखोर या बड़े धनी किसान हों। इस तरह इन छोटे तथा गरीब किसानों की आर्थिक तथा सामाजिक लूट-खसोट होती ही रहती है। फिर धीरे-धीरे यह निर्भरता एक हद तक सरकारी बैंकों, सहकारी सोसायटियों तथा निजी सूदखोरों पर बन जाती है। इनके कर्ज के नीचे आने के बाद भी छोटा किसान मुश्किल से अपने गुजारे लायक भी पैदा नहीं कर सकता, लेकिन कर्ज उतारने के लिए उसे अपनी फसल की पैदावार का एक हिस्सा माल मंडी में बेचना पड़ता है। इस तरह से प्राप्त होनेवाली आमदनी को वह अपनी खेती को उन्नत करने तथा सुधारने के लिए पूँजी के रूप में निवेश नहीं करता बल्कि अक्सर खपत तथा गुजारे के लिए तथा बाकी निजी खर्च के लिए उसे और कर्ज उठाना पड़ता है। फिर इस तरह कर्ज का बोझ एक या दूसरी शक्ल में दिन-ब-दिन भारी ही होता जाता है।

इन सबका असर कई स्थितियों में यह होता है कि जमीन एक या दूसरे रूप में छोटे किसान के हाथों से खिसकने लगती है। पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली के तहत छोटे किसानों की दुर्गति तथा कर्ज के बढ़ने के चलते कुल किसान समुदाय में पैदावार के पूँजीवादी सम्बन्धों का (मजदूरी, माल तथा पूँजी के रूप में) विकास होता है तथा इस पर अंकुश नहीं लगता। छोटे किसानों की दुर्गति के लिए पूँजीवादी विकास को ही जिम्मेवार नहीं ठहराया जा सकता। बल्कि इस किसान वर्ग की बुरी हालत के लिए कम विकसित पूँजीवाद भी जिम्मेदार होता है। जब पैदावार के पूँजीवादी सम्बन्धों के अस्तित्व में आने के समय तथा इनके कम विकसित होने के कारण तो किसान वर्ग की यह बुरी हालत होती है, तो फिर पूँजीवाद बहुत विकसित होने पर देहाती किसान वर्ग की क्या हालत होगी? पूँजीवाद के कृषि क्षेत्र में पूरा विकसित होने पर छोटे किसानों का वर्ग चरित्र ही बदल जाता है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि इस किसान वर्ग का बहुत बड़ा हिस्सा कृषि सर्वहाराओं में बदल रहा होता है।

ऐतिहासिक तौर पर तथा सामाजिक तब्दीली के नजरिये से, यह एक प्रगतिशील कदम ही होता है। इस प्रक्रिया को रोकना ऐतिहासिक नजरिए से एक प्रतिक्रियावादी कोशिश ही है, भले ही छोटे किसानों के खेत मजदूरों में रूपान्तरण के इस अमल का असर आज के समय में कितना भी भयानक क्यों न हो। पैदावार के पूँजीवादी सम्बन्धों के विकास के कारण समूचे किसान समुदाय का अस्तित्व ढूँढ़ता है। अलग-अलग वर्गीय हितों वाले अलग-अलग किसान वर्ग जैसे कि बड़ी तथा पूँजीवादी किसानी, मध्यम किसान तथा गरीब किसान, उभरते हैं। इस तरह किसानी में पहले के लुके-छिपे वर्गीय अन्तरविरोध प्रत्यक्ष रूप में सामने आते हैं। किसानी में वर्ग संघर्ष का रास्ता खुलता है। छोटी तथा गरीब किसानों के बड़े/अमीर तथा पूँजीवादी किसानों से अलग हो जाने से इस वर्ग को वर्गसंघर्ष के जरिये जागरूक किया जा सकता है। इस तरह भूमिहीन कृषि सर्वहाराओं द्वारा पूँजीवादी किसानी के विरुद्ध शुरू किये गये वर्ग संघर्ष में इस छोटी तथा गरीब किसानी का सहयोग हासिल किया जा सकता है।

एक छोटे किसान की खेती तभी स्थिर हो सकती है, अगर वह अपनी श्रम शक्ति को अमीर पूँजीवादी किसानों के पास बेचना शुरू कर दे, लेकिन ऐसा वह तभी कर सकेगा, अगर उसे कृषि क्षेत्र या इससे बाहर मजदूरी के लिए काम मिल सके। कम जमीन, कम या नाममात्र की पूँजी, घटती आमदनी, बढ़ता कर्ज

(लेखक पंजाबी युनिवर्सिटी, पटियाला में प्रोफेसर और पंजाब के प्रसिद्ध कृषि अर्थशास्त्री हैं।)

आदि, यह सब छोटी किसानी की विरासत हैं। एक छोटा किसान जमीन से चिपके रहने के कारण, जिसके कि हमेशा विशेष कारण होते हैं, अपनी अगली पीढ़ी को यह नावाजिब विरासत ही सौंपता हैं।

छोटे किसान की गरीबी का एक मूल कारण उसका छोटे पैमाने का भूस्वामित्व होता है, जो उसकी गरीबी को और बढ़ाता है। एक छोटे किसान का 'जमीन से प्यार' इस कारण भी होता है कि उसे रोजगार के अन्य साधन नहीं मिलते। अक्सर कई सामाजिक तथा सांस्कृतिक (धर्म तथा जात-पाँत) कारणों से एक छोटा तथा गरीब किसान किसी भूमिहीन खेत मजदूर की तरह मजदूरी नहीं करना चाहता था इस मजबूरी को काफी समय तक कबूल नहीं करता।

छोटे किसान की हालत में ऐतिहासिक पक्ष से वर्गीय स्थिरता उसके खेत मजदूर बनने तथा उसकी थोड़ी जमीन आदि पैदावर के साधनों के, बड़े तथा अमीर किसानों के पास चले जाने में ही होती है। देखने तथा सुनने में भले ही यह एक बेतुका सुझाव है और यह बात भी बुरी लगेगी। आज के समाज में वर्गीय अवस्थितियों का द्वंद्व यही है कि 'छोटों' से पैदावार के साधनों का बचा-खुचा मालिकाना भी जाता रहे और यह 'बड़ों' के पास चला जाये। और फिर 'छोटे मालिक' खेत-मजदूरों के रूप में 'बड़े मालिकों' के लिए काम करें, क्योंकि अन्य कोई चारा या राह नहीं बचती।

पंजाबी से अनुवाद : **सुखविन्दर**

दायित्वबोध का
अगला अंक

जनवरी 2004 में प्रकाश्य

लगभग सौ पृष्ठ, मूल्य 20 रुपये

वर्ल्ड सोशल फोरम और एन.जी.ओ. पर केन्द्रित एक महत्वपूर्ण आयोजन

डब्ल्यू.एस.एफ. के गठन, इसकी कार्यप्रणाली, लक्ष्यों तथा प्रभावों के विभिन्न पहलुओं पर तथा एन.जी.ओ. की राजनीति पर भारत तथा विश्व के कई प्रमुख संगठनों और बुद्धिजीवियों के विचार

अन्य महत्वपूर्ण सामग्री

दायित्वबोध यहां से प्राप्त करें

उत्तर प्रदेश • संस्कृति कुटीर, कल्याणपुर, **गोरखपुर** • जनचेतना, जाफरा बाजार, **गोरखपुर** • विजय इन्फार्मेशन सेंटर, कचहरी बस स्टैण्ड, **गोरखपुर** • स्टुडेन्ट्स कार्नर, सिनेमा रोड, गोलघर, **गोरखपुर** • अक्षरा स्टेशनर्स, स्टशेन रोड, **गोरखपुर** • राहुल फाउण्डेशन, 69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, **लखनऊ** • जनचेतना स्टाल, निकट काफी हाउस, हजरतगंज, **लखनऊ** (शाम पांच से साढ़े आठ) • जनचेतना, डी-68, निराला नगर, आई. टी. चौराहा, **लखनऊ** • विमल कुमार, मैग्जीन स्टाल, निकट नीलगिरि काम्प्लेक्स, ए ब्लाक, इंदिरानगर, **लखनऊ** • इण्डियन बुक डिपो, अमीनाबाद, **लखनऊ** • विश्वनाथ मिश्र, भूमि एवं जल संरक्षण विभाग, नेशनल पी.जी.कालेज, **बड़हलगंज, गोरखपुर** • शहीद पुस्तकालय, द्वारा, डा. दूधनाथ, जनगण होम्यो सेवा सदन, **मर्यादपुर, मऊ** • सबद, 171, कर्नलगंज (स्वराज भवन के सामने) **इलाहाबाद** • श्री मुचकुंद, प्रोग्रेसिव बुक सेंटर, विश्वनाथ मंदिर गेट,बीएचयू, **वाराणसी** • अरुण कुमार चौबे, सर्वोदय बुक स्टाल, प्लेटफार्म नं. 5, रेलवे स्टेशन, **वाराणसी कैंट** • करेंट बुक डिपो, 18/53, माल रोड, (फूलबाग के सामने), **कानपुर** • प्रतिभा प्रकाशन, (पेप्सी होटल के नीचे), स्टेशन रोड, **बलिया** • राजेन्द्र प्रसाद, रेणु मेडिकल की गली, मुख्य सड़क, रेणुकूट, **सोनभद्र** • डा. पी.एस. कुशवाहा, ओल्ड हास्टल, सेंट जॉन्स कालेज, **आगरा** • गार्गी विक्रय पटल, 127, न्यू आवास विकास कालोनी, **सहारनपुर**

उत्तरांचल • जनचेतना, ग्राम भदईपुरा, किच्छा रोड, रुद्रपुर, **ऊधमसिंहनगर** • प्रो. प्यारेलाल, 139, फूलबाग कालोनी, पंतनगर कृषि विश्वविद्यालय, **पंतनगर** • नेशनल न्यूज एजेन्सी, पलटन बाजार, **देहरादून**

दिल्ली • सत्यम वर्मा, 29, यू.एन.आई. अपार्टमेंट, जीएच-2, सेक्टर-11, वसुंधरा, गाजियाबाद • बुक कार्नर, श्रीराम सेंटर, मण्डी हाउस • गीता बुक सेण्टर, शापिंग काम्प्लेक्स, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय • पत्रिका मण्डप, आर्ट्स फैकल्टी, दिल्ली विश्वविद्यालय • पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, मरीना आर्केड, कनाट प्लेस • विजय मैग्जीन स्टाल, रिजर्व बैंक के पास, संसद मार्ग ***नोएडा*** • जनचेतना ठेला, चौड़ा मोड़ (शाम 5 से 8.30), नोएडा

बिहार • समकालीन प्रकाशन, पुस्तक बिक्री केन्द्र, आजाद मार्केट, पीरमुहानी, **पटना** • मैग्जीन कार्नर, नाला रोड, दिनकर चौक, **पटना** • वी. प्रशान्त, कन्हौली (बी.एम.पी.-6 से पूरब), **मुजफ्फरपुर** • विद्यानन्द सिंह, वार्ड न. 4, **सुपौल** • भुवन वेणु, 'प्रतीक्षा', मधुबनी, चूनापुर रोड, **पूर्णिया**

पंजाब • सुखविन्दर, द्वारा का. दशरथ लाल, म.नं.-14, लेबर कालोनी, गिल रोड, **लुधियाना** • नवा जमाना बुक शाप, नेहरू गार्डन रोड, **जालंधर**

हरियाणा • नरभिन्दर सिंह, शहीद भगतसिंह विचार मंच, हरियाणा, ग्रा.-पो.-संतनगर, जि.-**सिरसा** • पंकज, प्लॉट नं. 33, सेक्टर-15, **सोनीपत** • राजीव रंजन, द्वारा पाश पुस्तकालय, पुलिस लाइन **करनाल** • सुरेश जांगिड़, अक्षर धाम, सुकीर्ति प्रिंटर्स, डी.सी. निवास के सामने, करनाल रोड, **कैथल**

राजस्थान • चन्द्रशेखर, लोकायत प्रकाशन, 883, लोधों की गली, एम.डी. रोड, **जयपुर** • बुक्स एंड न्यूज मार्ट, एम.आई.रोड, **जयपुर**

महाराष्ट्र • पीपुल्स बुक हाउस, मेहर हाउस, 15, कावसजी पटेल स्ट्रीट, फोर्ट, **मुम्बई** • वसुन्धरा, 602, हीरानंदानी गार्डन, गेट वे प्लाजा, **पवई** • शैलेश वाकड़े, विजयालक्ष्मी नगर, टीचर्स कालोनी, बल्लारपुर, **चन्द्रपुर** • वि.रा. साथीदार, **नागपुर**

प. बंगाल • पुस्तक केन्द्र, भारतीय भाषा परिषद, शेक्सपियर सरणी, **कोलकाता** • बुक मार्क, 6, बंकिम चटर्जी स्ट्रीट, **कोलकाता** • न्यू होराइजन बुक ट्रस्ट, 57/1, पटुआटोला लेन, **कोलकाता** • श्याम अविनाश, पी.एन. घोष स्ट्रीट, **पुरुलिया** • राकेश गोरखा, पाथिभरा पुस्तक पसल, प्रधाननगर, सिलीगुड़ी, **दार्जीलिंग** • जनार्दन थापा, लुकसान बाजार, पो.आ. केरन, जि.-**जलपाईगुड़ी**

आन्ध्र प्रदेश • गोविन्द अक्षय, 'सारस्वत सदन', 13/6/411/2, रामसिंहपुरा, कारवान, **हैदराबाद**

मध्यप्रदेश • जयप्रकाश जायसवाल, 'पितृछाया,' अमृत सागर कालोनी, एम.आई.जी. 96-97, **रतलाम**

छत्तीसगढ़ • चिंचोलकर बुक हाउस, बस स्टैण्ड, **जगदलपुर, बस्तर**

बहस के लिए

साम्राज्यवाद के बारे में

आज के साम्राज्यवाद की सही समझ कायम करने के लिए अध्ययन-विश्लेषण का प्रयास निरी अकादमिक कवायद नहीं है। दुनिया को बदलने के लिए दुनिया को समझना होता है। इसी नजरिए से आज देश भर में क्रान्तिकारी परिवर्तन की व्यावहारिक कार्रवाइयों में जुटे संगठन और ग्रुप भूमण्डलीकरण के दौर में उभरी साम्राज्यवाद की नयी प्रवृत्तियों-परिघटनाओं के अध्ययन-विश्लेषण में जुटे हुए हैं। बेशक किसिम-किसम के 'मुक्त चिन्तक' भी आज के साम्राज्यवाद की ''नई-नई चीजों'' से चकित-विस्मित हो अपने-अपने ढंग से चिन्तन-मनन कर रहे हैं। लेकिन आज के साम्राज्यवाद को समझने के लिए सबसे अहम बात यह है कि साम्राज्यवाद की क्लासिकी मार्क्सवादी समझ की बुनियादी पहुँच-पद्धति पर कमान रखते हुए नई प्रवृत्तियों-परिघटनाओं का सृजनात्मक ढंग से विश्लेषण किया जाये। इस नजरिये से प्रस्तुत आलेख महत्वपूर्ण है। एक कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी ग्रुप द्वारा साम्राज्यवाद पर आयोजित विभिन्न सेमिनारों-गोष्ठियों में बहस के लिए इसे प्रस्तुत किया गया था। इसी महत्व के मद्देनजर 'कम्युनिस्ट वायस' नामक पत्रिका में छपे इस आलेख को हम यहाँ प्रकाशित कर रहे हैं।सम्पादक

लेनिन ने साम्राज्यवाद का वर्णन पूँजीवाद की उच्चतम अवस्था के रूप में किया है। सभी मार्क्सवादी-लेनिनवादी यह जानते हैं। लेकिन ऐसा लगता है कि हम इसे बहुत थोड़ा ही समझते हैं। नहीं तो हम साम्राज्यवाद के बारे में इस ढंग से बात नहीं करते कि जैसे यह कोई नीति, षड्यंत्र या कोई रणकौशल है। लेनिन के अनुसार साम्राज्यवाद का सारतत्व इजारेदारी है। इजारेदार पूँजीवाद की अभिलाक्षणिक नीति वर्चस्व के लिए संघर्षरत रहना है। मुक्त प्रतियोगिता के युग की राजनीति स्वतंत्रता थी क्योंकि सिर्फ इसी रास्ते वह फल-फूल सकता था। इजारेदारी कायम करने का मतलब है दूसरों के अधिकारों को खत्म कर देना और सिर्फ अपना वर्चस्व कायम करना। इजारेदार पूँजीवाद मुक्त प्रतियोगिता की जमीन से उभरा है। पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली के गति के नियमों का विश्लेषण करते हुए मार्क्स ने दिखाया था कि मुक्त प्रतियोगिता अनिवार्य रूप से इजारेदारी को जन्म देती है। यह पूँजी के संकेन्द्रण और केन्द्रीकरण के नियमों में ही अन्तर्भूत है, जिसे आम तौर पर इस कहावत में व्यक्त किया जाता है कि बड़ी पूँजी छोटी पूँजी को खा जाती है। जब हम साम्राज्यवाद की चर्चा करते हैं तो हमें पूँजीवाद के अन्तर्भूत नियमों की रोशनी में ही इसकी चर्चा करनी चाहिए।

आज जब हम साम्राज्यवाद की चर्चा कर रह हैं तो जो पहली बात हमारे दिमाग में आती है वह है सबसे नयी और अक्सर दुहरायी जाने वाली शब्दावली, जिसे भूमण्डलीकरण का नाम दिया जाता है। कुछ लोग इसे व्यापार रुकावटों को हटा लेने से जोड़ते हैं, कुछ दूसरे उत्पादन प्रक्रिया के भूमण्डलीकरण से, कुछ लोग ऐसे भी हैं जो इसे विश्व स्तर पर पूँजी के संचलन में आयी बेरोकटोक असाधारण गतिशीलता से जोड़ते हैं तो कुछ लोगों के लिए यह वित्तीय पूँजी की विजय है। दरअसल, यह ऊपर बताया गया सब कुछ है और उससे काफी ज्यादा भी है। हमें इसे विश्व स्तर पर पूँजीवादी संचय[1] की प्रक्रिया से जोड़कर देखना चाहिए और एक बार फिर हम यह दुहराना चाहेंगे कि इसका निचोड़ एक शब्द में व्यक्त किया जा सकता हैइजारेदारीकरण, अर्थात इजारेदारी का अभूतपूर्व विस्तार। लेनिन ने इस प्रवृत्ति का चित्रण इस प्रकार किया है

''इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस प्रवृत्ति का विकास निरपवाद रूप से सभी उद्यमों और निरपवाद रूप से सभी राज्यों को स्वयं में समाहित करते हुए एक एकल विश्व ट्रस्ट ***की ओर*** *है। लेकिन यह विकास ऐसी परिस्थितियों में, ऐसी रफ्तार से, ऐसे अन्तरविरोधों, संघर्षों और उथल-पुथल से होकर आगे बढ़ता हैकेवल आर्थिक ही नहीं बल्कि राजनीतिक एवं राष्ट्रीय रूपों में भीकि एक विश्व ट्रस्ट बनने के* ***काफी पहले****, अति साम्राज्यवाद की मंजिल आने व राष्ट्रीय वित्तीय पूँजी के विश्वव्यापी विलय के पहले ही साम्राज्यवाद फट पड़ेगा और पूँजीवाद अपने विपरीत में बदल जायेगा''* (एन. बुखारिन की पुस्तिका **साम्राज्यवाद और विश्व अर्थव्यवस्था की प्रस्तावना)।**

जिन उग्र रूपों में यह प्रक्रिया घट रही है, जिस तरह दुनिया की जनता के कन्धों पर असहनीय बोझ लादा जा रहा है और नतीजतन जो अन्तरविरोध उभरकर सामने आ रहे हैं उससे यह पक्के तौर पर कहा जा सकता है कि ऐसे नतीजे आने के काफी पहले ही साम्राज्यवाद को पराजित कर दिया जायेगा। साम्राज्यवादी इजारेदारी के विस्तार की इस प्रक्रिया ने दो विश्वयुद्धों और असंख्य छोटे-बड़े युद्धों को जन्म दिया है। इसी दौरान दुनिया की एक तिहाई से अधिक जनता ने खुद को साम्राज्यवादी जुवे से आजाद कर लिया था और वह विश्व समाजवादी

1. पूँजीवाद के अन्तर्गत यह नियम है कि पुनरुत्पादन विस्तारित पैमाने पर होता है। संचय का केवल यही अर्थ है, अर्थात अतिरिक्त मूल्य का पूँजी में बदलना।

व्यवस्था का हिस्सा बन गयी थी। साम्राज्यवाद विरोधी युद्ध और विश्व की स्वतंत्रता-प्रेमी जनता का प्रतिरोध साम्राज्यवाद के अन्तर्निहित नियमों, जो **रुझानों** के रूप में काम करते हैं, का महत्वपूर्ण प्रतिकारी कारक रहा है। आज जबकि विश्व सर्वहारा क्रान्ति को पराजय का सामना करना पड़ा है, भले ही यह अस्थायी ही क्यों न हो, इन रुझानों को प्रोत्साहन मिला है और इजारेदारी की प्रक्रिया छलाँग लगाकर आगे बढ़ी है। यह प्रक्रिया शान्तिपूर्ण और उग्र दोनों ही रास्तों से घट रही है और दुनिया की जनता पर अनगिनत मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ा है। जिस ढंग से यह समूची प्रक्रिया असमाधेय अन्तरविरोधों में उलझती जा रही है, यह पक्के तौर पर कहा जा सकता है कि हम क्रान्तियों के नये चक्र के साक्षी होंगे और साम्राज्यवाद को पीछे हटना पड़ेगा तथा पराजय का मुँह देखना होगा। तो आइये अब हम इस प्रक्रिया की छानबीन करें ओर देखें कि किस प्रकार विश्व पूँजीवाद ने हमें उस स्थिति में ला खड़ा किया है जिसे आज हम भूमण्डलीकरण कह रहे हैं।

पूँजी की गति के नियमों का विश्लेषण करते हुए मार्क्स और एंगेल्स ने दिखाया कि किस तरह यह उधार (credit) के विकास की ओर ले जाता है और किस तरह यह संचय प्रक्रिया का समाजीकरण करता है और किस प्रकार यह उत्पादन की विभिन्न शाखाओं में पूँजी के निवेश को सुगम बनाता है और यह किस तरह उत्पादन की वास्तविक प्रक्रिया से स्वतंत्रता हासिल कर लेता है। इसी के चलते वह सम्भावना पैदा होती है कि मुद्रा पूँजी की विशाल मात्रा का स्वामी अपनी राशि को औद्योगिक या उत्पादक पूँजीपतियों को कर्ज के रूप में देता है और बिना हाथ-पाँव हिलाये जिन्दा रहता है। इस प्रक्रिया की तार्किक परिणति एक वित्तीय अल्पतंत्र के विकास के रूप में सामने आती है जो सूद पर जीता है। पूँजी के समाजीकरण की इस प्रक्रिया का अर्थ है भारी मात्रा में मुद्रा पूँजी का उपलब्ध होना जो पूँजी के पुनरुत्पादन की प्रक्रिया को त्वरान्वित करता है। पूँजीपति उत्पादन प्रक्रिया को दुबारा शुरू करने के लिए अपने उत्पादित मालों के बाजार में बिक जाने तक इन्तजार नहीं करता। यह उत्पादन और संचय की रफ्तार को बढ़ा देता है। उत्पादन का यह तीव्रतर विकास और विस्तार उत्पादन के विस्तार और उपभोग के बीच एक असन्तुलन की स्थिति की ओर ले जाता है, अति उत्पादन का संकट गम्भीर होता जाता है और ऐसे समय पूँजीपति उत्पादन को विनियमित करने की जरूरत महसूस करने लगते हैं। बड़े पूँजीपति कई तरीकों से उत्पादन को विनियमित करने की कोशिश करते हैं, वे आपस में विभिन्न प्रकार के समझौते करते हैं और विभिन्न प्रकार के गँठजोड़ बनाते हैं, वे आपस में विलय कर ट्रस्ट भी बनाते हैं। पूँजी के संकेन्द्रण और केन्द्रीकरण की प्रक्रिया तेज हो जाती है। ऊपर बतायी गयी सभी प्रक्रियाओं ने उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त और बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में इजारेदार पूँजी को जन्म दिया और साम्राज्यवाद के दौर की शुरुआत होती है जिसे पूँजीवाद की उच्चतम अवस्था भी कहा जाता है। साम्राज्यवाद के तहत वित्त पूँजी प्रभुत्वशाली स्थिति ग्रहण कर लेती है जिसका लेनिन ने इजारेदार औद्योगिक पूँजी का बैंक पूँजी के साथ विलय के रूप में वर्णन किया है। इसके साथ ही, मालों के निर्यात के स्थान पर पूँजी का निर्यात प्रमुख स्थान ग्रहण कर लेता है। वित्त पूँजी अपने विश्व आधिपत्य की शुरुआत करती है और कच्चे मालों के स्रोतों और पूँजी के निर्यात के लिए भूमण्डल को बाँट देती है। इन उद्देश्यों के साथ पुरानी औपनिवेशिक नीति के उद्देश्य जुड़ जाते हैं। आइये हम साम्राज्यवाद की अभिलाक्षणिकताओं और उसके सारतत्व की अभिव्यक्तियों को लेनिन के ही शब्दों में देखें :

''साम्राज्यवाद पूँजीवाद की एक विशिष्ट ऐतिहासिक अवस्था है। इसके विशिष्ट चरित्र की तीन परते हैं : (1) इजारेदार पूँजीवाद; (2) परजीवी या क्षरणशील पूँजीवाद; (3) मरणासन्न पूँजीवाद। मुक्त प्रतियोगिता के स्थान पर इजारेदारी का आना साम्राज्यवाद का मूलभूत आर्थिक आधार, इसका ***सारतत्व*** *है। इजारेदारी खुद को पाँच प्रमुख रूपों में व्यक्त करती है : (1) कॉर्टेलों, सिण्डिकेटों और ट्रस्टों का बननाउत्पादन का संकेन्द्रण एक ऐसे स्तर पर पहुँच चुका है जो पूँजीपतियों के इन इजारेदाराना संघों को जन्म देता है; (2) बड़े बैंकों की इजारेदाराना हैसियततीन, चार या पाँच भीमकाय बैंक अमेरिका, फ्रांस और जर्मनी के समूचे आर्थिक जीवन को मनचाहे ढंग से नियंत्रित करते हैं; (3) ट्रस्टों और वित्तीय अल्पतंत्र द्वारा* ***कच्चे मालों*** *के स्रोतों पर कब्जा (वित्त पूँजी बैंकिंग पूँजी के साथ इजारेदार औद्योगिक पूँजी का विलय है); (4) अन्तरराष्ट्रीय कार्टेलों द्वारा दुनिया का (आर्थिक) बँटवारा* ***शुरू*** *हो चुका है। पहले ही एक सौ से अधिक अन्तरराष्ट्रीय कार्टेल अस्तित्व में आ चुके हैं जो* ***समूचे*** *विश्व बाजार को नियंत्रित करते हैं और इसे 'दोस्ताना ढंग से' आपस में बाँट लेते हैंजब तक कि युद्ध इन्हें* ***फिर से*** *न बाँट दे। गैर इजारेदार पूँजीवाद के अन्तर्गत, मालों के निर्यात से बिल्कुल अलग, पूँजी का निर्यात एक अत्यन्त अभिलाक्षणिक परिघटना है और यह दुनिया के आर्थिक एवं क्षेत्रीय-राजनीतिक बँटवारे से निकटता से जुड़ा है; (5) दुनिया (उपनिवेशों) का क्षेत्रीय बँटवारा* ***पूरा हो गया है''*** **(साम्राज्यवाद और समाजवाद में फूट)।**

आज साम्राज्यवाद की शक्तियाँ अपनी पूरी तूफानी ताकत के साथ क्रियाशील हैं। 1970 के दशक में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों, खासकर अमेरिकी कम्पनियों की गतिविधियाँ काफी बड़े पैमाने पर बढ़ीं और इसके साथ ही बहुराष्ट्रीय बैंकों की गतिविधियाँ भी बढ़ीं। यह दशक एक परिघटना के उभरने का गवाह बना जिसने आज की आर्थिक घटनाओं पर महत्वपूर्ण असर डाला और वह था यूरोडालर बाजार का उभरना। कई अर्थशास्त्रियों के अनुसार यह बाजार अमेरिका से डालर के उड़नछू होने से अस्तित्व में आया। यह एक अद्वितीय परिघटना थी। वित्त का यह स्रोत किसी राज्य के नियंत्रण में नहीं था और अर्थशास्त्रियों ने इसे राज्यविहीन मुद्रा का नाम दिया। हालाँकि यह बाजार किसी भी राज्य के नियंत्रण से मुक्त दिखायी देता था, लेकिन इसने अपने हितों को आगे बढ़ाने के लिए साम्राज्यवादी राज्य मशीनरी का इस्तेमाल किया। 1970 के दशक में ओपेक (पेट्रोलियम निर्यातक देशों का संगठन) के निर्णय के चलते पेट्रोलियम उत्पादों की कीमतों में बढ़ोत्तरी से तेल उत्पादकों को अप्रत्याशित मुनाफा हाथ लगा जिसे फिर इस बाजार में जमा किया गया। इस प्रकार साम्राज्यवादी बैंक धनराशियों से लबालब भर गये और उन्होंने इसे तथाकथित तीसरी दुनिया के देशों को कर्ज के रूप में दिया। इन पिछड़े देशों ने भारी मात्रा में कर्ज लिये और इन देशों के शासकों के विलासितापूर्ण उपभोग से लेकर जमीन-जायदाद के विकास में इसे खर्च किया गया। इसका उपयोग उद्योगों के निर्माण में भी हुआ और दक्षिण कोरिया जैसे देशों

का भारी औद्योगीकरण हुआ (आगे हम देखेंगे कि जब हम तीसरी दुनिया की बात करते हैं तो हमें अनिवार्यतः यह दिमाग में रखना होगा कि इसमें कई विभिन्न प्रकार के देश शामिल हैं)।

इन कर्जों को बाजार की ब्याज दरों पर दिया गया जिससे इनसे जुड़ी ऋण सेवाओं के लिए जरूरी धनराशियों में भारी बढ़ोत्तरी हुई। दूसरी ओर, पेट्रोलियम उत्पादों की कीमतों में बढ़ोत्तरी ने इन अर्थव्यवस्थाओं के ऊपर भीषण बोझ लाद दिया। कारण जो भी रहा हो, चाहे यह कर्ज राशियों में घपलेबाजी से पैदा हुआ व्यापक भ्रष्टाचार हो, सैन्य खर्च हो या कोई दूसरे अनुत्पादक खर्चे हों, या इन देशों में मन्दी के हालात रहे हों, ये देश ऋण सेवाओं को पूरा करने की स्थिति में नहीं थे। जहाँ औद्योगीकरण हुआ था वहाँ कृत्रिम रूप से संचय की रफ्तार बढ़ गयी जिसे पूँजी के तर्क के अनुसार संकटों को जन्म देना ही था और यह संकट पैदा हुआ। दक्षिण-पूर्व एशिया की तथाकथित बाघ अर्थव्यवस्थाओं (tiger economies) के लिए काफी हद तक यह बात सच थी जो तेज गति से विकास के बाद अब संकटों के शिकार हैं। (पूँजी के अति संचय ने, जिसने उन्नत पूँजीवादी देशों में आगे निवेश असम्भव बना दिया था, तीसरी दुनिया के देशों में निवेश को आवश्यक बना दिया)। कर्ज सेवाओं को पूरा करने में इन देशों की अक्षमता ने कर्जदाता बैंकों को अजीब उलझन में फँसा दिया, और इन बैंकों को बचाने के लिए व उनके बेशुमार मुनाफे को सुनिश्चित बनाने के लिए साम्राज्यवादी राज्य अपने केन्द्रीय बैंकों और सरकारों के मार्फत कई योजनाएँ लेकर सामने आये। इन योजनाओं का अमल सुनिश्चित करने के लिए आई एम एफ ने अपने तथाकथित बचाव पैकेज में ऐसी शर्तें जोड़ दीं जिसने इन देशों पर भारी बोझ लाद दिया। बेकर योजना और ब्रेडी योजना इन योजनाओं के उदाहरण हैं। ये मुख्यतः लातिन अमेरिकी देशों के लिए बनायी गयी थीं। 1990 के दशक में ऐसे कई कार्यक्रम सामने आये जिन्हें दूसरे देशों के साथ-साथ दक्षिण पूर्व एशिया और भारत पर भी थोप दिया गया। इन कार्यक्रमों को **संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रम** के रूप में जाना जाता है। इनके साथ बहुतेरी शर्तें जुड़ी थीं जिन्होंने इन देशों पर भारी बोझ लाद दिया और इनसे इन देशों की उत्पादक क्षमता विनाश की दिशा में चल पड़ी। इन शर्तों में कल्याणकारी खर्चों में भारी कटौती, उद्योगों और कृषि को दी जाने वाली सब्सिडियों में कटौती, सरकारी कम्पनियों और सेवाओं का निजीकरण, विदेशी निवेश को छूट और सट्टा पूँजी के प्रवाह को सुगम बनाना शामिल हैं। कुल मिलाकर, इन कार्यक्रमों ने भीषण दरिद्रता, बेरोजगारी और जनता को अथाह दुखों के सागर में डुबो दिया। इन अर्थव्यवस्थाओं को विश्व साम्राज्यवादी अर्थव्यवस्था के साथ एकाकार होने के लिए बाध्य किया गया। इन अर्थव्यवस्थाओं को निर्यात-निर्देशित अर्थव्यवस्थाएँ बनना पड़ा। भुगतान सन्तुलन दुरुस्त करने की चिन्ताएँ प्रमुख चिन्ताएँ इसलिए बन गयीं क्योंकि जब विदेशी मुद्रा का खजाना भरा रहेगा तभी बेहतर ऋण सेवाएँ उपलब्ध करायी जा सकती हैं। इस मकसद को पूरा करने के लिए हर हाल में विदेशी निवेश को बढ़ावा देना ही है चाहे इसे उत्पादक गतिविधियों में इस्तेमाल किया जाये या सट्टा-कारोबार में। ऋण सेवाओं को पूरा करना सबसे अहम चिन्ता बन जाता है। इस तरह हम देखते हैं कि वित्त पूँजी के मुनाफे को सुनिश्चित करने के लिए 1990 के दशक में उत्पादक शक्तियों का विनाश किया गया। भारत को भी इसी स्थिति का सामना करना पड़ रहा है, जहाँ उद्योग बन्द किये जा रहे हैं, छँटनी और ले-ऑफ का बोलबाला है, निजीकरण जारी है और दरिद्रता के बीच अति उत्पादन के संकट का सामना करना पड़ रहा है।

साम्राज्यवादी कर्जों ने इन साम्राज्यवादी देशों की कम्पनियों के उत्पादों को बेचने में मदद की। जैसा कि हम जानते हैं कि ऐसे कर्जों के साथ इस तरह की शर्तें बँधी होती हैं जो कर्ज लेने वाले को किन्हीं खास कम्पनियों के उत्पादों को ही खरीदने के लिए अनिवार्य बना देती हैं। इस तरह इन उत्पादों की बिक्री से तो मुनाफा होता ही है पर साथ ही इन कर्जों पर मिलने वाले सूद से भी मुनाफा कमाया जाता है। वित्त पूँजी मालों के अति उत्पादन और पूँजी के अति संचय से छुटकारा पाने के लिए तरकीबें निकालती है और उत्पीड़ित देशों पर भारी बोझ लाद देती है। लेकिन अब यह भी नाकाफी होता जा रहा है। एक ताजा उदाहरण लें। विद्युत संयंत्र और मशीनरी उद्योग पर तीन इजारेदारियोंएबीबी एल्सटॉम, सीमेन्स और जनरल इलेक्ट्रिक का वर्चस्व है। वेस्टिंगहाउस जैसी बड़ी इजारेदारियाँ इसके पहले विलय कर चुकी हैं। ये भीमकाय इजारेदारियाँ आज इस हालत में हैं कि उन्हें संयंत्र निर्माण उद्योग में जारी मन्दी के कारण अपने संयंत्रों को बन्द करना पड़ेगा। विश्व की विद्युत उत्पादन क्षमता और विश्व माँग में बहुत बड़ा अन्तर है। ऐसी हालत से उबरने के लिए संयंत्रों को बन्द करना ही है। यह तभी हो सकता है जब इजारेदारी का विस्तार हो और होड़ पर रोक लगे। इस तरह इजारेदारी के विकास का अर्थ है उत्पादक शक्तियों का विनाश और मजदूरों की छँटनी व बेरोजगारी। दूसरी ओर विश्व बैंक और आई एम एफ के फरमानों पर नये संयंत्र स्थापित किये जा रहे हैं और पुराने बन्द किये जा रहे हैं ताकि अति उत्पादन (अति उत्पादन क्षमता के रूप में प्रकट) की समस्या का हल निकल सके। तीसरी दुनिया की सरकारों पर यह दबाव डाला जा रहा है कि वे विद्युत कम्पनियों को मुनाफे की गारण्टी दें। उदाहरण के लिए, भारत में सरकार ने 16 प्रतिशत लाभ की गारण्टी दी। महाराष्ट्र और उड़ीसा जैसे राज्यों को ऊर्जा क्षेत्र में सुधार के कड़ुवे अनुभवों से गुजरना पड़ा है। दुनिया के पैमाने पर अति उत्पादन की समस्या का हल इजारेदारियों का विस्तार करके और उत्पादक शक्तियों के विनाश के जरिये निकाला जा रहा है और ऐसा दुनिया की जनता के कन्धों पर भारी बोझ लादकर ही किया जा सकता है। (चाहे ये डब्ल्यू टी ओ के प्रावधान हों जिनके नतीजे के तौर पर सब्सिडियों में कटौती के नाम पर उत्पादन विस्तार के लिए दिये जाने वाले सरकारी प्रोत्साहनों में कटौती कर वृद्धि को रोकने का मसला हो या चाहे यूरोपीय संघ के सम्मिलन की शर्तों का मसला हो जिसका नतीजा सरकारी निवेश में कटौती के रूप में सामने आया, हर जगह हम उत्पादक शक्तियों का विनाश देखते हैं। यह दिलचस्प है कि उत्पादन बढ़ाने के लिए दी जाने वाली सब्सिडियों में कटौती की जा रही है जबकि 'उत्पादक सेवानिवृत्ति लाभ' जैसी योजनाओं के तहत उत्पादन से हाथ खींचने के लिए भारी मात्रा में सब्सिडी दी जा रही है।) इजारेदारियों का जो विलय हो रहा है वह दिखाता है कि वे अपनी-अपनी ताकत के हिसाब से विश्व बाजार को शान्तिपूर्ण तरीके से बाँट लेने के लिए तैयार हैं। उदाहरण के लिए, इतालवी कार इजारेदारी और अमेरिकी दैत्याकार कम्पनी

जनरल मोटर्स ने आपस में ही बाजार का बँटवारा सुनिश्चित करने के लिए विलय कर लिया है जिससे अपने ही बाजार में फिएट कार के साथ अमेरिकी दैत्य की होड़ पर लगाम लग गयी है। अगर इजारेदारी का विस्तार आज शान्तिपूर्ण तरीके से हो रहा है तो कल शक्ति-सन्तुलन में बदलाव होने पर यह ताकत के दम पर हो सकता है।

आज हम पाते हैं कि सट्टेबाज खुले हाथ खेल रहे हैं। वे विश्व स्तर पर निवेशों के जरिए और साथ ही दक्षिण-पूर्व एशिया में विकास की रफ्तार तेज करके भी मुनाफा बटोर रहे हैं। जब इस बढ़ी हुई रफ्तार को टिकाये रखना सम्भव नहीं हो पाता तो वे अपनी पूँजी खींच लेने की कोशिश करते हैं जिससे ऐसी तबाही मचती है कि भली-चंगी इकाइयाँ भी दिवालिया होने को बाध्य हो जाती हैं। दूसरी ओर, इन सट्टेबाजों ने रूसी अर्थव्यवस्था में कोहराम मचा रखा है। इसके बावजूद, वित्त पूँजी की ये विशाल राशियाँ मुनाफा कमाने के लिए पर्याप्त निकास पाने में असमर्थ हैं और यही वजह है कि अब जिस तरह उत्पादन की सबसे नयी शाखा में सट्टेबाजी हो रही है वह दिमाग चकरा देने वाला है। सूचना तकनोलॉजी क्षेत्र को, जो एक उभरता हुआ क्षेत्र है, एक वृद्धि वाले क्षेत्र के रूप में देखा जा रहा है और इसमें ऐसी सट्टेबाजी हो रही है कि बाजार में उन कम्पनियों का पूँजीकरण छलाँग लगाकर आगे बढ़ रहा है जिनका मुनाफा बिल्कुल भी नहीं हो रहा है। संकट इतना गहरा जान पड़ता है कि पूँजी के लाभकारी निवेश की जगहें बेहद सिकुड़ गयी हैं जिससे सट्टेबाज जहाँ भी मुनाफे की थोड़ी भी सम्भावना देखते हैं, बढ़-चढ़कर बोलियाँ, लगाने लगते हैं। इससे हम यह भी देखते हैं कि वास्तविक उत्पादन के सेक्टर से पूँजी चाहे जितनी स्वतंत्र नजर आये, यह इस सेक्टर में होने वाले परिवर्तनों से प्रभावित होती है और सट्टेबाज इसी के अनुसार अपनी कारगुजारियाँ करते हैं। (इसी प्रकार, तकनोलॉजी में परिवर्तन ने एक ही माल की उत्पादन मंजिलों को विभिन्न देशों में विभाजित कर दिया है। इस सन्दर्भ में दो परिवर्तनों का उल्लेख किया जा सकता हैकंटेनरीकरण (containerisation) और कम्प्यूटरीकृत संचार-प्रणालियाँ।) हर जगह सट्टेबाजी को बढ़ावा दिया जा रहा है, सरकारें सट्टा पूँजी के रास्ते सुगम बना रही हैं और भारत भी इसका अपवाद नहीं है। हम वायदा कारोबार और व्युत्पत्ति व्यापार और हर तरह की 'हेजिंग' युक्तियों (सट्टेबाजी में हानि से बचने के उपाय) का बनना देख रहे हैं जो दरअसल सिर्फ सट्टेबाजी के औजार हैं। जो वायदों के लेन-देन से जुड़े हैं वे बाजार कीमतों को जबर्दस्त ढंग से प्रभावित करते हैं। प्रत्यक्ष उत्पादक उनकी धुनों पर नाचने को बाध्य हैं। लेकिन इसके बावजूद वे बाजार के अन्ध नियमों के अधीन हैं और जब हालात उनके खिलाफ होते हैं तो ये उत्पादक ही सबसे अधिक नुकसान उठाते हैं। इस बारे में लेनिन ने कहा है :

''...पूँजीवाद का विकास उस मंजिल पर पहुँच चुका है जहाँ, यद्यपि माल उत्पादन का अब भी 'बोलबाला' होता है और यह आर्थिक जीवन का आधार बना रहता है, लेकिन असलियत में इसका महत्व कम हो चुका है और मुनाफे का बड़ा हिस्सा वित्तीय तीन-तिकड़म करने वाले 'जीनियसों' के पास चला जाता है। इन तीन-तिकड़मों और जालसाजियों का आधार समाजीकृत उत्पादन है; लेकिन मानवजाति की यह जबर्दस्त उन्नति, जिसकी बदौलत यह समाजीकरण हासिल हुआ है, सट्टेबाजों को...लाभ पहुँचाने के काम आती है'' **(साम्राज्यवाद, पूँजीवाद की चरम अवस्था)।**

हम पाते हैं कि आज सर्वाधिक शक्तिशाली साम्राज्यवादी शक्ति सबसे बड़ा कर्जदार देश भी है। इसका एक अच्छा-खासा हिस्सा सैन्य खर्चों पर व्यय होता है और अर्थव्यवस्था का यह सेक्टर है सैन्य-औद्योगिक कॉम्प्लेक्स जो अमेरिकी अर्थव्यवस्था का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। राज्य के खर्चे पर उद्योगों के संचालित होने का यह एक शानदार उदाहरण है (इस मामले में कीन्सवाद अब भी लागू है)। यह समूची प्रक्रिया बेहद जटिल होती है लेकिन इस तथ्य से यह बेहद आसान बन जाती है कि अमेरिका डालर के रूप में सबसे अधिक स्वीकार्य मुद्रा जारी करता है। आज हम यह भी देखते हैं कि तथाकथित तीसरी दुनिया के बहुतेरे देश डालर को अपनी मुद्रा के रूप में स्वीकार करने को बाध्य-से हैं। ऐसे में हम यह आसानी से अनुमान लगा सकते हैं कि अपनी आर्थिक नीतियों को गढ़ने में ये देश कितने आजाद हैं।

साम्राज्यवादी जुवे तले दबे उन देशों में, जिन्हें आम तौर पर तीसरी दुनिया कहा जाता है, विभिन्न प्रकार की अर्थव्यवस्थाएँ हैं और वे विकास की विभिन्न मंजिलों पर खड़ी हैं। एक तरफ दक्षिण कोरिया जैसे देश हैं जो औद्योगीकृत हैं और दूसरी तरफ हम रवाण्डा जैसे देश पाते हैं जिनकी अर्थव्यवस्थाएँ एक या दो कृषि उत्पादों के निर्यात पर निर्भर हैं। इसीलिए हम पाते हैं कि तीसरी दुनिया के कुछेक देशों में ही साम्राज्यवादी पूँजी निवेश का भारी संकेन्द्रण है। यही कारण है कि ये देश पूँजी संचय की गति बढ़ाने के लिए साम्राज्यवादी देशों की शर्तों के अनुसार विदेशी कर्जे लेते हैं। ऐसे भी देश हैं जहाँ खनन और कृषि क्षेत्र पूरी तरह साम्राज्यवादियों के नियंत्रण के अधीन हैं और वे इन देशों की अर्थव्यवस्था और राजनीति को लगभग पूरी तरह अपने नियंत्रण में रखते हैं। उदाहरण के लिए, ग्वाटेमाला जैसे मध्य अमेरिकी देश का मामला हमारे सामने है जहाँ सी आई ए ने 1954 में अमेरिका की **युनाइटेड फ्रूट कम्पनी** के हितसाधन के लिए तख्तापलट का जाल रचा था। इन देशों को 'बनाना रिपब्लिक' का नाम दिया गया था। दूसरी ओर, डि बीयर्स जैसी इजारेदारियाँ भी हैं जो अपने स्वार्थों के लिए अफ्रीका में भ्रातृघाती युद्धों को अन्जाम दे रही हैं। सियेरा लिओन और अंगोला के संघर्षों में इसका हाथ है जिसका नतीजा हीरों के अवैध खनन के रूप में सामने आया। दोनों हाथों से हीरा बटोरते हुए अघा जाने के बाद अब यह कम्पनी ऐसे युद्धों को खत्म करना चाहती है जो हीरों के खनन से हासिल पैसों के दम पर लड़ा जाता रहा है। इसने इन हीरों को संघर्षजनित हीरे और रक्तरंजित हीरे का नाम देते हुए संयुक्त राष्ट्र संघ और अमेरिकी राष्ट्रपति से इन युद्धों को रोकने की गुहार लगायी है। अपनी अर्थव्यवस्था का विश्लेषण करते हुए, हमें तीसरी दुनिया की अर्थव्यवस्थाओं की इन भिन्नताओं को ध्यान में रखना होगा। जैसाकि मार्क्स ने उल्लेख किया है कि आप चरवाहों के देश को ठीक उसी ढंग से नहीं लूट सकते जिस ढंग से सट्टेबाजी करने वाले किसी देश को। इस लूट के स्वरूप को ध्यान में रखते हुए हमें साम्राज्यवाद विरोधी अभियान की रूपरेखा तय करनी होगी। इस पर विस्तार से चर्चा करने से पहले, हमें क्यूबा का उदाहरण लेना चाहिए, जो साम्राज्यवाद के सामने, विशेषकर अमेरिकी साम्राज्यवाद के सामने तनकर खड़ा है। क्यूबा आज अपने डॉलर भण्डार का निर्माण करने के

लिए बाध्य है और धीरे-धीरे इसकी अर्थव्यवस्था का डालरीकरण हो रहा है। अगर यह प्रक्रिया जारी रहती है तो वहाँ हालत बदतर होती जायेगी और कालान्तर में यह अमेरिकी साम्राज्यवाद के पूर्ण और नग्न आधिपत्य की ओर जा सकता है। भारतीय पूँजीवादी अर्थव्यवस्था और बाजार साम्राज्यवादी पूँजी और साम्राज्यवादी व्यवस्था की जकड़ में है और इस व्यवस्था का आधिपत्य मजबूत हो रहा है। उदाहरण के लिए, साम्राज्यवादी विश्व बाजार की शर्तें कृषि क्षेत्र में बदलाव ला रही हैं जिन्हें बाजार की आकर्षक कीमतों के चलते किसान आबादी अपना रही है। जब तबाही का कहर टूटता है तो मेहनतकश किसान यह हताशापूर्ण सबक सीखता है कि समूचा खेल उसके लिए कितना महँगा साबित हो रहा है और विश्व बाजार की कीमतों की धुन पर नाचना उसके लिए सम्भव नहीं। अगर वे कदम से कदम मिलाना चाहते हैं तो महाराष्ट्र व आन्ध्र प्रदेश के कपास उत्पादक किसानों की नियति तक पहुँचने के लिए बाध्य हैं जिन्हें झटपट लाभ बटोरने का ख्वाब टूटने के बाद आत्महत्या की राह पर चलना पड़ा। यह बाजार अर्थव्यवस्था साम्राज्यवादी विश्व बाजार के उलटफेरों के अधीन है और इसके वर्चस्व और मातहती में काम करती है।

हम ऊपर देख चुके हैं कि कैसे साम्राज्यवाद के अन्तर्गत माल उत्पादन का महत्व कम होता जाता है और किस तरह समाजीकरण नयी ऊँचाइयों तक पहुँच जाता है। इसी कारण लेनिन ने साम्राज्यवाद को सर्वहारा समाजवादी क्रान्ति की पूर्ववेला कहा है। इस समाजीकरण के स्थान पर मुक्त प्रतियोगिता के युग वाले पूँजीवाद, जनवादी पूँजीवाद को रखने के बारे में सोचने को उन्होंने निम्न-बुर्जुआ कल्पनालोक कहा है और इस समाजीकृत व्यवस्था के पूँजीवादी खोल को हटाने और इसकी जगह समाजवाद को रखने की जरूरत को स्पष्ट किया है। ऐसा नहीं है कि साम्राज्यवाद होड़ का खात्मा कर देता है। असल में होता यह है कि साम्राज्यवाद पूँजीवाद के सभी अन्तरविरोधों को तीखा कर देता है जो सर्वहारा क्रान्तियों की दिशा में ही ले जाते हैं। सर्वहारा क्रान्तियों के प्रथम चक्र की पराजय के बाद आज जब हम साम्राज्यवादी व्यवस्था के विकल्प की चर्चा करते हैं तो हमारे शिविर में बहुत से लोग समाजवाद के बारे में नहीं सोचते। ऐतिहासिक रूप से, यह समाजवाद ही है जो साम्राज्यवाद के खिलाफ कारगर प्रतिरोध खड़ा कर रहा था। आज जब साम्राज्यवाद के खिलाफ बहादुराना ढंग से लड़ने वाले और उसे पराजित करने वाले देश अपने यहाँ बाजार अर्थव्यवस्थाओं का निर्माण करने की कोशिश कर रहे हैं तो वे साम्राज्यवादी पूँजी पर निर्भर रहने के लिए बाध्य किये जा रहे हैं। लेकिन हमारे मित्र स्वतंत्र पूँजीवाद का निर्माण करने का स्वप्न देखते हैं। निम्न-बुर्जुआ वर्ग की फितरत के अनुसार वे पूँजीवाद के हथियारों से पूँजीवाद से लड़ने की कोशिश कर रहे हैं। लेकिन साम्राज्यवाद पूँजीवाद की चरम अवस्था है और यह बड़ी पूँजी, इजारेदार पूँजी है जो छोटी पूँजी को हजम कर जाती है, उसे अपने मातहत कर लेती है। लेकिन इससे हमें यह नहीं समझना चाहिए कि साम्राज्यवाद के युग में केवल इजारेदार पूँजी ही मौजूद रहती है। ऐसा शुद्ध साम्राज्यवाद कभी मौजूद नहीं रहा है, न ही मौजूद है और न ही कभी रहेगा। साम्राज्यवाद पूँजीवाद के आधार पर मौजूद रहता है। लेकिन यह स्वतंत्र पूँजी के अस्तित्व को बेहद मुश्किल बना देता है और होड़ के दौरान अगर ऐसी पूँजी को बचे रहना है तो इसे साम्राज्यवादी या इजारेदार पूँजी के साथ समझौता करना होता है। लेनिन ने किसी मुक्त प्रतियोगिता या जनवादी पूँजीवाद के आदर्श की बात नहीं की है और काउत्स्की के साथ अपनी बहस में उन्होंने साम्राज्यवाद के युग में ऐसे पूँजीवाद की स्थापना करने के आह्वान को एक प्रतिक्रियावादी यूटोपिया का नाम दिया है। आज चाहे क्यूबा हो या उत्तरी कोरिया या वियतनाम ही क्यों न हो, इन सभी देशों का ऐतिहासिक अनुभव इसे साबित करता है। दूसरी ओर, हम पाते हैं कि बाजार काम नहीं कर रहा। बात केवल यह नहीं कि यह व्यवस्था संकटों में फँसी हुई है और जार्ज सोरोस जैसे धुरन्धर सट्टेबाज को भी मानना पड़ा है कि पूँजीवाद का पतन हो चुका है बल्कि, उदाहरण के लिए, रूस में वस्तु-विनिमय की प्रणाली की वापसी हुई है। आज विश्व राजनीति प्रतिक्रियावादी, दक्षिणपन्थी मोड़ ले चुकी है और ऐसे समय में जब बाजार की आरती उतारी जा रही है तो हमारे निम्न बुर्जुआ सिद्धान्तकार एक आर्थिक व्यवस्था के रूप में समाजवाद में आस्था खो बैठे हैं। वे लेनिन-स्तालिन के दिनों के अनुभव को आज नकार रहे हैं। वे बाजार में या पूँजीवादी व्यवस्था में इस तरह की आस्था प्रदर्शित करते हैं गोया वे इस व्यवस्था के भीतर, इसमें मौजूद दरारों का इस्तेमाल करते हुए जोड़-तोड़ के बारे में ही सोच सकते हैं। यही कारण है कि ये लोग खुद को एन.जी.ओ. के छोटे आन्दोलनों या एन जी ओ मार्का आन्दोलनों तक ही सीमित कर देना चाहते हैं। अगर हम साम्राज्यवाद के खिलाफ ऐसे अभियानों पर गौर करें तो हम बहुप्रचारित **नयी अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था** जैसे बहुतेरे प्रयास पायेंगे। वे केवल साम्राज्यवाद के जनवादीकरण और उसमें सुधार की मीठी लोरियों के जरिये साम्राज्यवाद विरोधी संघर्षों की धार को कुन्द करने में ही कामयाब हुए हैं। यही कारण है कि हमने एकदम शुरुआत में ही साम्राज्यवाद को किसी तरह की नीति, रणकौशल या किसी षड्यंत्र के रूप में समझने के खिलाफ आगाह किया था। अगर हम साम्राज्यवादी शासन से पैदा होने वाली समस्याओं को ऐसी किसी नीति के रूप में देखेंगे तो हम ऊपर कही गयी परियोजनाओं के साथ सामने आने के लिए बाध्य हैं और साम्राज्यवाद का जनवादीकरण करने की भ्रान्ति से नुकसान उठायेंगे।

अपने संकट से उबरने की कोशिश में साम्राज्यवाद इजारेदारी को नयी ऊँचाइयों तक ले जा रहा है। यह इतना परजीवी हो चुका है कि सबसे बड़ी साम्राज्यवादी अर्थव्यवस्था वाला देश सबसे बड़ा कर्जदार देश बन चुका है और इसकी अर्थव्यवस्था सैन्य खर्चों के चलते ही सुचारु रूप से चल पा रही है। हम देख चुके हैं कि तकनोलॉजी में कुछ परिवर्तनों ने किसी एक उत्पाद के उत्पादन को विभिन्न देशों में फैला देना सुगम बना दिया है। इन परिवर्तनों और ऊपर बताये गये अन्य कारकों के मद्देनजर पिछड़े देश साम्राज्यवादी पूँजी के लिए कई प्रकार की छूटें देते हैं या देने के लिए बाध्य होते हैं। वे मुक्त व्यापार क्षेत्र बनाते हैं जहाँ श्रम कानून लागू नहीं होते या उन्हें ढीला कर दिया जाता है और उन्हें कई प्रकार के टैक्सों में या आयात-निर्यात कानूनों आदि में भी छूटें दी जाती हैं। यह साम्राज्यवाद की परजीविता को और बढ़ा देता है। संयुक्त राज्य अमेरिका जैसा देश मालों का शुद्ध आयातक बन जाता है और ब्रिटेन विऔद्योगीकरण (deindustrialisation) से गुजर रहा है। इसके साथ ही संगठित मजदूर आन्दोलन और ट्रेड

यूनियनों की कमर तोड़ देने की मुहिम भी शुरू हुई है। 1980 के दशक में कोयला खनिकों की हड़ताल और 1990 के दशक में लिवरपूल गोदी मजदूरों की हड़ताल को पराजय का मुँह देखना पड़ा था और यह सर्वाधिक सशक्त ट्रेड यूनियन आन्दोलन की धरती ब्रिटेन की ट्रेड यूनियनों की ताकत के खात्मे का संकेत था। इस सन्दर्भ में, यह उल्लेख अप्रासंगिक नहीं होगा कि अगर साम्राज्यवादी देशों में मजदूर वर्ग की हारों के सिलसिले को उलटना है और अगर पूँजी के हमलों का प्रतिरोध करना है तो मजदूरों को अवसरवाद से नाता तोड़ना होगा। केवल तभी वे पिछड़े देशों के अपने बिरादरों से जुड़ सकते हैं और साम्राज्यवाद के खिलाफ एक मोर्चा बना सकते हैं। वरना उन्हें आगे भी अपनी आजीविका पर हमलों का सामना करना पड़ेगा और वित्त पूँजी तथाकथित तीसरी दुनिया का शोषण कर अपना मुनाफा बटोरती रहेगी। गुजरे दिनों में मजदूर वर्ग की अवसरवादी राजनीति ने उन्हें निहत्था बना दिया है और अवसरवाद के खिलाफ केवल निर्णायक विच्छेद ही आज उन्हें बचा सकता है। इसके साथ ही कम्युनिस्ट आन्दोलन की पुनर्रचना करने का प्रश्न आ खड़ा होता है।

साम्राज्यवाद वृद्धि दर पर लगाम कसने के उपाय गढ़ रहा है जो उसकी मरणासन्नता को दिखाता है। इसने सट्टा पूँजी के हितों को पूरा करने के लिए समूची अर्थव्यवस्थाओं के विनाश का रास्ता पकड़ लिया है और हर जगह यह किसी अदना-सी बात पर भी फौजी बूटों का सहारा ले रहा है जो यह दिखाता है कि वह सचमुच जराजीर्ण हो चुका है। दुनिया की जनता पर असहनीय बोझ लाद देने के बावजूद यह खुद को संकट से बाहर खींचने में असमर्थ है। यह देखते हुए, सवाल उठता है कि धमकियों और करारों के जरिये अन्तर-साम्राज्यवादी अन्तरविरोधों को सुलझाने का यह दौर आखिर कब तक चलेगा? आने वाले दिनों में दुनिया की जनता को लूटने के लिए किसी आम समझौते तक पहुँचना सम्भव न रहेगा और तब अन्तर-साम्राज्यवादी अन्तरविरोध तीखे होंगे और दुनिया की जनता इन अन्तरविरोधों के समाधान के रास्ते तलाशेगी, बेशक उसे अकथनीय कष्टों का सामना करना पड़ेगा। आज जब विश्व सर्वहारा क्रान्ति को अस्थायी पराजय का सामना करना पड़ा है और दुनिया की जनता का एक हिस्सा अब भी इस व्यवस्था में आस्था रखती है तब सर्वहारा वर्ग को एक स्पष्ट और दृढ़ नीति अपनानी होगी जिससे इस ढुलमुलयकीन जमात को अपनी तरफ लाया जा सके। इस तरह का युद्ध केवल समाजवाद के परचम तले ही लड़ा जा सकता है क्योंकि केवल समाजवादी व्यवस्था ही दुनिया की जनता को साम्राज्यवादी व्यवस्था के नागपाश और इसके संकटों से मुक्त कर सकती है। हमें मजदूर वर्ग के ऐतिहासिक कार्यभार को पूरा करने के लिए अन्तरराष्ट्रीय प्रयासों और अन्तरराष्ट्रवाद की जरूरत है। मजदूर वर्ग के ऐतिहासिक कार्यभार को पूरा करने की किसी भी चर्चा में अनिवार्य रूप से अन्तरराष्ट्रीय स्तर के प्रयास और अन्तरराष्ट्रवाद समाहित होने चाहिए। कहने की जरूरत नहीं कि हमें अपनी क्रान्ति राष्ट्रीय दायरे में ही सम्पन्न करनी है। सर्वहारा क्रान्ति का अन्तरराष्ट्रीय चरित्र विश्व साम्राज्यवादी अर्थव्यवस्था की एकता की अभिव्यक्ति है जबकि अलग-अलग देशों में अलग-अलग समयों पर क्रान्ति का फूटना इसके अलग-अलग अंगों के असमान विकास को अभिव्यक्त करता है। यही राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय का द्वंद्व है।

पूँजीवादी संचय की स्थितियों को बरकरार रखने के लिए उत्पादक शक्तियों का विनाश जरूरी हो गया है ताकि वित्त पूँजी के मुट्ठीभर महाप्रभुओं का अतिलाभ बरकरार रखा जा सके। हमारे लिए परिस्थिति एकदम दो-टूक हैया तो इन उन्नत उत्पादक शक्तियों के सहारे हम समाजवाद का निर्माण करें या पूँजी के साम्राज्य को बचाये रखने के लिए विनाश का सामना करें। हम एक ऐसे ऐतिहासिक मुकाम पर खड़े हैं जहाँ हमारे सामने विकल्प बस यही हैसमाजवाद या बर्बरता। साम्राज्यवाद दुनिया की जनता का घनघोर शत्रु है और हमारे देश में यह पूँजीवादी व्यवस्था के जरिये काम करता है। हमारे देश से साम्राज्यवादी शासन को उखाड़ फेंकने के लिए भारत में हमें पूँजी के शासन को उखाड़ फेंकना होगा। और यह काम पूँजी के धुर विरोधी वर्गमजदूर वर्ग के नेतृत्व में ही पूरा किया जा सकता है और इसे गरीब किसान आबादी तथा शहर व गाँव के मेहनतकशों के संश्रय के जरिये हासिल किया जा सकता है। केवल इस प्रकार का रणनीतिक परिप्रेक्ष्य ही साम्राज्यवाद-विरोधी संघर्ष को सही दिशा में ले जा सकता है।

●

"युद्ध के असली सामाजिक चरित्र का, यानी असली वर्ग-चरित्र का प्रमाण स्वभावतः युद्ध के कूटनीतिक इतिहास में नहीं, बल्कि युद्ध में शामिल **तमाम** देशों के शासक **वर्गों की वस्तुपरक** स्थिति के विश्लेषण में मिलता है। इस वस्तुपरक स्थिति का चित्रण करने के लिए हमें उदाहरण या अलग-थलग तथ्य-सामग्री नहीं (सामाजिक जीवन की परिघटनाओं की अत्यधिक जटिलता के कारण उनमें से कितने ही उदाहरण या अलग-थलग तथ्य चुनकर किसी भी प्रमेय को सिद्ध किया जा सकता है), बल्कि लड़ने वाले **तमाम** देशों के और पूरी दुनिया के आर्थिक जीवन के आधारों से सम्बन्धित सम्पूर्ण तथ्य-सामग्री लेनी चाहिए।"

लेनिन

साम्राज्यवाद, पूंजीवाद की चरम अवस्था
(फ्रांसीसी और जर्मन संस्करणों की भूमिका)

पूंजीवादी पथगामी पूंजीवादी उत्पादन सम्बन्धों के प्रतिनिधि हैं

चुआङ लान

चीन में समाजवाद की समस्याओं से लगातार जूझते हुए, पूंजीवादी पुनर्स्थापना के लिए लगातार प्रयत्नशील संशोधनवादियों से मोर्चा लेते हुए और विश्व पटल पर ख्रुश्चेवी संशोधनवादियों पर लगातार प्रत्याक्रमण करते हुए माओ त्से-तुङ ने व्यवहार और चिन्तन की एक लम्बी प्रक्रिया से गुजरने के बाद सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति की सैद्धान्तिक पूर्वपीठिका तैयार की। समाजवादी संक्रमणकालीन आर्थिक मूलाधार और अधिरचना में मौजूद पूंजीवादी पुनर्स्थापना के कारक तत्वों की गतिकी को समझने के बाद माओ ने यह मार्ग निकाला कि समाजवाद के दौर में वर्ग संघर्ष का संचालन किस प्रकार किया जायेगा और पूंजीवादी पुनर्स्थापना के लिए प्रयत्नशील नये-पुराने बुर्जुआ तत्वों और उनके आधारों को नष्ट करते हुए कम्युनिज्म की ओर प्रयाण करने की आम दिशा क्या होगी। इसी चिन्तन और प्रयोग के दौरान "सर्वहारा वर्ग के सर्वतोमुखी अधिनायकत्व के अन्तर्गत सतत क्रान्ति" और "अधिरचना में क्रान्ति" जैसी अवधारणाएं सामने आयीं और विकसित हुईं।

फरवरी 1966 में पहले 'सांस्कृतिक क्रान्ति ग्रुप' के गठन के साथ ही मानो सर्दियों के अन्त की घोषणा कर दी गई। '7 मई निर्देश' के द्वारा शिक्षा में क्रान्ति' विषयक सूत्र पेश करके माओ ने वसंत के वज्रनाद के बाद, गर्मियों का ताप पैदा करने का काम शुरू कर दिया, जिसे '16 मई निर्देश' और नये सांस्कृतिक क्रान्ति ग्रुपों के गठन से एक नया संवेग मिला। यथास्थिति के पोषकों और यथास्थिति के आलोचकों के बीच दो लाइनों का संघर्ष विश्वविद्यालयों- कालेजों और संस्कृति के दायरों से आगे बढ़कर कल-कारखानों और गांवों तक फैल गया। 29 मई को सिनहुआ विश्वविद्यालय में रेडगार्डों की पहली टुकड़ी गठित हुई। 16 जुलाई को 66 वर्षीय माओ ने तूफानी याङ त्से नदी का विशाल पाट तैरकर पार करके प्रतीकात्मक रूप से चीनी जनता को धारा के विरुद्ध खड़े होने और तूफानों से मोर्चा लेने का संदेश दिया। एक अगस्त को पार्टी की केन्द्रीय कमेटी के प्लेनम के बाद 5 अगस्त को माओ ने "हेडक्वार्टर को ध्वस्त करो" नामक अपना ऐतिहासिक "बड़े चित्राक्षरों वाला पोस्टर" जारी किया और पार्टी के नेतृत्व में जड़ जमाये बैठे पूंजीवादी पथगामियों पर सीधे हल्ला बोलने का संदेश दिया। इसके तीन दिन बाद ही चीनी पार्टी की केन्द्रीय कमेटी ने निर्णय लेकर वह इतिहास-प्रसिद्ध सोलह सूत्री सर्कुलर जारी किया जिसे सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति का पहला कार्यक्रमपरक, ठोस दस्तावेज माना जाता है।

महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के तीसरे दशाब्दी वर्ष के अवसर पर हमने नवम्बर 1996 के अंक से इस क्रान्ति के चुने हुए दस्तोवेजों और लेखों के प्रकाशन का सिलसिला शुरू किया था। अब तक हम 'सोलहसूत्री सर्कुलर', 'सर्वहारा अधिनायकत्व की विजय अमर रहे' (पार्टी अखबारों के संपादकमंडल द्वारा), 'बुर्जुआ वर्ग पर सर्वतोमुखी अधिनायकत्व लागू करने के बारे में' (चाङ चुन-चियाओ), 'पेरिस कम्यून की महान शिक्षाएं' (चेङ चिह-स्तजू), 'महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति अमर रहे' ('लाल झण्डा' का सम्पादकीय), 'एक युगान्तरकारी दस्तावेज' (16 सूत्री सर्कुलर के प्रकाशन की दूसरी वर्षगांठ पर प्रमुख अखबारों के सम्पादकीय विभागों का लेख), 'चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की नवीं कांग्रेस में प्रस्तुत रिपोर्ट', 'पूंजीवादी पथगामी पार्टी के भीतर बैठा बुर्जुआ वर्ग है' (फाङ काङ), 'कम्युनिस्टों को सर्वहारा वर्ग के अग्रणी तत्व होना चाहिए' (प्रमुख अखबारों के सम्पादकीय विभागों का लेख), 'सतत क्रान्ति के अध्यक्ष माओ के सिद्धान्त का अध्ययन करो' (चाओ चाङ), 'समाजवादी काल में वर्ग संघर्ष के नियम' (चि पिङ), 'इतिहास कुण्डलाकार गति से आगे बढ़ता है' (हुङ यू), 'केन्द्रीय अध्ययन कक्षा को रिपोर्ट' (वाङ हुङ-वेन) तथा 'सर्वहारा अधिनायकत्व के सिद्धान्त का भली-भांति अध्ययन करो' का प्रकाशन कर चुके हैं। इसके अलावा सांस्कृतिक क्रान्ति तथा माओकालीन चीन में मार्क्सवाद पर जार्ज थामसन के लेख भी हमने छापे हैं। इन तथा महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के कुछ अन्य महत्वपूर्ण दस्तावेजों को जल्दी ही 'राहुल फाउण्डेशन' द्वारा पुस्तकाकार प्रकाशित करने की योजना है।

सम्पादक

क्रान्ति के लिए वर्ग विश्लेषण एक महत्वपूर्ण हथियार है। अपनी उत्कृष्ट रचना *'चीनी समाज में वर्गों का विश्लेषण'* में अध्यक्ष माओ ने स्पष्ट किया थाः **"वास्तविक मित्रों और वास्तविक शत्रुओं के बीच भेद करने के लिए, हमें चीनी समाज में विभिन्न वर्गों की आर्थिक स्थिति और क्रान्ति के प्रति उनके रुख का अनिवार्य रूप से आम विश्लेषण करना चाहिए।**" अध्यक्ष माओ की यह हिदायत आज पार्टी में मौजूद पूंजीवादी पथगामियों की वर्गीय अन्तर्वस्तु के हमारे विश्लेषण और हमारी इस समझदारी के लिए समान रूप से मार्गदर्शक महत्व रखती है कि पार्टी के पूंजीवादी पथगामी समाजवादी क्रान्ति के मुख्य निशाने पर हैं।

आर्थिक स्थिति का अर्थ किसी समाज में उत्पादन सम्बन्धों में किसी वर्ग की अवस्थिति से है। जैसा कि लेनिन ने निर्दिष्ट किया थाः समाजवादी समाज दो प्रकार की सामाजिक-आर्थिक संरचनाओं की अभिलाक्षणिक विशेषताओं को अपने में समेटे रहता है और यह "मरणशील पूंजीवाद और नवजात

कम्युनिज्म के बीच संघर्ष का काल" है। ("सर्वहारा अधिनायकत्व के युग में अर्थनीति और राजनीति")। पार्टी के भीतर मौजूद पूंजीवादी पथगामी अधिरचना और उत्पादन सम्बन्धों पर कब्जा जमाने की हर मुमकिन कोशिश द्वारा, जो समाजवादी आर्थिक आधार और उत्पादक शक्तियों के विकास को अवरुद्ध करते हैं, पूंजीवादी पुनर्स्थापना की नाकाम कोशिशों में जुटे रहते हैं। समाजवादी समाज में वे पूंजीवादी उत्पादन सम्बन्धों के प्रतिनिधि होते हैं जो पराजित तो कर दिये गये हैं पर अभी पूरी तरह खत्म नहीं हुए हैं।

आइये सबसे पहले हम उत्पादन के साधनों पर मालिकाने की स्थिति को लें। हमारे देश में फिलहाल बुनियादी रूप से राजकीय स्वामित्व और सामूहिक स्वामित्व वाली समाजवादी प्रणाली लागू है। स्वामित्व की इन दो प्रणालियों के बीच मेहनतकश अवाम सर्वहारा अधिनायकत्व के राज्य या सामूहिक आर्थिक इकाइयों के जरिये सामूहिक स्वामित्व वाले उत्पादन के साधनों पर अधिकार रखते हैं और उनका आवण्टन करते हैं, और उत्पादन के साधनों के व प्रबन्धन की शक्ति तथा उत्पादों के वितरण की शक्ति घनीभूत रूप में राजनीतिक नेतृत्व की शक्ति के रूप में अभिव्यक्त होती है। इन दो प्रकार की प्रणालियों के अस्तित्व और माल-व्यवस्था एवं मुद्रा के जरिये विनिमय के चलन के कारण मूल्य का नियम तथा अन्य आर्थिक कोटियां जो पूंजीवादी समाज में हावी रहती हैं, अभी भी क्रियाशील रहती हैं, हालांकि उन्हें सीमित किया जा चुका होता है। समूची जनता के स्वामित्व वाली इकाइयों और सामूहिक स्वामित्व वाली इकाइयों के बीच ही नहीं बल्कि खुद समूची जनता के स्वामित्व वाली इकाइयों के बीच भी स्वतंत्र आर्थिक लेखा-जोखा समाजवादी नियोजित अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत ही किया जाना चाहिए। इस कारण, नेतृत्व की शक्ति का नियंत्रण करने वाले लोग क्या अध्यक्ष माओ की सर्वहारा क्रान्तिकारी कार्यदिशा को ईमानदारी के साथ आगे बढ़ाते हैं, क्या वे समाजवादी नियोजित अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत मूल्य के नियम जैसी चीजों के कुछ सकारात्मक प्रभावों को मौजूदा मंजिल में अपने इस्तेमाल में ला सकते हैं या मालों के विनिमय को जानबूझकर फैलाने और समाजवादी नियोजित अर्थव्यवस्था को कमजोर करते हैं या उसकी जड़ खोदते हैंइन बातों का स्वामित्व की प्रणाली की वर्गीय प्रकृति पर सीधा असर पड़ता है। अध्यक्ष माओ ने इंगित किया थाः **"ऐसा लगता है कि महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति को आगे बढ़ाने के लिए सिर्फ इससे काम नहीं चलेगा, क्योंकि हमारी बुनियाद ठोस नहीं है। मेरे प्रेक्षणों के अनुसार, मुझे डर है कि काफी बड़ी संख्या में कारखानों मेंमेरा मतलब यह नहीं कि सभी में, बल्कि उनकी भारी बहुसंख्या मेंनेतृत्व सच्चे मार्क्सवादियों या मेहनतकश जनसमुदाय के हाथों में नहीं था। ऐसा नहीं है कि कारखानों की जिम्मेदारी सम्हाले लोगों में अच्छे लोग नहीं थे। अच्छे लोग थे। सचिवों, उपसचिवों और पार्टी कमेटी के सदस्यों और पार्टी शाखा के सचिवों के बीच अच्छे लोग थे। लेकिन वे ल्यू शाओ-ची की लाइन का अनुसरण कर रहे थेसर्वहारा राजनीति को प्रोत्साहित करने के बजाय वे सीधे-सीधे भौतिक प्रोत्साहनों का सहारा ले रहे थे, बोनस थमा रहे थे और इसी तरह की बहुतेरी चीजें अमल में ला रहे थे।"** यहां भौतिक प्रोत्साहन और मुनाफे को कमान में रखना मालों के विनिमय के सिद्धान्त के हानिकारक फैलाव की अभिव्यक्ति है। अगर किसी विभाग या इकाई का नेतृत्व पूंजीवादी पथगामियों के कब्जे में आ जाता है, जो पूरे जोशोखरोश से संशोधनवादी लाइन को आगे बढ़ाते हैं, तो समाजवादी उत्पादन अधिकतम मुनाफे को एकमात्र लक्ष्य बनाकर उसका पीछा करने के साथ पूंजी के मूल्य को लगातार बढ़ाते जाने वाले आन्दोलन में बदल जायेगायानि एक पूंजीवादी उजरती श्रम प्रणाली में बदल जायेगा। ऐसे में स्वामित्व की समाजवादी प्रणाली सिर्फ एक "बाहरी खोल" भर रह जाती है, दरअसल यह पूंजीवादी पथगामियों के नियंत्रण में पूंजीवादी स्वामित्व की प्रणाली हो जाती है और वास्तव में सर्वहारा वर्ग और मेहनतकश जनसमुदाय उत्पादन के साधनों के इस हिस्से को खो बैठेंगे।

लोगों के बीच आपसी सम्बन्धों के नजरिये से देखा जाये तो समाजवादी व्यवस्था, जो आदमी द्वारा आदमी के शोषण और उत्पीड़न पर आधारित नहीं होती, ऐसी व्यवस्था होती है जिसमें क्रान्तिकारी पाँतों की कतारों और जनसमुदाय के बीच तथा ऊपर और नीचे के स्तरों के बीच बराबरी के कामरेडाना सम्बन्ध होने चाहिए। लेकिन फिर भी, तीन मुख्य अन्तर मौजूद होते हैं और समाज में श्रम विभाजन की पुरानी परिपाटी और सोपान प्रणाली भी मौजूद होती है और इन सब मायनों में बुर्जुआ अधिकार भारी परिमाण में मौजूद होते हैं। यहां तक कि लोगों के आपसी सम्बन्धों में मौजूद बुर्जुआ अधिकार जिनका आज निश्चित ही उन्मूलन कर दिया जाना चाहिए जैसे कि रूढ़ सोपान क्रम जो ऊपर से थोपा हुआ होता है और जनता से कटा होता है, दूसरों के साथ गैर बराबरी का व्यवहार और इसी तरह की और बातों का चलन खत्म कर दिये जाने के बाद भी अक्सर फिर से पैदा हो जाते हैं। अगर किन्हीं विभागों का नेतृत्व पूंजीवादी पथगामियों द्वारा हथिया लिया जाता है तो वे लोगों के सम्बन्धों में मौजूद बुर्जुआ अधिकारों को मजबूत बनाते हैं और फैलाते हैं, मजदूरों को "नियंत्रण, जांच और उत्पीड़न" के अधीन बना लेते हैं, लोगों के बीच मौजूद समाजवादी सम्बन्धों को पूंजीवादी भाड़े के सम्बन्धों में बदल डालते हैं और बुर्जुआ अधिनायकत्व थोप देते हैं। यह स्थिति आज के सावियत संघ में खास तौर पर उजागर है। सोवियत राजकीय स्वामित्व वाले उद्यमों में मजदूर वर्ग अतिरिक्त मूल्य निचोड़ने की मानव सामग्री बन चुका है। मजदूरों की छंटनी के लिए मैनेजर कोई भी "कारण" बहाने के रूप में इस्तेमाल कर सकते हैं। मजदूरों के हिस्से में सिर्फ "श्रम अनुशासन और आन्तरिक नियमों का पालन करने" और सिर झुकाकर काम करने का "दायित्व" होता है। सोवियत सामूहिक फार्मों पर, निदेशक किसानों पर यही बात थोपते हैं और "अपनी मर्जी के मालिक" होते हैं। जैसा कि वे स्वयं स्वीकार कर चुके हैं, वे किसानों पर "चाबुक फटकारने वाले की भूमिका निभा रहे" हैं। देखिए, सोवियत पार्टी के भीतर मुट्ठीभर पूंजीवादी पथगामियों और व्यापक मेहनतकश समुदाय एवं किसानों के बीच के सम्बन्ध मालिक और कर्मचारी, शासक और शासित के बीच के सम्बन्ध में बदल गये हैं। पूंजीवादी समाज में मजदूरों और पूंजीपतियों के बीच के सम्बन्धों को उजागर करते हुए मार्क्स और एंगेल्स ने चिन्हित किया थाः **मजदूर "बुर्जुआ वर्ग और बुर्जुआ राज्य के न केवल गुलाम होते हैं, वरन प्रतिदिन और प्रतिघण्टा मशीनों, फोरमैनों और सबसे पहले तो वे खुद कारखाना मालिकों के गुलाम होते हैं।"** *(कम्युनिस्ट घोषणापत्र)*। आज, ल्यू शाओ-ची, लिन प्याओ और देङ सियाओ पिङ जैसे घोर पूंजीवादी

पथगामियों द्वारा आगे बढ़ायी जाने वाली संशोधनवादी लाइन, अन्तिम विश्लेषण में, सर्वहारा वर्ग को पूंजी की बेड़ियों में फिर से जकड़ देने और उन्हें बुर्जुआ राज्य का गुलाम बना देने के लक्ष्य पर केन्द्रित है।

पार्टी के भीतर बुर्जुआ वर्ग की मौजूदगी का एक दूसरा लक्षण है वितरण के क्षेत्र में बुर्जुआ अधिकारों को मजबूत बनाने और विस्तारित करने के लिए एड़ी-चोटी का जोर लगा देना और बदले में कुछ दिये बिना दूसरों के श्रम पर कब्जा जमा लेना। अध्यक्ष माओ कहते हैं: **"इस समय हमारे देश में माल व्यवस्था लागू है, वेतन प्रणाली भी असमान है, जैसा कि आठ ग्रेड वाले वेतनमान और ऐसी ही दूसरी चीजों से स्पष्ट है। सर्वहारा के अधिनायकत्व के अन्तर्गत इन्हें केवल सीमित किया जा सकता है।**" समाजवाद के दौर में, "हरेक से उसकी क्षमतानुसार हरेक को उसकी आवश्यकतानुसार" के सिद्धान्त पर अमल करने के अलावा कोई विकल्प नहीं है। इसका अर्थ है अलग-अलग मजदूरों द्वारा किये गये श्रम की अलग-अलग मात्रा के अनुसार वितरण। लेकिन जैसा कि मार्क्स ने चिन्हित किया था, **"यहां समानता का अधिकार सिद्धान्ततः एक बुर्जुआ अधिकार ही है।"** *(गोथा कार्यक्रम की आलोचना)*। वस्तुतः, वितरण के क्षेत्र में असमानता की कई परिघटनाएं अब भी मौजूद रहती हैं। सर्वहारा अधिनायकत्व के अन्तर्गत इन असमानताओं को धीरे-धीरे सीमित और समाप्त किया जाता है या उन्हें सचेतन तौर पर मजबूत बनाया और बढ़ाया जाता हैयह मार्क्सवाद और संशोधनवाद के बीच महत्वपूर्ण विभाजन रेखा है। वर्गों के जन्म की चर्चा करते हुए एंगेल्स ने इंगित किया था, **"वितरण में असमानता के प्रकट होने के साथ ही वर्ग विभेद भी उत्पन्न हुए। समाज विशेषाधिकार प्राप्त लोगों और अधिकारविहीनों, शोषक और शोषित, शासक और शासित के बीच बंट जाता है।"** *(ड्यूहरिंग मत खण्डन)*। वितरण में बुर्जुआ अधिकार की मौजूदगी दरअसल जनता के एक हिस्से को किसी दूसरे के श्रम के ऊपर बदले में कुछ दिये बिना अधिकार जमाने की इजाजत देना है, जिसका अर्थ है वर्ग विभेदों को बढ़ावा देना। आज सोवियत संघ में, क्या ब्रेझनेव के नेतृत्व में मुट्ठी भर बुर्जुआ विशेषाधिकार प्राप्त तबका और बौद्धिक अभिजात वर्ग पूंजीवाद की पुनर्स्थापना के रास्ते पर चलते हुए एक शोषक वर्ग के रूप में नहीं विकसित हो चुका है? जिस हैसियत और सत्ता पर उन्होंने कब्जा जमा लिया है, उसका सहारा लेकर, वेतन और बोनस बढ़ाने, लेखकों की पाण्डुलिपियों के बदले भुगतान करने जैसे हथकण्डों का इस्तेमाल कर और हर तरह के विशेषाधिकारों, भ्रष्टाचार, चोरी और मुनाफाखोरी का सहारा लेकर उन्होंने बड़े पैमाने पर मजदूरों और किसानों के श्रम पर कब्जा जमा लिया है। दूसरी ओर, मजदूरों और किसानों की आबादी पूरी तरह गुलामों और उत्पीड़ितों की स्थिति में धकेल दी गयी है और उत्तरोत्तर गरीबी की चपेट में आती जा रही है। सोवियत संघ में पूंजीवादी पुनर्स्थापना का ऐतिहासिक सबक पूरी तरह यह दिखाता है कि सर्वहारा अधिनायकत्व और उत्पादन के साधनों पर सार्वजनिक स्वामित्व को सुदृढ़ बनाते समय, समाजवादी राज्य के लिए वितरण के क्षेत्र में बुर्जुआ अधिकारों को सीमित करना कितना महत्वपूर्ण है, जिससे पार्टी और राज्य को रंग बदलने से रोका जा सके। यही कारण है कि पेरिस कम्यून के अनुभवों का सार-संकलन करते हुए मार्क्स ने कम्यून के नायकों द्वारा उठाये गये कदमों की विशेष रूप से प्रशंसा की थी, **"कम्यून समिति के सदस्यों से शुरू करके, नीचे से लेकर ऊपर तक सभी राजकीय पदाधिकारियों को एक मजदूर के बराबर वेतन मिलना चाहिए। वरिष्ठ राजकीय कर्मचारियों द्वारा भोगे जा रहे सभी विशेषाधिकार और उनके कार्यालय सम्बन्धी खर्चे इन कर्मचारियों के विलुप्त हो जाने के साथ ही विलुप्त हो जायेंगे।"** *(फ्रांस में गृहयुद्ध)* । देङ श्याओ पिङ जैसे मार्क्सवाद के गद्दारों की नाराजगी और बुर्जुआ अधिकारों को सीमित करने व उनकी आलोचना से उनके डरने का कारण यह है कि पार्टी के भीतर बैठे बुर्जुआ वर्ग के लिए बुर्जुआ अधिकार संजीवनी के समान हैं और बुर्जुआ अधिकारों को सीमित करना उनके खिलाफ क्रान्ति करना है।

वर्ग विश्लेषण द्वारा हम देख सकते हैं कि सत्ता में बैठे ल्यू शाओ-ची और देङ श्याओ पिङ जैसे पार्टी के पूंजीवादी पथगामियों ने आज के समाज में उत्पादन के सम्बन्धों में जो हैसियत अख्तियार कर रखी है, उसके अनुसार वे मरणशील पूंजीवादी उत्पादन सम्बन्धों की नुमाइन्दगी करते हैं। हो सकता है कि व्यक्तिगत रूप से वे पूंजी के स्वामी न हों, पुराने पूंजीपतियों की तरह कारखाने न चलाते हों और बैंक न संचालित करते हों, लेकिन उनकी राजनीतिक लाइन जो जोर-शोर से पूंजीवादी उत्पादन सम्बन्धों की पैरवी करती है, समग्रता में पूंजीपति वर्ग के आर्थिक हितों और राजनीतिक आकांक्षाओं को अभिव्यक्त करती है। अगर पूंजीपति, **"पूंजी का सिर्फ व्यक्तिकरण है तो उसकी आत्मा पूंजी की आत्मा है।"** (*पूंजी*) इस मामले में पार्टी के भीतर ल्यू शाओ-ची, लिन प्याओ और देङ श्याओ पिङ जैसे बुर्जुआ वर्ग के इन सदस्यों की आत्मा, पुराने बुर्जुआ वर्ग की आत्मा है जो वापसी का सपना देख रही है। हालांकि उसे उखाड़ फेंका जा चुका है, और नये बुर्जुआ वर्ग की आत्मा है जिसे पाला-पोसा जा रहा है और जो सत्ता पर कब्जा करने के निरर्थक प्रयासों पर लगा हुआ है। अगर एक बार उन्होंने पार्टी और राज्य सत्ता पर कब्जा जमा लिया तो वे सर्वहारा के अधिनायकत्व और समाजवादी व्यवस्था को उखाड़ फेकेंगे, सार्वजनिक स्वामित्व की समाजवादी व्यवस्था की प्रकृति को बदल देंगे और खुल्लमखुल्ला पूंजीवादी व्यवस्था की पुनर्स्थापना करेंगे। तब तक, छोटे और बड़े, पूंजीवादी पथगामी आपस में और अपनी पूंजी एवं सत्ता के अनुपात में मेहनतकश जनता द्वारा पैदा की गयी सम्पदा को फिर से बांटते रहेंगे। लिन प्याओ ने "प्रोजेक्ट '571' की रूपरेखा" रची और एक प्रतिक्रियावादी सशस्त्र तख्तापलट की कोशिश की; देङ श्याओ पिङ ने पूंजीवादी पुनर्स्थापना को बढ़ाने और जनमत को बदलने की हरमुमकिन कोशिश की और तियेनआनमेन चौक की प्रतिक्रियावादी राजनीतिक घटना को अंजाम देने में मुख्य भूमिका निभायी। यह बुर्जुआ वर्ग के प्रतिक्रियावादी सारतत्व को बड़े पैमाने पर उजागर करता है।

समाजवादी अवधि में पार्टी के भीतर पूंजीवादी पथगामियों के उभरने के पीछे बुर्जुआ अधिकारों की मौजूदगी और साम्राज्यवाद एवं सामाजिक साम्राज्यवाद की घेरेबन्दी जैसे कारण तो हैं ही, लेकिन पूंजीवादी पथगामी जो सामाजिक हैसियत रखते हैं उसे देखते हुए यह कोई आकस्मिक घटना नहीं है। एंगेल्स ने यह विवरण देने के बाद कि आदिम समाज की बाद की मंजिलों में "जो लोग पहले समाज में सार्वजनिक सेवक हुआ करते थे किस प्रकार धीरे-धीरे बड़ी सुगमता से समाज के मालिक बन बैठे", चिह्नित किया था कि अनेक महत्वपूर्ण

कारणों में से एक यह थासार्वजनिक हितो की सुरक्षा का काम **"यद्यपि यह समूचे समाज की निगरानी के अधीन था, लेकिन यह व्यक्तिगत सदस्यों द्वारा आगे नहीं बढ़ाया जा सकता था।"** (*ड्यूहरिंग मतखण्डन*) क्योंकि ये "व्यक्तिगत सदस्य" सार्वजनिक सम्पत्ति की सुरक्षा की अपनी जिम्मेदारी से लाभ उठाते थे और उपभोग की वस्तुओं और उत्पादों के वितरण की शक्ति का अपने निजी लाभों के लिए इस्तेमाल करते थे और दूसरों की तुलना में अधिक बेशी उत्पाद अपने पास रखते थे, सार्वजनिक स्वामित्व वाली कबीलाई व्यवस्था की जमीन पर निजी सम्पत्ति के अंकुर फूटे, और नतीजतन, और वे लोग जो मूलतः समाज के 'सेवक' थे शासक बन बैठे और हर प्रकार के विशेषाधिकारों का उपभोग करने लगे। हालांकि पूंजीवादी पथगामियों का पैदा होना अपेक्षतया जटिल प्रक्रिया है, लेकिन फिर भी इनमें समानताएं भी हैं। आगे चलकर जब एंगेल्स ने पेरिस कम्यून के अनुभवों का सारसंकलन किया तो उन्होंने फिर से इस बात को दुहराया कि सर्वहारा का अधिनायकत्व कायम हो जाने के बाद यह आवश्यक है कि **"राज्य और राज्य के अंगों को समाज के सेवक से समाज के मालिक होने से" और "अपने विशेष हितों को आगे बढ़ाने से रोका जाये।"** (*फ्रांस में गृहयुद्ध* के 1891 संस्करण की एंगेल्स द्वारा लिखित भूमिका)। अध्यक्ष माओ ने भी हाल ही में चिह्नित किया है; **"जनवादी क्रान्ति के बाद मजदूर, गरीब एवं निम्न-मध्यम किसान थमना नहीं चाहते थे, वे क्रान्ति चाहते हैं। दूसरी तरफ, कुछ पार्टी सदस्य आगे बढ़ना नहीं चाहते; उनमें से कुछ पीछे लौट चुके हैं और क्रान्ति के विरोध में जा खड़े हुए हैं। क्यों? क्योंकि वे ऊंचे पदाधिकारी हो चुके हैं और ऊंचे पदाधिकारियों के हितों की सुरक्षा करना चाहते हैं।"** क्रान्ति के परामर्शदाताओं द्वारा व्यक्त किये गये इन विचारों ने न केवल पार्टी के पूंजीवादी पथगामियों पर चोट पहुंचायी, जहां इसने सर्वाधिक चोट पहुंचायी, बल्कि उस महत्वपूर्ण कारण के बारे में स्पष्ट किया जो समाजवादी काल में पार्टी के भीतर पूंजीवादी पथगामियों के प्रकट होने के लिए जिम्मेदार है।

समाजवाद के दौर में पार्टी के भीतर पूंजीवादी पथगामियों का प्रकट होना कोई आश्चर्यजनक नहीं है। हर वस्तु दो वस्तुओं में बंटी होती है। सर्वहारा वर्ग की राजनीतिक पार्टी इसका अपवाद नहीं है। जब तक वर्ग, वर्ग अन्तरविरोध और वर्ग संघर्ष मौजूद रहेंगे ये संघर्ष पार्टी के भीतर प्रकट होते रहेंगे। **"पूंजीवादी राही अभी भी पूंजीवादी राह पर हैं"** यह एक दीर्घकालिक ऐतिहासिक परिघटना बना रहेगा। मार्क्सवाद संशोधनवाद से इस अर्थ में भिन्न होता है कि संशोधनवाद समाजवादी समाज में वर्गसंघर्ष की मौजूदगी, और खासकर पार्टी के भीतर बुर्जुआ वर्ग की मौजूदगी स्वीकार करने से डरते हैं। खुश्चेव, ब्रेझनेव और इन जैसों ने "समूची जनता की पार्टी" और "समग्र जनगण का राज्य" जैसी भ्रांतियों से खुद को और दूसरों को धोखा दिया। और देङ श्याओ पिङ "पूंजीवादी पथगामी" शब्द से उसी तरह डरता है जैसे आह क्यू दूसरों से अपने सिर पर चकत्ता होने के बारे में सुनकर डरता था। ऐसा इसलिए क्योंकि इस सच्चाई को कबूलना यह कबूलने जैसा है कि वे खुद पार्टी के भीतर बैठे बुर्जुआ हैं और इसका अर्थ होगा उनका विनाश। यह उनके लिए तकलीफदेह भी है और उनकी सोच से परे भी है। सर्वहारा क्रान्तिकारी पार्टी और मार्क्सवादी न केवल यह स्वीकार करने का साहस करते हैं कि पार्टी के भीतर बुर्जुआ मौजूद रह सकते हैं बल्कि महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति शुरू करने और जनसमुदाय को अपने विचारों को खुल्लमखुल्ला प्रकट करने, बड़े चित्राक्षरों वाले पोस्टर लगाने और पूंजीवादी पथगामियों के खिलाफ दृढ़ संघर्ष में जन आलोचना आयोजत करने का साहस रखते हैं। क्योंकि केवल इसी रास्ते से हम सर्वहारा के अधिनायकत्व को सुदृढ़ कर सकते हैं और पूंजीवादी पुनर्स्थापना को रोक सकते हैं और अन्ततः बुर्जुआ वर्ग को उसकी कब्र में दफना सकते हैं और कम्युनिज्म की स्थापना कर सकते हैं। समाजवादी क्रान्ति मानवजाति के अब तक के अस्तित्व में अन्तिम शोषक वर्ग को दफन करने के लक्ष्य पर केन्द्रित एक महान क्रान्ति है। **"ऐसे युग में जीते हुए, हमें एक ऐसे महान संघर्ष को शुरू करने के लिए तैयार रहना चाहिए जिसकी अतीत की क्रान्तियों से अनेक भिन्न अभिलाक्षणिकताएं होंगी।"** ऐसे में यह जरूरी है कि हम वर्ग संघर्ष की अभिलाक्षणिकताओं और वर्ग सम्बन्धों में बदलाव को समझने के लिए वर्ग विश्लेषण की पद्धति का उपयोग करें जिससे इस महत्वपूर्ण समस्या को स्पष्ट किया जा सकेपार्टी के भीतर बैठे बुर्जुआ वर्ग के खिलाफ संघर्ष चलाना, बुर्जुआ वर्ग के ऊपर सर्वतोमुखी अधिनायकत्व लागू करने में डटे रहना और इस प्रकार समाजवादी क्रान्ति को अन्त तक ले जाना।

('पीपुल्स रिपब्लिक ऑफ चाइना' पत्रिका में 1976 में प्रकाशित)

"कुछ लोगों ने मार्क्सवाद की कुछ-एक किताबें पढ़ ली हैं और अपने को काफी विद्वान समझते हैं, लेकिन जो उन्होंने पढ़ा है वह उनके दिमाग में पैठा नहीं है, वहां उसने जड़ नहीं जमाई है, इसलिए वे नहीं जानते कि उसका इस्तेमाल कैसे करें और उनकी वर्ग-अनुभूतियां वैसे ही बनी रहती हैं जैसी पहले थीं। कुछ दूसरे काफी दम्भी भी होते हैं और कुछ किताबी मुहावरे सीखने के बाद, वे अपने को भयंकर विद्वान समझने लगते हैं और एकदम घमण्ड में चूर हो जाते हैं, लेकिन जब भी कोई तूफान आता है, तो वे मजदूरों से और किसानों की बहुसंख्यक आबादी से एकदम भिन्न अवस्थिति पर जा खड़े होते हैं। वे ढुलमुलपन दिखाते हैं जबकि अन्य (यानी मजदूर और किसानों की बहुसंख्यक आबादी-अनु.) अविचल होते हैं, वे गोल-मोल बातें करते हैं जबकि अन्य दो टूक कहते हैं। इसलिए यह मानकर चलना गलत होगा कि जो लोग दूसरों को शिक्षित करते हैं, उन्हें अब खुद शिक्षित होने की जरूरत नहीं रह गई है और उन्हें अब और अध्ययन करने की जरूरत नहीं रह गई है या कि समाजवादी सांचे में फिर से ढालने का मतलब दूसरों कोभूस्वामियों, पूंजीपतियों और निजी उत्पादकों कोफिर से सांचे में ढालना तो होता है लेकिन बुद्धिजीवियों को ढालना नहीं होता। बुद्धिजीवियों को भी फिर से सांचे में ढालने की जरूरत होती है, न कि सिर्फ उन्हीं को होती है जिन्होंने अपनी बुनियादी अवस्थिति नहीं बदली है; प्रत्येक व्यक्ति को अध्ययन करना चाहिये और अपने को फिर से सांचे में ढालना चाहिये।"

माओ त्से-तुङ

(प्रचार-कार्य पर चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के राष्ट्रीय सम्मेलन में भाषण; 12 मार्च, 1957)

बहस के लिए

मार्क्सवाद पर अम्बेडकर के विचार

● रंगनायकम्मा

जाति प्रश्न भारतीय समाज की एक बड़ी समस्या है जिससे कन्नी काटकर क्रान्ति की राह पर आगे नहीं बढ़ा जा सकता, और जाति प्रश्न की बात करते ही हमारे सामने डा. भीमराव अम्बेडकर आ खड़े होते हैं। समाज बदलने की चाहत रखने वाले और किसी न किसी रूप में इसके लिए प्रयासरत लोगों के बीच अम्बेडकर को लेकर तीन तरह की प्रवृत्तियां दिखाई देती हैंएक ओर उन्हें यांत्रिक ढंग से खारिज कर देने की प्रवृत्ति रही है तो दूसरी ओर अनालोचनात्मक ढंग से, श्रद्धाभाव से उन्हें पूजने जैसी प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। इसके साथ ही, मार्क्सवाद और अम्बेडकरवाद की खिचड़ी पकाने की तीसरी प्रवृत्ति भी मौजूद है। आज सबसे बड़ी जरूरत अम्बेडकर के विचारों के साथ खुले दिमाग से 'पॉलिमिक्स' करने की है। इसी नजरिए से, हम शैली तथा कुछ बिन्दुओं पर मतभेद के बावजूद तेलुगू की प्रसिद्ध लेखिका रंगनायकम्मा का यह विचारोत्तेजजक निबन्ध प्रकाशित कर रहे हैं। यह उनकी पुस्तक 'जाति प्रश्न के समाधान के लिएबुद्ध पर्याप्त नहीं, अम्बेडकर भी पर्याप्त नहीं, मार्क्स जरूरी हैं' का एक अध्याय है। हमें आशा है कि इस निबन्ध से अम्बेडकर के विचारों को लेकर एक स्वस्थ बहस छेड़ी जा सकेगी। सम्पादक

1.'बुद्ध या कार्ल मार्क्स?' : अम्बेडकर का निबन्ध

यह निबन्ध खंड तीन* में शामिल है। इसके लिखे जाने का समय स्पष्ट नहीं है। किन्तु कुछ अन्य प्रमाणों से संकेत मिलता है कि उन्होंने (अम्बेडकर) यह लेख 1956 के आस-पास लिखा था। उसी अवधि में उन्होंने "बुद्ध और उनका धम्म" लिखा था।

इस निबंध में अम्बेडकर का कहना यह है कि बुद्ध ने बहुत पहले ही साम्यवाद की बात की थी, मार्क्स से काफी पहले! 'दोनों ने एक ही बात कही। दोनों का एक ही ध्येय (लक्ष्य) है! लक्ष्य प्राप्ति के साधनों को लेकर उनमें मतभेद है। मार्क्स ने जो साधन सुझाये, वे पूरी तरह गलत हैं। बौद्ध मार्ग सर्वोत्तम है'इस निबंध में अम्बेडकर यही बताना चाहते हैं।

> "मतभेद साधनों के बारे में है। लक्ष्य दोनों के लिए समान है।" (खंड 3, पृ. 450)

अतः शोक और सन्ताप से छुटकारे के लिए, संसार की समस्त मानव जाति को मार्क्स के बजाय बुद्ध के मार्ग का अनुसरण करना चाहिए! इस निबन्ध में अम्बेडकर द्वारा की गयी चर्चा का यही सार है। अब, हमें उनकी इस चर्चा की जाँच करनी है।

(इस अध्याय में सभी उद्धरण खंड 3 से लिए गये हैं, जहाँ दूसरी जगह से लिया गया है उसका विशेष उल्लेख कर दिया गया है।)

अन्य सन्दर्भों में अम्बेडकर ने उल्लेख किया है कि बौद्ध सिद्धान्त की व्याख्या के लिए उन्होंने निकायों, त्रिपिटकों तथा जातक कथाओं का सहारा लिया है। परन्तु मार्क्स के सिद्धान्त की व्याख्या के लिए उन्होंने कहीं भी मूल ग्रंथों का हवाला नहीं दिया। अम्बेडकर को मार्क्स के सिद्धान्त के बारे में जानकारी कैसे प्राप्त हुई? किन ग्रंथों द्वारा? मात्र 'सुने-सुनाए' ज्ञान के द्वारा अथवा कुछ अध्ययन द्वारा? उनके ग्रंथों में कहीं भी इन प्रश्नों का उत्तर नहीं मिलता है। यह सूचना तो उस निबंध में भी उपलब्ध नहीं है जिसका शीर्षक ही '*बुद्ध या कार्ल मार्क्स?*' है और जिसमें 'सैद्धान्तिक चर्चा' का काम हाथ में लिया गया है। हम अम्बेडकर की लगभग सभी कृतियों में मार्क्स के सिद्धान्त की आलोचना एवं उस पर टीका-टिप्पणी पाते हैं।

यह निबंधजो कहता है कि बुद्ध का सिद्धान्त मार्क्स के सिद्धान्त से बढ़कर हैबहुत संक्षिप्त है। यह केवल 22 पृष्ठों का है। लेकिन हमें एक-एक वाक्य की जांच करने की आवश्यकता है। क्योंकि, प्रत्येक वाक्य यह बताने का प्रयत्न करता है कि बुद्धवाद किस प्रकार मार्क्सवाद से श्रेष्ठ है और उनके सारे तर्क यही बताने को प्रस्तुत होते हैं। अतः हमें हर तर्क को जांचना है।

बुद्ध 563 ई.पू. में पैदा हुए थे। मार्क्स 1818 ई. में पैदा हुए थे।

* अम्बेडकर ग्रंथावली का खण्ड-तीन

दोनों के बीच 2381 वर्षों का फासला है।

यह निबंध इस वाक्य से आरंभ होता हैः

> "कार्ल मार्क्स और बुद्ध के बीच तुलना करना मजाक समझा जा सकता है।" (पृ.441)

हां, यह मजाक है; लेकिन, यह मजाक 'समय के फासले' की दृष्टि से नहीं बल्कि 'अन्तर्वस्तु में फासले' की दृष्टि से है!

अरस्तू का जीवनकाल दो हजार साल पहले था (384-322 ई. पू.)। वह भी मार्क्स से काफी दूर खड़ा है। परन्तु उसने 'मूल्य' और 'मुद्रा' पर शोध का सूत्रपात किया। अरस्तू ने प्रश्न उठाया था'मुद्रा क्या है'और इसका उत्तर मार्क्स ने दिया'मुद्रा और कुछ नहीं, मानव श्रम है।' इसका अर्थ है कि यह समझने में दो हजार वर्ष व्यतीत हो गये कि मुद्रा क्या है। अरस्तू और मार्क्स चाहे जितने फासले पर खड़े हों, दोनों की तुलना करने में कोई विसंगति नहीं लगती है क्योंकि दोनों ने एक ही प्रश्न का अनुसंधान किया था। परन्तु बुद्ध और मार्क्स के बीच तुलना विचित्र लगती है क्योंकि दोनों में कोई समानता नहीं। हमें देखना है कि अम्बेडकर इस विसंगति से कैसे निपटते हैं।

अपने निबंध के आरंभ में अम्बेडकर थोड़ा हिचकिचाते हैं :

> "मार्क्स इतने अर्वाचीन हैं और बुद्ध इतने प्राचीन! मार्क्सवादी ऐसा कह सकते हैं कि उनके नेता और शिक्षक की तुलना में बुद्ध तो आदिम हैं।... कोई मार्क्सवादी बुद्ध से क्या सीख सकता है? बुद्ध किसी मार्क्सवादी को क्या सिखा सकते हैं?" (पृ.441)

यदि मार्क्सवादी ऐसा सोचें कि उन्हें दूसरों से कुछ नहीं सीखना है, तो यह भयंकर भूल है। वे बुद्ध की बताई सभी अच्छी बातों को सीख सकते हैं। वे तो उनसे भी सीख सकते हैं जो अब भी 'आदिम' हैं। मार्क्सवाद अस्तित्व में ही नहीं आया होता अगर सीखने के प्रति रुझान न रहा होता। अतः यह संदेह करना निरर्थक है कि मार्क्सवादी दूसरों से सीखना पसन्द नहीं करते।

> "यदि मार्क्सवादी अपने पूर्वाग्रहों को छोड़ दें और बुद्ध का अध्ययन करें और यह समझें कि उनका ध्येय क्या था, तो मेरा मानना है कि वे अपना रवैया बदल देंगे।" (पृ.441)

चलिए, ऐसा ही करते हैं! हमने पहले ही बुद्ध का विस्तृत अध्ययन कर लिया है। हमें उनका ध्येय भी समझ में आ गया। हम फिर से इसे देखेंगे और यदि आवश्यक हुआ, तो हम अपना रवैया अवश्य बदलेंगे। जिन्हें सत्य की चाह है, उन्हें हर उस अच्छी बात को स्वीकार करना चाहिए जो कहीं भी मिले।

लेकिन, क्या अम्बेडकर अथवा अम्बेडकरवादी भी मार्क्सवाद का अध्ययन करेंगे और मार्क्स के ध्येय को समझेंगे? यदि आवश्यक हुआ, तो क्या वे अपना रवैया बदलेंगे?

यह तो पहले ही सिद्ध हो चुका है कि वे नहीं बदलेंगे। अम्बेडकर की बौद्ध चर्चा और तुलना यह दर्शाते हैं कि उन्होंने पहले से ही दोनों सिद्धान्तों का अध्ययन कर लिया है। इस अध्ययन के बाद भी उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि बौद्ध-सिद्धान्त मार्क्स के सिद्धान्त से श्रेष्ठ है; क्या ऐसा नहीं हुआ? इसका तात्पर्य यह हुआ कि मार्क्सवाद को जानने के बाद भी उन्होंने अपना रवैया नहीं बदला; या बदल दिया? मार्क्सवादियों को बुद्धवाद की जांच करनी है। अम्बेडकरवादियों को मार्क्सवाद की जांच करनी चाहिए। उन्हें हर बात की जांच करने के बाद ही अपना रवैया निर्धारित करना होगा।

चर्चा तो चर्चा है, बिना इसका विचार किये कि कोई व्यक्ति अथवा व्यक्तियों का समूह इससे कुछ सीखता है अथवा नहीं। इसे तो निरन्तर चलते रहना है; क्या ऐसा नहीं है?

2. अम्बेडकर के अनुसार, मार्क्सवाद निरर्थक है!

अम्बेडकर ने उन शिक्षाओं को संक्षेप में गिनाया है जिन्हें बुद्ध ने 25 सूत्रों में पिरोया था :

> "मैं नीचे उनका संक्षिप्त वर्णन वैसे ही कर रहा हूं जैसा मैंने त्रिपिटिका के अध्ययन से उन्हें समझा।" (पृ.441 और उससे आगे)

हम इन सूत्रों को पहले ही देख चुके हैं। अतः मैं कुछ बातों को छोड़ता हूं और कुछ महत्वपूर्ण बातों को 13 बिन्दुओं में प्रस्तुत करता हूं।

i. 'बुद्ध का मत'

1. मुक्त समाज के लिए धर्म आवश्यक है।

('मुक्त समाज' से अम्बेडकर का आशय एक ऐसे समाज से है जिसमें स्वतंत्रता, समानता और भाईचारा हो।)

2. हर धर्म ग्राह्य नहीं है।

3. समाज दो वर्गों में विभाजित है, मालिक और मजदूर।

(जिस मत में ईश्वर का कोई स्थान न हो, उसे धर्म नहीं कहना चाहिए। अभी तक, ईश्वर की अवधारणा पर आधारित होने के कारण ही इसे धर्म कहने की प्रथा रही है। 'धर्म' शब्द उस जीवनपद्धति पर नहीं लागू होता है जो तर्कबुद्धि पर आधारित है। अतः बुद्ध की शिक्षाओं को धर्म न कहकर बुद्धवाद कहना चाहिए। लेकिन अम्बेडकर इसे धर्म ही कहते हैं। वह दूसरों के भी ऐसा ही कहने पर जोर देते हैं।) (खंड 11, पृ.452)

4. नैतिकता जीवन का आदर्श हो इतना ही पर्याप्त नहीं है; इसे तो जीवन का विधान होना चाहिए क्योंकि ईश्वर का अस्तित्व नहीं है।

(अम्बेडकर केवल उल्लेख भर करते हैं कि 'ईश्वर का अस्तित्व नहीं है; परन्तु बुद्ध की कथा कहते समय, अम्बेडकर ईश्वरीय चमत्कारों का बार-बार सहारा लेते हैं।)

5. धर्म का कार्य संसार को पुनर्निर्मित करना और उसे सुखी बनाना है, न कि उसके उद्गम या अंत की व्याख्या करना।

(यहां पर, हमें 'संसार' शब्द को 'समाज' के रूप में समझना होगा।)

6. हितों का टकराव ही संसार में दुखों का कारण है और अष्टाङ्ग मार्ग का अनुसरण इसके निवारण का एकमात्र उपाय है।

(इसके पहले हमने कहीं भी बुद्ध को 'हितों के टकराव' की बात करते नहीं देखा। हम इस बिन्दु पर आलोचनात्मक टिप्पणियां बाद में करेंगे।)

7. सम्पत्ति का निजी स्वामित्व एक वर्ग को शक्ति देता है और दूसरे को दुख।

(सूत्र-6 में कही गयी बातें और यहां पर कही गयी बातों में

भिन्नता है। छठवां सूत्र कहता है कि मानव जाति का कोई भी वर्ग 'हितों के टकराव' के कारण सुखी नहीं रह सकता; ऐसा ही है न! लेकिन यह सातवां सूत्र हमें बता रहा है कि सम्पत्तिहीन वर्ग दुखी होगा और सम्पतिशाली वर्ग दुखी होने के बजाय शक्तिशाली होगा।)

8. समाज की भलाई के लिए यह आवश्यक है कि (दुखों के) कारण को दूर करते हुए दुखों को दूर भगाया जाय।

(सभी दार्शनिक कहते हैं कि हमें कारण को हटाना है। परन्तु कारण को पहचानने में अनेक मतभेद हैं।)

9. मैत्री या साहचर्य...यहां तक कि अपने शत्रु से भी।

10. चरित्र के बिना ज्ञान खतरनाक है।

(चरित्र का अर्थ है 'उत्तम आचरण'। यानी अष्टाङ्ग मार्ग का अनुसरण।)

11. कुछ भी अचूक नहीं है... हर चीज की खोज-बीन और जांच-पड़ताल की जानी चाहिए।

(मान लाजिए कि किसी चीज की खोजबीन की जानी है और वह जांच-पड़ताल में खरी उतर जाती है। तब तो इसका अचूक होना सिद्ध हो जाता है। फिर उन्होंने क्यों कहा कि 'कुछ भी' अचूक नहीं हैं? क्या कुछ चीजें अचूक नहीं होतीं? क्या अम्बेडकर के अनुसार अष्टाङ्ग मार्ग भी अचूक नहीं है?)

12. कुछ भी अन्तिम नहीं है।

(प्रकृति के संदर्भ में तो यह ठीक है कि कुछ भी अंतिम नहीं है। परन्तु यदि किसी खास परिघटना, पदार्थ, जीवित प्राणी या वस्तु की बात है, तो इनका आदि भी है और अन्त भी। तब तो 'कुछ भी अन्तिम नहीं है' वाला कथन सभी जगह लागू नहीं होता।)

13. युद्ध तब तक अनुचित है जब तक वह सत्य व न्याय के लिए न हो।

इस ढंग से अम्बेडकर ने 25 बिन्दु गिनाये और कहा, "यही बौद्ध मत का सारांश है।" उन्होंने इनकी काफी तारीफ भी की : "कितना पुराना, फिर भी कितना तरो-ताजा! उनकी शिक्षाएँ कितनी व्यापक और कितनी गहराई लिये हुए हैं!" (खंड 3, पृ.442)

अगर हमें इनमें से किसी बिन्दु पर कोई संदेह हो तो मूल 'स्रोत' की जांच करने का कोई उपाय नहीं है। अम्बेडकर ने केवल 'त्रिपिटिका' का जिक्र किया है। यह एक शब्द प्रमाण के लिए पर्याप्त नहीं।

सूत्र-6 देखें! अम्बेडकर यहां कह रहे हैं कि बुद्ध ने 'हितों के टकराव' की बात की थी। लेकिन इस बात को 600 पृष्ठों वाली उस पुस्तक में कोई स्थान प्राप्त नहीं हुआ जिसका शीर्षक ही था *'बुद्ध और उनका धम्म'*।

खैर, हितों का यह टकराव क्या है? इसका उत्तर सूत्र-7 में मिलता है। सम्पत्ति का निजी स्वामित्व एक वर्ग को शक्ति देता है और दूसरे को दुख। अगर बुद्ध ने इस सच्चाई को जान लिया था तो उन्होंने इसका क्या समाधान प्रस्तुत किया? इसके लिए हमें छठवां सूत्र देखना होगा। उन्होंने अष्टाङ्ग मार्ग को समाधान के रूप में पेश किया है।

सूत्र-8 में, उन्होंने दुख दूर भगाने के लिए उसके कारण को दूर करने का सुझाव दिया। मुट्ठीभर लोगों द्वारा सम्पत्ति पर आधिपत्य ही दुखों का कारण है। इस कारण को दूर करने के लिए यह कहना होगा कि केवल एक वर्ग का ही सम्पत्ति पर अधिकार नहीं होना चाहिए। ठीक है लेकिन, क्या अष्टाङ्ग मार्ग ने ऐसा कहा? अधिकारों की तो कोई चर्चा ही नहीं है। ऐसी दशा में अष्टाङ्ग मार्ग हितों के टकराव के समाधान का उपाय कैसे बन सकता है?

यदि समाज में अलग-अलग वर्ग हों और उनके हित अलग-अलग हों तो ये अलग-अलग वर्ग 'अष्टाङ्ग मार्ग' कहा जाने वाला एक ही मार्ग भला क्यों अपनायेंगे?

यदि बुद्ध ने हितों की टकराव की वास्तविकता का अनुभव कर लिया था, तो उन्होंने किसी उपयुक्त समाधान के बजाय अष्टाङ्ग मार्ग को ही क्यों सुझाया? यदि उन्होंने कारण को समझ लिया और फिर भी उपयुक्त समाधान नहीं दिया, तो क्या इसका अर्थ यह नहीं होगा कि वह पाखंडी थे? अम्बेडकर ये सवाल नहीं उठाते।

समस्या है : कुछ के लिए अमीरी, बाकियों के लिए गरीबी! जब कि समाधान है : अष्टाङ्ग मार्ग!

और इसका अर्थ होता है कि झूठ मत बोलो! चोरी मत करो! विषयभोगी मत बनो! नशे का प्रयोग मत करो! ये मत करो! वो मत करो!

अम्बेडकर यह नहीं समझते कि समस्या और समाधान के बीच अनुरूपता या संगति भी है अथवा नहीं। उनकी दिलचस्पी तो केवल अष्टाङ्ग मार्ग के गुणगान में हैः कितना आधुनिक! कितना विस्तृत! कितना गहरा! कितना महान!

इस प्रकार, बुद्धवाद पर प्रशंसा की वर्षा करने के बाद, उन्होंने निम्नलिखित 10 बिन्दुओं में मार्क्स के सिद्धान्त की चर्चा की (खंड 3, पृ. 443)।

ii. मार्क्स का सिद्धान्त

1. दर्शन का उद्देश्य संसार का पुनर्निर्माण करना होता है न कि ब्रह्मांड के उद्भव की व्याख्या करना।

(यह गलत है। समाज के उद्भव की व्याख्या किये बगैर इसे पुनर्निर्मित करना संभव नहीं। आवश्यकता पड़ने पर हम समाज का पुनर्निर्माण तभी कर सकते हैं जब हम उसके उद्भव को भली-भांति समझते हों।)

2. इतिहास की धारा को निर्धारित करने वाली शक्तियां मूलतः आर्थिक होती हैं।

(यह वाक्य तभी सत्य है जब हम 'आर्थिक शक्तियों' की व्याख्या 'उत्पादन सम्बन्धों' के अर्थ में करते हैं। अम्बेडकर ने किस अर्थ में 'आर्थिक शक्तियों' शब्द का प्रयोग किया है, उसकी व्याख्या नहीं मिलती।)

3. समाज दो वर्गों में विभाजित है, मालिक और मजदूर।

(यह सही है। दास-समाज के युग से लेकर आज तक 'मालिक और मजदूर' समाज के मुख्य वर्ग रहे हैं।)

4. दोनों वर्गों के बीच हमेशा वर्गीय टकराव चलता रहता है।

(यह भी सही है।)

5. मजदूरों का शोषण मालिकों द्वारा किया जाता है जो उस बेशी मूल्य को हड़प लेते हैं जो मजदूरों के श्रम से पैदा होता है।

(यह भी सही है। लेकिन अम्बेडकर ने, अगले बिन्दुओं में भी शोषण के उस महत्वपूर्ण पहलू का कोई उल्लेख नहीं किया जिसके बारे में मार्क्सवाद बताता है कि 'किराया-ब्याज-मुनाफा' जैसे आमदनी के रूपों में शोषण मौजूद रहता है! उनके लेखन में कहीं भी यह नहीं

दिखता कि उन्होंने आमदनी के इन रूपों को श्रम के शोषण के रूप में समझा हो।)

6. उत्पादन के साधनों के राष्ट्रीकरण द्वारा अर्थात निजी सम्पत्ति के उन्मूलन द्वारा इस शोषण का अन्त किया जा सकता है।

(यह व्याख्या पर्याप्त नहीं है। शोषण के अन्त का अर्थ है कि 'सभी के द्वारा श्रम का निष्पादन'। यदि हम 'श्रम' शब्द का उल्लेख किये बिना ही 'उत्पादन के साधनों के राष्ट्रीकरण' की बात करते हैं, तो यह मार्क्सवाद की उचित व्याख्या नहीं होगी।)

7. यह शोषण मजदूरों की बदहाली को लगातार बढ़ा रहा है।

(यह सही है। मेहनतकश केवल बदहाल ही नहीं होते जा रहे हैं, बल्कि इस आबादी का एक बड़ा हिस्सा बेरोजगार भी होता जा रहा है।)

8. मजदूरों की बढ़ती हुई इस बदहाली के परिणामस्वरूप मजदूरों के बीच क्रान्तिकारी भावना पैदा हो रही है और वर्ग अन्तरविरोध वर्ग संघर्ष में बदल रहा है।

(मजदूरों की बदहाली से क्रान्तिकारी भावना और वर्ग संघर्ष अपनेआप नहीं जन्म लेते। इसके लिए मेहनतकश वर्ग के पास एक राजनीतिक संगठन, यानी कम्युनिस्ट पार्टी होनी चाहिए जो क्रान्तिकारी भावना और वर्ग संघर्ष को विकसित करने का यत्न करेगी।)

9. चूंकि मजदूरों की संख्या मालिकों की संख्या से बहुत अधिक है, अतः मजदूर राज्य पर कब्जा करने और अपनी सत्ता स्थापित करने मे अवश्य सफल होंगे, जिसे मार्क्स ने सर्वहारा का अधिनायकत्व कहा है।

(यह सतही अर्थो में ही सही है। 'सर्वहारा का अधिनायकत्व' केवल राज्यसत्ता कायम करने के लिए ही आवश्यक नहीं है, बल्कि इसे उन तमाम सम्पत्ति अधिकारों को भी समाप्त करना होगा जो किराया, ब्याज और मुनाफे पर आधारित हैं। मालिकों के वर्ग को भी श्रम करना होगा और सर्वहारा का ही अंग बनना होगा। 'मालिक और सर्वहारा' के बीच के विभेद को समाप्त होना ही चाहिए। इस काम के लिए सर्वहारा का अधिनायकत्व आवश्यक है।)

10. ये कारक अप्रतिरोध्य हैं और इसलिए समाजवाद अपरिहार्य है।

(यह उसी मायने में ठीक है जैसा कि हमने ऊपर चर्चा की।)

इन 10 बिन्दुओं को गिनाने के बाद अम्बेडकर ने कहाः

> "मुझे भरोसा है कि मैंने उन प्रस्थापनाओं का भली-भांति विवरण दे दिया है जो मार्क्सीय समाजवाद का मूल आधार हैं।"

कुछ बिन्दु सही हैं, परन्तु कुछ अधकचरे हैं। कुछ बहुत ही महत्वपूर्ण बातें तो बिल्कुल ही गायब हैं। छूटी हुई बातें निम्नलिखित हैं :

1. किसी बिन्दु में यह नहीं बताया गया है कि **किराया, ब्याज और मुनाफों** के रूप में मालिक की आमदनी; टैक्स; अनुत्पादक खर्चे और ऐसी ही सभी चीजें मिलकर उस अतिरिक्त मूल्य के अवयव होते हैं जो सर्वहारा द्वारा सृजित किया जाता है। इस बिन्दु का उल्लेख नहीं करने का अर्थ है शोषण के साधनों का उल्लेख नहीं करना।

2. किसी भी बिन्दु में इस मांग का उल्लेख नहीं है कि समाज में सभी व्यक्तियों को श्रम करना चाहिए।

3. किसी भी बिन्दु में इस मांग का उल्लेख नहीं है कि शोषणकारी समाजों में स्थित श्रम विभाजन को 'समाजवादी श्रम विभाजन' में रूपान्तरित करना चाहिए।

4. एक और बात का उल्लेख नहीं किया गया जो यह है : मुद्रा-संचलन उस अवस्था में अनावश्यक हो जाता है जब समता के सम्बन्ध स्थापित हो जाते हैं। तात्पर्य यह कि उन सम्बन्धों का स्थापित होना अवश्य संभव है जिसमें केवल *'उपयोग मूल्य'* की गणना होती है और *'मूल्य'* की गणना नहीं होती।

मार्क्सवाद के जिस विवरण में ऐसे महत्वपूर्ण पक्षों को रखा ही न गया हो, वह मार्क्सवाद का समुचित विवरण नहीं हो सकता।

अम्बेडकर ने उन किताबों का कहीं भी उल्लेख नहीं किया है जिनके आधार पर उन्होंने बताया है कि 'यही मार्क्सवाद है'। बुद्धवाद की व्याख्या के मामले में भी उन्होंने कोई प्रमाण प्रस्तुत नहीं किया। तात्पर्य यह कि समूची चर्चा का कोई आधार ही नहीं है।

मार्क्सवाद का दस-सूत्रीय विवरण देने के बाद वह कहते हैं :

> "बुद्ध और कार्ल मार्क्स की तुलना करने से पहले यह जान लेना आवश्यक है कि मार्क्सीय मत की इस मूल सामग्री का कितना हिस्सा अब तक बचा रह गया है; कितना हिस्सा इतिहास द्वारा असत्य सिद्ध किया जा चुका है और कितना हिस्सा उसके विरोधियों द्वारा ध्वस्त किया जा चुका है।" (पृ.444)

इसका अर्थ है कि अम्बेडकर पाठकों को यह समझने के लिए खबरदार कर रहे हैं कि मार्क्सवाद पहले ही निरर्थक सिद्ध हो चुका है और अपने विरोधियों द्वारा ध्वस्त किया जा चुका है।

इस चेतावनी के बाद, वह हर्षातिरेक की मनःस्थिति में पहुंच गये और घोषित कर दिया कि मार्क्सवाद की आलोचना की जा चुकी है और विरोधियों की आलोचनाओं के फलस्वरूप यह खंड-खंड टूट गया तथा यह दावा पूर्णतः झूठा साबित हो चुका है कि 'समाजवाद अपरिहार्य है'।

अम्बेडकर का कहना है कि मार्क्सवाद की आलोचना की जा चुकी है।

यह बहुत स्वाभाविक है कि शोषण की व्यवस्था से जुड़े लोग उस सिद्धान्त के प्रति शत्रुता विकसित कर लें और उसके विरुद्ध आलोचनाओं का ढेर लगा दें जो शोषण के सत्य को उजागर करता है। यदि ऐसा न हो तो आश्चर्य होगा। क्या मार्क्सवाद को मात्र इसलिए झूठा सिद्धान्त मान लेना चाहिए कि इसकी आलोचना की गयी? क्या बुद्धवाद की कोई आलोचना नहीं है? अम्बेडकर ने तो स्वयं उल्लेख किया है कि बुद्धवाद की अनेक प्रकार की आलोचनाएं की गयीं। उन्होंने बार-बार कहा कि ब्राह्मणवाद ने बुद्धवाद को परास्त कर दिया (पृ.275)। जब हिन्दू धर्म के आगे बुद्धवाद का प्रभाव घट गया, तो अम्बेडकर ने इसका यह निष्कर्ष क्यों नहीं निकाला कि बुद्धवाद ने इसलिए घुटने टेक दिये क्योंकि यह ठीक सिद्धान्त नहीं था? इसके बावजूद वह उपदेश क्यों दे रहे हैं कि अकेला बुद्धवाद ही सर्वोत्तम सिद्धान्त है और हमें इसका अनुसरण करना चाहिए? इसका मतलब यह है कि अम्बेडकर की निगाह में बुद्धवाद के लिए एक मानदण्ड है और मार्क्सवाद के लिए दूसरा! हम किसी भी बिन्दु पर अम्बेडकर में 'ईमानदारी' नहीं पाते हैं।

यह निष्कर्ष निकालने के लिए कि मार्क्सवाद निरर्थक सिद्ध हो चुका है, उन्होंने दो कारणों का उल्लेख किया :

1. मार्क्स ने कहा था कि समाजवाद अपरिहार्य है और इसके लिए मानवीय प्रयासों की आवश्यकता नहीं। लेकिन 1917 में रूस में, समाजवाद मानवीय प्रयास के बिना हासिल नहीं हुआ। वहां पर क्रान्ति और खून-खराबा हुआ। अतः यह स्थापना झूठी सिद्ध हो गयी कि 'समाजवाद अपरिहार्य है'।

2. यह स्थापना ठीक नहीं है कि श्रमिक और भी गरीब होते जा रहे हैं और कोई भी इस स्थापना से सहमत नहीं है।

इन दो कारणों के आधार पर यह सिद्ध कर दिया गया कि मार्क्सवाद ठीक सिद्धान्त नहीं है। यह है अम्बेडकर का तर्क।

हम आलोचना के दो बिन्दुओं के जवाब की चर्चा करेंगे।

1. जब हम कहते हैं कि 'समाजवाद अपरिहार्य है' तो क्या इसका मतलब यह होता है कि बिना मानवीय प्रयास के एक दिन अपनेआप ऐसा हो जायेगा? क्या मार्क्स ने ऐसा कहा था? फिर उनके इन सुझावों का क्या अर्थ हुआ कि 'कम्युनिस्ट पार्टी का गठन करो! वर्ग संघर्ष छेड़ो!'? क्या ये मानवीय प्रयास नहीं हैं? क्या मार्क्स ने यह कहा था कि समाजवाद बिना किसी मानवीय प्रयास के ही आ जाता है?

यदि ये प्रकृति में होने वाले परिवर्तन हैं तभी वे बिना मानवीय प्रयास के ही घटित हो सकते हैं। सूर्य और चन्द्रमा अपनेआप चक्कर लगाते हैं। पूर्ण चंद्र रातें और अंधेरी रातें अपनेआप आती-जाती हैं। गरमी और बरसात अपनेआप आते-जाते हैं, इसके लिए लोगों को 'गरमी संघ' और 'बरसात संघ' गठित करने की कोई आवश्यकता नहीं! उन्हें पूर्ण चंद्र या अंधेरी रातों के लिए संघर्ष छेड़ने की कोई आवश्यकता नहीं! ऐसे परिवर्तनों के लिए कोई भी मानवीय प्रयास आवश्यक नहीं। किन्तु 'समाज' में परिवर्तनों के साथ ऐसा नहीं होता। यहां प्रत्येक परिवर्तन मानवीय प्रयास के कारण ही संभव होगा। परिवर्तन तो तभी होते हैं जब हम प्रयास करते हैं। पुरानी स्थिति तब तक यथावत रहती है जब तक कि कोई इसे बदलने का प्रयास न करे।

जब लोग किसी समस्या का सामना करते हैं तो कुछ कठिनाई अनुभव करते हैं। अतः वह समस्या का विरोध करते हैं। यदि उनका विरोध पर्याप्त रूप से स्पष्ट व प्रबल है तो वे लोग निश्चय ही समस्या को हल करने में सक्षम होंगे। जब भी कोई समस्या होती है तो उसे हल करने के लिए संघर्ष अपरिहार्य होता है। हम इस संघर्ष के संदर्भ में ही 'अपरिहार्यता' की बात करते हैं। संघर्ष अपनेआप में मानवीय प्रयास है।

जब हम कहते हैं कि 'समाजवाद अपरिहार्य है' तो इसका अर्थ यह होता है कि समाजवाद शोषण के विरुद्ध सर्वहारा के संघर्षों के जरिए अपरिहार्य बनता है। इसका कतई यह अर्थ नहीं कि समाजवाद बिना मानवीय प्रयास के ही अपरिहार्य है।

जब हम कहते हैं, 'समाजवाद अपरिहार्य है' तो केवल उन्हीं लोगों को ऐसा लगता है कि समाजवाद बिना मानवीय प्रयास के ही संभव है जो 'प्राकृतिक परिघटनाओं' और 'सामाजिक परिघटनाओं' के बीच विभेद को नहीं समझते।

यदि अम्बेडकर ने कम से कम इतना समझ लिया होता कि मार्क्सवाद वर्ग संघर्ष छेड़ने का आह्वान करता है और वर्ग संघर्ष का अर्थ मानवीय प्रयास होता है तो उनकी यह आलोचना इतनी बुरी न होती।

2. अम्बेडकर का कहना है कि 'कोई यह नहीं स्वीकार करता कि सर्वहारा उत्तरोत्तर कंगाल बना दिये गये हैं।' 'कोई नहीं' नहीं। बल्कि वे मालिक इस बात को नहीं स्वीकारते जो मेहनतकशों के श्रम को हड़प जाने को आतुर रहते हैं, वे अर्थशास्त्री और दार्शनिक नहीं स्वीकारते जो उन मालिकों के पालतू होते हैं और वे पैरोकार नहीं स्वीकारते जो उनके दलाल होते हैं। यह सच है कि ये सभी इस सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करते हैं। यह स्वाभाविक है। वे इस मूल तथ्य को ही नकारते हैं कि शोषण हो रहा है। वे कहते हैं कि 'शोषण है कहाँ? सभी कुछ तो ठीक-ठाक है।' लुटेरों की स्वीकृति मिले, इसकी आवश्यकता ही नहीं। यह तो मेहनतकश वर्ग है जिसे इस सिद्धान्त को स्वीकार करना होगा और इसे समझना होगा! यही वह वह वर्ग है जिसे मार्क्सवाद सीखना होगा। जब लोग 'श्रमिकों' या 'मजदूरों' की बात करते हैं तो आम तौर पर सिर्फ उन्हीं को ध्यान में रखते हैं जो मशीनों के आगे खड़े होकर काम करते हैं। यह एक बड़ी भूल है। कार्य की प्रकृति चाहे जो भी हो और औजार चाहे जहां चलाये जा रहे हों, परन्तु वे सभी व्यक्ति जो किसी मालिक के लिए काम करते हैं और बदले में आमदनी के रूप में 'मजदूरी' प्राप्त करते हैं, श्रमिक (मजदूर) होते हैं। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि वह श्रम शारीरिक श्रम है अथवा मानसिक श्रम; उत्पादक श्रम है अथवा अनुत्पादक श्रम। फर्क तो तब भी नहीं पड़ता कि अपना श्रम जलाने वाला व्यक्ति पुरुष है अथवा स्त्री, जवान है अथवा वृद्ध, चाहे वे बड़े पैमाने पर मशीनों पर काम करते हों या औजारों से। यहां पर ये विभेद प्रासंगिक नहीं। वे सभी व्यक्ति जो मजदूरी (वेतन) पर ही आश्रित होते हैं, श्रमिक होते हैं।

इस प्रस्थापना को समझने के लिए कि श्रमिक और भी बदहाल होते जा रहे हैं, सबसे पहले यह समझना होगा कि श्रमिकों का श्रम दो भागों में विखंडित हो जाता है। एक भाग तो 'मजदूरी' के रूप में श्रमिकों के हिस्से आता है और दूसरा भाग मालिक के हिस्से में जाता है जो कि बाद में अनेक हिस्सों में वितरित हो जाता है। श्रमिकों के श्रम का दो भागों में विखंडन हमेशा एक ही अनुपात में नहीं होता है। अनुपातों का फेर-बदल उत्पादक शक्तियों में वृद्धि और श्रम शक्ति के एवं मुद्रा के मूल्य में परिवर्तनों और ऐसे ही अन्य कारकों पर निर्भर करता है। इसका अर्थ यह है कि बदलती हुयी परिस्थितियों के अनुसार ही दोनों हिस्सों में घट-बढ़ होती रहती है।

लेकिन इसे तब तक समझना सम्भव नहीं है जब तक कि श्रम-मूल्य, मुद्रा, उत्पादकता और श्रम-शक्ति के मूल्य जैसी श्रेणियों को न समझ लिया जाये। जब उत्पादकता बढ़ती है तो मजदूरी बढ़ती है, चाहे इसे (मजदूरी को) हम मुद्रा के रूप में देखें अथवा वस्तुओं के रूप में। अतः ऊपरी तौर पर तो यही प्रतीत होता है कि श्रम का पूरा दाम मिल जाता है। लेकिन उन दोनों भागों का अनुपात बाहर से नहीं दिखाई देता है जिसमें कि उस श्रमिक का श्रम विखंडित होता है।

असल में उत्पादकता बढ़ने पर होता क्या हैः जिस हिस्से को श्रमिक अपने श्रम के एवज में प्राप्त करता है वह तो घट जाता है और मालिक को मिलने वाला वह हिस्सा पहले की तुलना में बढ़ जाता है जो वास्तव में 'अतिरिक्त श्रम' का नतीजा होता है। जब-जब उत्पादकता बढ़ती है तो हर बार इस तरह का परिवर्तन होता है!

अर्थात मजदूर के श्रम का वह भाग पहले की तुलना में घट जाता है जो उसके प्रयोग में आता है जबकि श्रम का वह भाग पहले की तुलना में बढ़ जाता है जो उससे छिन जाता है। यह बाहरी तौर पर दिखाई नहीं देता।

आइये, इन परिवर्तनों को तीन उदाहरणों द्वारा देखा जाय। तीनों उदाहरणों में हमें मजदूर के श्रम काल को बराबर मानना होगा। मान लिया जाय कि श्रम काल 8 घंटे का है। अब देखा जाय कि उत्पादकता बढ़ने के साथ श्रम के भाग कैसे परिवर्तित होते हैं।

	मजदूर को मिलने वाला भाग	मजदूर से छिन जाने वाला भाग
1.	4 घण्टे	4 घण्टे
2.	3 घण्टे	5 घण्टे
3.	2 घण्टे	6 घण्टे

यद्यपि वह भाग घटता जाता है जो मजदूर अपने श्रम से प्राप्त करता है; तथापि यह घटा हुआ श्रम भी पहले के मुकाबले अधिक संख्या में वस्तुएं प्रदान करता है। उत्पादकता बढ़ने के कारण, घटा हुआ श्रम पहले के मुकाबले अधिक वस्तुएं प्रदान करने में सक्षम होता है।

चूंकि उत्पादकता बढ़ने के साथ मजदूर पहले की तुलना में अधिक वस्तुओं का उपयोग करने लगता है, अतः ऐसा प्रतीत होने लगता है मानो मजदूर की दशा काफी सुधर गयी हो। परन्तु वास्तव में होता क्या है कि अपने श्रम का जो भाग वह प्राप्त करता है, वह तो घटता जाता है; और जो भाग मालिक प्राप्त करता है, वह बढ़ता जाता है। इसका अर्थ यह है कि, जैसे-जैसे मेहनतकश जन बदहाल होते चले गये वैसे-वैसे मालिकों का वर्ग धनवान होता गया। यदि हम चीजों को सतही तौर पर देखेंगे तो ये सारी बातें स्पष्ट नहीं हो पायेंगी।

किसी भी प्रकार के श्रमिकों को देखिये, हम पाते हैं कि आज के श्रमिक कल के श्रमिकों की अपेक्षा अधिक वस्तुओं का प्रयोग करते होते हैं। इन वस्तुओं के अन्तर्गत साइकिल, स्कूटर, रेडियो, पंखे, वाशिंग मशीन, फ्रिज, टीवी और इसी प्रकार के अन्य आधुनिक सामान आते हैं। इस परिदृश्य को देखकर पूंजीवादी बुद्धिजीवी पूछते हैं, 'आज के समय में मजदूरों में गरीबी कहां है?' इस सोच को 'औसत दर्जे का' ज्ञान या 'सतही' ज्ञान कहना ज्यादा उपयुक्त होगा।

ये बुद्धिजीवी बस उन चंद आधुनिक वस्तुओं को देखते हैं जिनका मजदूर प्रयोग करते हैं, परन्तु उन विभिन्न आधुनिक वस्तुओं और उपकरणों को नजरअंदाज कर जाते हैं जो मालिक के घरों की शोभा बढ़ाते हैं और उनके महलों की संख्या, उनकी जमीनों, बैंक खातों, शेयरों तथा उनकी लगातार बढ़ती सम्पदा को भी नजरअन्दाज कर देते हैं।

मजदूरों द्वारा प्रयोग की जा रही वस्तुओं की विविधता में वृद्धि जरूर होती है, वे बढ़ी हुई वस्तुएं उन्हीं के श्रम का फल होती हैं। यह ऐसा कुछ नहीं होता है जिसे उन्होंने दूसरों का शोषण करके प्राप्त किया हो। अतः वास्तव में उन वस्तुओं को नहीं देखा जाना चाहिए जिनका मजदूर प्रयोग करते हैं बल्कि उन वस्तुओं को देखा जाना चाहिए जो उनसे छिन जाती हैं।

मजदूरों द्वारा प्रयोग की जा रही वस्तुओं की विविधता में वृद्धि यह कतई संकेत नहीं करती है कि उनका दासत्व और उनकी गरीबी समाप्त हो चुकी है। यह वास्तविकता कि मजदूर अपने मालिकों के लिए काम करते हैं, उनकी दासता सूचित करती है; और यह वास्तविकता कि वे अतिरिक्त श्रम उसे दे रहे हैं, उनकी गरीबी को सूचित करती है। यदि दासता न होती तो मजदूरों को अपने मालिकों की तिजोरी भरने के लिए अतिरिक्त श्रम गंवाना न पड़ता।

अम्बेडकर का कहना है कि कोई भी इस प्रस्थापना को स्वीकार नहीं करता कि मजदूर और भी बदहाल होते जा रहे हैं। इसका तात्पर्य यह है कि एक ऐसा नेता जो उन लोगों का प्रतिनिधि होने का दावा करता है जो सबसे निचले दर्जे की मजदूरी करते हैं, यह दलील पेश कर रहा है कि ऐसे मजदूर उत्तरोत्तर बदहाल नहीं होते जा रहे हैं! एक तेलगु लोकोक्ति का प्रयोग युक्तिसंगत होगा कि जब बाड़ ही खेत को चरने लगे तो खेत की रखवाली कौन करेगा, जब तक कि खेत स्वयं अपनी रक्षा न करे!

अम्बेडकर प्रत्येक बिन्दु पर मार्क्सवाद के प्रति घृणा प्रदर्शित करते हैं। यह अत्यन्त ही विस्मयकारी बात है।

यह टिप्पणी करने के बाद कि, 'कोई भी स्वीकार नहीं करेगा कि सर्वहारा उत्तरोत्तर कंगाल बना दिये गये हैं', अम्बेडकर निष्कर्ष निकालते हैं कि, 'यही बात उनकी (मार्क्स की) अन्य प्रस्थापनाओं के लिए भी सही है'(पृ.444)। दूसरे शब्दों में, मार्क्स के सिद्धान्त के अन्य पहलुओं को भी कोई स्वीकार नहीं करता है। कहने का अर्थ यह है कि श्रम के शोषण की मार्क्स की अवधारणा को कोई स्वीकार नहीं करता!

दूसरे लोगों का चाहे जो भी दृष्टिकोण हो, अम्बेडकर उसे स्वीकार नहीं करते! उनके अनुसार, मार्क्स के सभी तर्क अनुचित हैं। यहां तक कि 'श्रम के शोषण' की अवधारणा भी अनुचित है। इसका अस्तित्व ही नहीं है। मेहनतकशों का शोषण होता ही नहीं है!

ठीक है, फिर 'आर्थिक शोषण' और 'आर्थिक शोषण से सुरक्षा के उपायों' जैसे शब्दों का प्रयोग क्यों?

कौन जाने? क्या अम्बेडकर को इसके बारे में कुछ पता है?

3. बुद्ध ने वह सब कुछ पहले ही कह दिया था जो मार्क्स ने कहा!

पहले तो अम्बेडकर ने मार्क्स के सिद्धान्त की एक प्रस्थापना का खंडन किया और बाद में दूसरी सभी प्रस्थापनाओं को यह कहते हुए अस्वीकृत कर दिया कि, 'यही बात उनकी अन्य प्रस्थापनाओं के लिए भी सही है।' लेकिन अगले ही पैरा में उन्होंने अपना तर्क बदल दिया और कहा :

> "कार्ल मार्क्स के विचारों में जो कुछ भी बचा रह गया है वह आग की बची हुई चिंगारियां हैं, थोड़ी, परन्तु फिर भी अति महत्वपूर्ण। मेरी दृष्टि में इस बची हुई आग में चार बातें हैं" (पृ.444) :

उन्होंने चारों बातों को निम्नानुसार सूचीबद्ध किया (पृ.444) :

1. दर्शन का कार्य संसार को पुनर्निर्मित करना है न कि संसार के उद्भव की व्याख्या करने में समय नष्ट करना।

2. वर्गों के बीच हितों का टकराव विद्यमान रहता है।

3. सम्पत्ति का निजी स्वामित्व एक वर्ग को शक्ति प्रदान करता

है और दूसरे को शोषण के माध्यम से दुख।

4. समाज के भले के लिए यह आवश्यक है कि निजी सम्पत्ति के उन्मूलन द्वारा दुखों को समाप्त किया जाय।

अम्बेडकर के लिए ये चार बातें "थोड़ी परन्तु फिर भी अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं"। लेकिन वह महसूस करते हैं कि बुद्ध ने ये सारी बातें बहुत समय पहले ही, मार्क्स से काफी पहले कह दी थीं। इस प्रकार अपने तर्क को सिद्ध करने के लिए उन्होंने बौद्ध कथाओं से उदाहरण देना प्रारम्भ कर दिया।

1. संसार के उद्भव की व्याख्या में समय नष्ट होने की बात :

वास्तव में, मार्क्स ने ऐसा नहीं कहा था। यह सिद्ध करने के लिए कि बुद्ध ने इस बात को पहले ही कह दिया था, अम्बेडकर ने एक घटना का उल्लेख किया। पोत्थपाद ने बुद्ध से निम्नलिखित प्रश्न पूछे :

1. क्या संसार शाश्वत नहीं है? 2. क्या संसार नश्वर है? 3. क्या संसार अनन्त है? 4. क्या आत्मा वही है जो शरीर है? 5. क्या आत्मा अलग वस्तु है और शरीर अलग? 6. क्या मृत्यु के बाद वह पुनः जन्म लेता है जिसने सत्य पा लिया? 7. क्या मृत्यु के बाद उसका न तो पुनः जन्म होता है और न ही पुनः अजन्मा होता है? (पृ.445)

बुद्ध ने इन मुद्दों पर कोई भी मत व्यक्त करने से मना कर दिया क्योंकि वे धर्म, ज्ञान या मानव आचरण से सम्बन्धित नहीं थे। अम्बेडकर के लिए बुद्ध द्वारा कोई भी मत व्यक्त न करना मार्क्स से बहुत पहले ही वही बात कह देना हो जाता है। अम्बेडकर सोचते हैं कि मार्क्स और बुद्ध ने एक ही बात कही, क्योंकि बुद्ध ने इन प्रश्नों को अनावश्यक समझ खारिज कर दिया था।

परन्तु बुद्ध ने जो बात की, वह तो 'प्रकृति' के बारे में थी। "विश्व शाश्वत है या नहीं? मृत्यु के बाद क्या होगा?" ऐसे प्रश्न तो प्रकृति से सम्बन्धित हैं।

मार्क्स ने तो 'समाज' से सम्बन्धित मुद्दों की बात की थी। मार्क्स कहते हैं, "दार्शनिकों ने संसार की तरह-तरह से व्याख्या की है। मगर सवाल इसे बदलने का है।" मार्क्स कहते हैं कि चूंकि वर्तमान समाज शोषण पर आधारित है, अतः हमें इसे बदलना होगा।

अम्बेडकर ने प्रकृति पर बुद्ध की टिप्पणियों और मार्क्स की समाज पर टिप्पणियों की तुलना करके निष्कर्ष निकाल लिया कि दोनों एक ही मत हैं और दावा करते हैं कि मार्क्स ने जो बात कही उसे बुद्ध ने बहुत समय पहले ही कह दिया था। इस ढंग से उनके द्वारा की गयी तुलना और उनकी चर्चा पूर्णतः अर्थहीन एवं निरर्थक है।

2. विभिन्न वर्गों के बीच टकराव :

यह दावा करते हुए कि बुद्ध ने पहले ही यह बात इंगित कर दी थी, अम्बेडकर एक घटना का उल्लेख करते हैं। संदर्भ है बुद्ध और कोसल नरेश के बीच वार्तालाप का।

बुद्ध ने कहाः

> "हमेशा ही राजाओं के बीच, अभिजातों के बीच, ब्राह्मणों के बीच, गृहस्थों के बीच, मां और बेटे के बीच, बेटे और बाप के बीच, भाई-भाई के बीच, बहन और भाई के बीच, साथी और साथी के बीच झगड़े होते रहते हैं।..."(पृ. 445)

अम्बेडकर की दृष्टि में बुद्ध की इन टिप्पणियों का आशय वर्ग संघर्ष की बात करना है।

यहां तक कि जो लोग वर्गों के बारे में बिलकुल ही अनजान हैं, वो भी ऐसी दयनीय अवस्था में नहीं होंगे!

जब हम वर्गों की बात करते हैं तो हम 'मालिक-मजदूर' सम्बन्ध के अस्तित्व की बात करते हैं। हम श्रम के शोषण के अस्तित्व की भी बात करते हैं।

दास प्रथा वाले समाज में एक वर्ग दासों का होता है जबकि दूसरा वर्ग मालिकों का।

सामन्ती समाज में एक वर्ग असामी किसानों का होता है जबकि दूसरा वर्ग जमींदारों का।

पूंजीवादी समाज में एक वर्ग मजदूरों का होता है जबकि दूसरा वर्ग पूंजीपतियों और भूस्वामियों को मिलाकर होता है।

श्रम के शोषण पर ही वर्ग टिके रहते हैं। वर्ग संघर्ष और विभिन्न हित वर्गों पर टिके रहते हैं।

इन्हीं सिद्धान्तों के आधार पर हम किसी भी प्रकार के समाज में वर्गों को रेखांकित करते हैं।

हम एक ही वर्ग के भीतर अलग-अलग समूह पाते हैं और उन समूहों के बीच अन्तरविरोध पाते हैं।

मालिक वर्ग के भीतर किराया, ब्याज और मुनाफा के रूप में, मेहनतकश वर्ग के शोषण के फलस्वरूप प्राप्त अतिरिक्त मूल्य के वितरण के समय, बड़ा हिस्सा लेने के लिए अन्तरविरोध होते हैं।

मजदूर वर्ग के भीतर शारीरिक श्रम और मानसिक श्रम में विभेद के कारण अलग-अलग समूह होते हैं। मानसिक श्रमिकों की अपेक्षा शारीरिक श्रमिक अधिक गरीबी का जीवन व्यतीत करते हैं। शोषण पर आधारित समाज इस अन्तर को और भी बढ़ा देते हैं। इसके अतिरिक्त, मजदूरों के भीतर किसी भी समूह के लिए नौकरी की कोई गारंटी नहीं होती। इस तथ्य के कारण मजदूरों में प्रतिस्पर्धा आरम्भ हो जाती है और अन्तरविरोध उत्पन्न होते हैं। लेकिन ये अन्तरविरोध दूसरों के अतिरिक्त मूल्य के शोषण के लिए नहीं होते। ये अन्तरविरोध मात्र आजीविका के उद्देश्य के लिए होते हैं।

हम वर्गों, वर्गों के भीतर विद्यमान तबकों और सामाजिक सम्बन्धों के पूरे समुच्चय को समझने में तभी सक्षम हो सकेंगे जब हम श्रम के शोषण के बारे में स्पष्ट रूप से जानते हों।

अम्बेडकर के इस दावे का वर्गों से कुछ लेना-देना नहीं है कि, 'बुद्ध ने वर्गों के बारे में पहले ही बता दिया था।' किन्तु यदि हम वर्गों को यथोचित रूप में समझ लें तो हम उन अन्तरविरोधों की प्रकृति को समझ सकते हैं जिनका बुद्ध ने उल्लेख किया था।

राजाओं में अन्तरविरोध : अलग-अलग राजाओं का अर्थ अलग-अलग वर्ग नहीं होता। सभी का एक ही वर्ग होता हैः शोषकों का वर्ग। जिन राजाओं में एक दूसरे से अन्तरविरोध होते हैं; वे उसी वर्ग के भीतर के विभिन्न समूह होते हैं। हर राजा की आमदनी का स्रोत टैक्स होता है। इन टैक्सों का अधिकांश भाग शाही विलासिताओं के लिए प्रयुक्त होता है। राजा की अपनी भू-सम्पत्ति होती है और व्यवसाय भी। वह किराया (लगान) और व्यापारिक मुनाफा प्राप्त करता है। ये राजा की

व्यक्तिगत आमदनी के स्रोत होते हैं। विभिन्न राजा दूसरों के राज को छीनने के लिए आपस में लड़ते रहते हैं। यदि कोई राजा दूसरों का राज छीनने में समर्थ होता है तो विजयी राजा को नये राज्य से सभी टैक्स और लगान प्राप्त होते हैं। यह शोषकों के वर्ग में समूहों के बीच का अन्तरविरोध है।

अभिजातों में अन्तरविरोध : अभिजात 'मेहनतकश' नहीं होते हैं। जो लोग कोई भी श्रम नहीं करते, वे अभिजात और बड़े लोग हो जाते हैं। इसलिए ये अभिजात स्पष्टतः आलसी व्यक्ति होते हैं। ऐसे व्यक्तियों के बीच का अन्तरविरोध केवल सम्पत्ति के लिए प्रकट होता है। ये अन्तरविरोध भी शोषकों के वर्ग में समूहों के बीच के अन्तरविरोध होते हैं।

ब्राह्मणों में अन्तरविरोध : यह अन्तरविरोध बिना कोई श्रम किये यज्ञ और कर्मकाण्डों के संचालन से प्राप्त धनराशि के बंटवारे को लेकर होता है। उनका अलग वर्ग नहीं होता। वे शोषकों के वर्ग में ही विभिन्न समूह होते हैं।

गृहस्थों में अन्तरविरोध : यदि ये गृहस्थ सम्पत्तिवान लोग होते हैं तो उनके खेत-खलिहानों और गोदामों के पट्टे को लेकर अन्तरविरोध उभर सकते हैं। यदि ये गृहस्थ गरीब लोग होते हैं तो उन वस्तुओं को लेकर अन्तरविरोध उभर सकते हैं जिनका वे आपस में उधारी पर आदान-प्रदान करते हैं। यह अन्तरविरोध या तो 'धनाढ्यता' के कारण उत्पन्न होता है या 'गरीबी' के कारण।

बेटा और बाप में, मां और बेटे में और भाइयों-बहनों में अन्तरविरोधः समाज में पुरुषों का प्रभुत्व होता है। पतियों और उनके परिवार के सदस्यों का पत्नियों पर प्रभुत्व होता है; बेटों का माताओं पर प्रभुत्व होता है और भाइयों का बहनों पर प्रभुत्व होता है। सास और बहू के बीच का अन्तरविरोध भी इसी श्रेणी में आता है, जिसका अम्बेडकर ने उल्लेख नहीं किया। ये वे अन्तरविरोध हैं जो पारिवारिक सम्बन्धों में समता के अभाव से पैदा होते हैं। चूँकि 'समता' श्रमसम्बन्धों की नींव में ही अनुपस्थित रहती है, अतः इसका प्रभाव पुरुष प्रधान प्रभुत्व के रूप में पारिवारिक सम्बन्धों पर पड़ेगा ही।

मित्रों के अन्तरविरोध : इसका तात्पर्य यह है कि दोनों ही मित्र अथवा उनमें से कोई एक कुछ स्वार्थपूर्ण हितों के लिए मित्रवत व्यवहार करते हैं। जब दोनों मित्र निःस्वार्थ होते हैं तो अन्तरविरोध नहीं पनपता है।

इन प्रकार के अन्तरविरोधों को दर्शाते हुए अम्बेडकर बताते हैं कि, 'बुद्ध ने वर्गों के अस्तित्व को पहचाना।' वह कहते हैं :

> "जहां तक वर्ग अन्तरविरोध के प्रति बुद्ध का अपना रुख है, तो उनके अष्टाङ्ग मार्ग का सिद्धान्त इस बात की पुष्टि करता है कि वर्ग अन्तरविरोध विद्यमान रहता है और यह कि वर्ग अन्तरविरोध ही दुखों का कारण है"(पृ.445)।

यदि बुद्ध ने वर्गों के अस्तित्व को पहचाना था तो उन्होंने समाधान क्या प्रस्तुत किया? केवल अष्टाङ्ग मार्ग; संघर्ष नहीं। उन्होंने यह दलील नहीं पेश की कि कोई वर्ग ही नहीं होना चाहिए। यदि इसके प्रति जागरूक होते हुए भी बुद्ध ने कोई उचित समाधान नहीं प्रस्तुत किया, तो क्या इसका मतलब यह नहीं होता है कि उन्होंने शोषकों के वर्ग का पक्ष लिया?

यह कल्पना करना कठिन है कि अम्बेडकर का यह प्रयासयह सिद्ध करने का प्रयास कि बुद्ध ने सब कुछ मार्क्स से बहुत पहले कह दिया थाउन्हें किस स्थिति तक ले जायेगा! इसी के साथ, दूसरा बिन्दु समाप्त होता है।

3. "सम्पत्ति का निजी स्वामित्व एक वर्ग को शक्ति प्रदान करता है और दूसरे को शोषण द्वारा दुख" :

यह सिद्ध करने के लिए कि बुद्ध ने पहले ही इस बात के बारे में बोल दिया था, अम्बेडकर ने एक प्रसंग का उल्लेख किया।

बुद्ध पोत्थपाद से कहते हैं :

> "पोत्थपाद! मैंने विस्तार से बता दिया कि शोक और दुख विद्यमान रहते हैं। मैंने बता दिया कि दुखों का मूल क्या है (तृष्णा)। मैंने बताया कि दुखों की निवृत्ति क्या है ('तृष्णा का अभाव')। मैंने बताया कि वह कौन सी विधि है (अष्टाङ्ग मार्ग) जिससे कोई दुखों के विराम पर पहुंच सके।" (पृ. 445)

अम्बेडकर बुद्ध के इन शब्दों को उद्धृत करते हुए कहते हैं,

> "भाषा अलग है परन्तु भाव वही है। यदि कोई दुख के स्थान पर शोषण पढ़े, तो बुद्ध मार्क्स से दूर नहीं हैं।"(पृ.446)

अम्बेडकर की दलील है कि केवल भाषा अलग है परन्तु दोनों ने जो कुछ कहा, उसका सार वही है! उनके अनुसार, बुद्ध जिस दुख की बात करते हैं और मार्क्स जिस श्रम के शोषण की बात करते हैं, वे दोनों एक ही हैं।

परन्तु मार्क्स के अनुसार, मेहनतकश वर्ग के दुखों का कारण मालिकों का वर्ग है।

बुद्ध के अनुसार सभी लोग दुखी होंगे। अपितु उनके दुखों का कारण उनकी खुद की तृष्णा है। दास का दुख उसकी तृष्णा के कारण है! अछूत का दुख उसकी तृष्णा के कारण है!

यही उनकी इस टिप्पणी का अर्थ है कि, "भाषा अलग है परन्तु भाव वही है"!

क्या उस बुद्ध ने, जिन्होंने कि धन-दौलत के बारे में इतना कुछ कहा, किसी भी व्यक्ति से अपनी धन-दौलत कम करने को कहा?

'यदि तुम अपना धन कम कर लोगे तो तुम्हारे टकराव कम होंगे और दुख समाप्त हो जायेंगे। अपनी कुछ भूमि का त्याग कर दो! अपने दासों को मुक्त कर दो!'क्या बुद्ध ने धनवान व्यक्तियों को इस तरह की सलाह दी?

'मैं उन्हीं व्यक्तियों को अपने शिष्यों में शामिल करूंगा जिनके पास नगण्य सम्पत्ति होगी और जिन्हें सम्पत्ति के लिए कोई तृष्णा नहीं होगी'क्या बुद्ध ने ऐसा कहा?

इस प्रकार का एक भी प्रसंग नहीं है। बुद्ध ने मात्र इस प्रकार का प्रवचन दिया कि, 'तृष्णा मत रखो'; परन्तु उन्होंने धनवान लोगों के लिए थोड़ा भी झंझट पैदा नहीं किया। इसी के साथ तीसरा बिन्दु समाप्त हुआ।

4. "समाज के भले के लिए यह आवश्यक है कि निजी सम्पत्ति के उन्मूलन द्वारा दुखों को समाप्त किया जाये" :

अम्बेडकर के अनुसार, बुद्ध ने मार्क्स से बहुत पहले कह दिया

था कि निजी सम्पत्ति का उन्मूलन होना चाहिए। अम्बेडकर ने कहा :

> "चौथे बिन्दु पर किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। भिक्षु संघ के नियम इस विषय में सर्वश्रेष्ठ साक्ष्य है" (पृ.446)।

एक नियम है कि भिक्षुओं को 8 वस्तुओं से अधिक नहीं रखना चाहिए। अम्बेडकर के अनुसार, इस नियम का अर्थ है कि बुद्ध ने कोई भी निजी सम्पत्ति न रखने की सलाह दी थी। ठीक है, पर 8 वस्तुओं को प्रयोग करने वाला नियम किसके लिए लागू होता है? यह तो महज भिक्षुओं के मामले में ही लागू होता है! यह नियम, जिसे भिक्षुओं को पालन करना है, सभी लोगों पर कैसे लागू होता है?

क्या बुद्ध ने राजाओं, व्यापारियों और धनवानों को उन 8 वस्तुओं से अधिक सम्पत्ति न रखने का सुझाव दिया था? इन सबके लिए उन्होंने क्या कहा था? उन्होंने राजाओं को अपने साम्राज्यों पर शासन करने दिया; व्यापारियों को अपना कारोबार करने दिया और उनसे अपने कार्यों को और उत्साह से करने को कहा। जब अनाथपिंडक ने पूछा कि क्या उसे अपनी सम्पत्ति त्याग देनी चाहिए तो बुद्ध दुखी हो गये और उसे ऐसा करने के लिए हतोत्साहित किया। बुद्ध ने कहा कि व्यक्ति को कमल पर जल की बूंद जैसा होना चाहिये और सम्पत्ति रखना बुरा नहीं है। फिर बुद्ध ने सम्पत्ति न रखने के लिए कहा है? किस धनवान व्यक्ति से ऐसा कहा? यदि हम 8 वस्तुएं रखने वाले नियम को लगभग 5 या 6 वर्ष के बच्चे को बताएं तो वे कहेंगे कि, "यह सन्यासियों के लिए है।" यदि 7 या 8 वर्षीय बच्चे हों तो वे यह भी कह सकते हैं कि, "बुद्ध ने अनाथपिंडक को कारोबार न त्यागने के लिए कहा था, नहीं कहा था क्या?" ये बातें इतनी सहज हैं कि बच्चे भी उन पर सोच-विचार कर सकते हैं। लेकिन अम्बेडकर को इन बातों से कोई सरोकार नहीं। उन्होंने दलील दी कि बुद्ध ने तो लोगों को सम्पत्ति न रखने की सलाह दी थी और भिक्षुओं के नियम बुद्ध के दृष्टिकोण का सर्वोत्तम प्रमाण है। फिर अनाथपिंडक को दी गयी बुद्ध की सलाह के बारे में क्या विचार हैं? यह किस बात का प्रमाण है? यदि 8 वस्तुओं का नियम सभी लोगों पर लागू होने लगे, तो उन भिक्षा-पात्रों में भीख कौन डालेगा जिन्हें सभी लोग लेकर चलेंगे?

बौद्ध संघ के नियमों का वर्णन करते समय अम्बेडकर ने बताया कि 'उपासक' (साधारण अनुयायी) सम्पत्ति रख सकते हैं। उन्होंने यह भी कहा कि बुद्धवाद ने शूद्रों और स्त्रियों को सम्पत्ति अर्जित करने के लिए महान अवसर उपलब्ध कराया। लेकिन यहां पर तो वह कहते हैं कि बुद्धवाद निजी सम्पत्ति की मनाही करता है।

इन विचित्र और धक्काजोरी वाले तर्कों को कोई कैसे समझ सकता है? और तो और, यदि हम भिक्षुओं पर ही विचार करें तो ज्ञात होता है कि वे व्यक्तिगत रूप से सम्पत्ति नहीं रख सकते हैं लेकिन वे किसी भी सीमा तक सामूहिक सम्पत्ति रख सकते हैं। वे सामूहिक प्रासाद, पुष्प-वाटिकाएं, विहार-वाटिकाएं तथा सभी कुछ सामूहिक रूप से रख सकते हैं। भिक्षु धनिकों के घरों में मछली व मांस के प्रीतिभोजों का आनन्द तब तक ले सकते हैं जब तक वह स्वतः "बस! बस!" न कह दें। वे दिन में एक घंटे के लिए भी बिना कोई काम किये फुरसत से रह सकते हैं। क्या यह सब सम्पत्ति भोग नहीं है? केवल 8 वस्तुएं रखने का नियम एक दिखावा है। वास्तविक सार तो है भोग-विलास!

यह दावा करते हुए कि बुद्ध ने सम्पत्ति के बारे में भारी-भरकम नियम बनाये, अम्बेडकर ने टिप्पणी की :

> "ये नियम उन नियमों की अपेक्षा अधिक कठोर हैं जो रूस के साम्यवाद में पाये जाते हैं।" (पृ.447)

यहां पर रूस में साम्यवाद के नियम के बारे में चर्चा करना अप्रासंगिक होगा। यदि हम बुद्ध और मार्क्स की तुलना करना चाहते हैं तो हमें उन्हीं दोनों व्यक्तियों के शब्दों का परीक्षण करना होगा न कि उनके नाम पर कहे गये दूसरों के शब्दों का।

मार्क्स कहते हैं, 'शोषण पर आधारित निजी सम्पत्ति नहीं होनी चाहिए।' क्या बुद्ध ने भी यही बात कही? ऐसा नहीं है। बुद्ध ने ऐसा नहीं कहा था। सम्पत्ति के बारे में उनका नियम केवल भिक्षुओं पर लागू होता है, दूसरों पर नहीं। ऐसी स्थिति में अम्बेडकर यह कैसे कह सकते हैं कि बुद्ध के नियम साम्यवाद के नियमों से अधिक कठोर हैं? वह किस आधार पर यह तर्क दे सकते हैं कि सम्पत्ति के सम्बन्ध में बुद्ध और मार्क्स के दृष्टिकोण एक समान हैं? यह समझ पाना बड़ा कठिन है कि अम्बेडकर की सामान्य बुद्धि (कॉमनसेंस) को क्या हो गया।

अभी तक हमने जो जांचा-परखा वह इस प्रकार है :

अम्बेडकर ने पहले यह निष्कर्ष निकाला कि मार्क्स के सिद्धान्त में चार बातें ऐसी हैं जो महत्वपूर्ण हैं। बाद में उन्होंने दंतकथाओं के सहारे यह बताने का प्रयास किया कि बुद्ध ने खुद उन चार बातों को मार्क्स से बहुत पहले कह दिया था। परन्तु उनके प्रयास सफल नहीं हुए।

अम्बेडकर ने इस तथ्य को नहीं समझा कि उनके प्रयास विफल हो गये। वह उत्साहपूर्वक यह सोचते हुए आगे बढ़ते गये कि उन्होंने सफलतापूर्वक अपने इस दावे को सिद्ध कर दिया कि बुद्ध ने भी मार्क्स की ही तरह साम्यवाद की बात की थी।

बुद्ध के संदर्भ में 'समाजवाद' और 'साम्यवाद' सरीखे शब्द का प्रयोग करते समय अम्बेडकर ने निष्कर्ष निकाल लिया कि बुद्ध ने भी वैसा ही साम्यवाद प्रस्तावित किया था जैसा मार्क्स ने किया। चुनांचे, अम्बेडकर ने यह सिद्ध करने के प्रयास प्रारंभ कर दिये कि 'दोनों ने साम्यवाद की बात की थी; लेकिन इसे प्राप्त करने के लिए मार्क्स की अपेक्षा बुद्ध का मार्ग श्रेष्ठ है।'

4. किसका मार्ग बेहतर है?

अब समूची चर्चा साम्यवाद हासिल करने के साधनों अथवा मार्ग के सम्बन्ध में होती है! पहले उन्होंने बुद्ध का मार्ग दिखाया और बाद में मार्क्स का।

इससे पहले कि हम यह जांचना आरम्भ करें कि कौन सा मार्ग बेहतर है, हम एक बात का उल्लेख आवश्यक समझते हैं। मार्क्स-सिद्धान्त के सूत्रपात के 60 वर्षों बाद ही मार्क्स के मार्ग पर चलते हुए दो देशों में साम्यवाद की दिशा में बढ़ना प्रारम्भ हो गया। इन आन्दोलनों को अस्थायी तौर पर हार का सामना करना पड़ा है। उन्होंने अनेक गलतियां भी की होंगी। किन्तु यह अलग मुद्दा है। मुख्य बात यह है कि विश्व के कई हिस्सों में समाज को बदलने की दिशा में मार्क्स के मार्ग पर कम से कम प्राथमिक कदम उठने आरम्भ हो गये। परन्तु 2500 वर्षों

बाद भी ऐसे साम्यवाद की दिशा में किसी एक भी देश में ऐसे प्रयास नहीं हुए जो बुद्ध के अष्टाङ्ग मार्ग का अनुगामी रहा हो। क्या अम्बेडकर इस तथ्य से अवगत नहीं? वह अवश्य अवगत हैं। लेकिन यह उनका अति-आत्मविश्वास है कि हमें इस तथ्य पर विचार करने की आवश्यकता न होगी और यह भी कि अष्टाङ्ग मार्ग द्वारा ही देर-सबेर साम्यवाद सम्भव होगा। उन्हें इसका कोई अनुमान नहीं है'जब 2500 वर्षों बाद भी यह नहीं हुआ तो फिर कब होगा?' वह इस प्रश्न का उत्तर देने की कोई आवश्यकता ही नहीं समझते क्योंकि उनके पास प्रश्न ही नहीं है।

अब 'साधन' या 'मार्ग' से सम्बन्धित उनकी चर्चा प्रारम्भ होती है, जो निम्नलिखित है।

(1) 'साम्यवाद' हासिल करने के बुद्ध के साधन

> "बुद्ध ने साम्यवाद लाने के लिए जिन साधनों का प्रतिपादन किया, वे बिलकुल निश्चित थे। इन साधनों को तीन भागों में बांटा जा सकता है।" (पृ.447)

हमने कई बार देखा है कि वे तीनों भाग वास्तव में क्या हैं : शुद्धता, नीतिपरायणता और सद्गुण! अथवा पंचशील, अष्टाङ्ग मार्ग और परामित!

अम्बेडकर ने इन तीनों भागों को उद्धृत करते हुए इस बात पर बल दिया कि यही वह मार्ग है जिससे साम्यवाद हासिल किया जा सकता है। इसका अर्थ यह है कि अम्बेडकर भी साम्यवाद चाहते हैं! यह तो आश्चर्यजनक है!

यद्यपि हम बुद्धवाद के बारे में जानते हैं, फिर भी साम्यवाद के हित में हमें पुनः इसे धैर्यपूर्वक देखना होगा। यदि केवल चर्चा का उद्देश्य हो, तब भी हमें सावधानीपूर्वक इसका पुनर्परीक्षण करना होगा।

अम्बेडकर ने कहा कि हमें बौद्ध मार्ग को तीन भागों में बांटना होगा,

> "भाग एक पंचशील का पालन करने के बारे में है।"(पृ.447)

अम्बेडकर ने इस मार्ग का निम्न प्रकार खुलासा किया :

बुद्धवाद एक 'नवीन दिव्य संदेश' है। इसका आधार यह है कि 'संसार दुख और शोक से भरा है'। इस तथ्य का अभिज्ञान ही वह मार्ग है जो मुक्ति प्रदान करता है।

इतना कहने के पश्चात, अम्बेडकर ने यह टिप्पणी की कि दुखों के दो कारण होते हैं।

> **1. "मनुष्य के दुख और शोक का एक अंश उसके खुद के बुरे कर्मों का परिणाम होता है"(पृ.447)**

इस प्रवचन के अनुसार, किसी दास के दुखों का कारण उसके बुरे कर्म हैं। किसी अछूत के दुखों का कारण भी उसके बुरे कर्म हैं। ठीक है, फिर अभी तक अछूतों ने बेचारे हिन्दुओं पर क्यों आरोप लगाया? कम से कम, हिन्दुओं से क्षमा याचना तो करिये! उनसे बोलिए, 'यह हमारे बुरे कर्म ही हैं जो दुख एवं कष्ट में परिणत हुए। आप लोगों ने हमारा कुछ भी बुरा नहीं किया।'

इसके अलावा, अछूतों को यह घोषित करना चाहिये कि आरक्षण आवश्यक नहीं है। क्योंकिः जब उनके केवल अपने बुरे कर्म ही कष्टों में परिणत हुए हैं तो समाधान उनके 'कर्मों' को बदलने में निहित है। अतः वे आरक्षणों की मांग कैसे कर सकते हैं? जब सारा दोष बुरे कर्मों का है, तो समाधान ढूंढ़ने का क्या उपयोग?

स्वयं अम्बेडकर सर्वप्रथम बुरे कर्मों को बदलने के लिए निम्नलिखित पंचशीलों का सुझाव देते हैं। परिणामस्वरूप उनके कष्ट दूर हो जायेंगे। अतः अछूतों को ऐसा ही करना चाहिए। यहां पर अम्बेडकर ने पंचशीलों के बारे कुछ नया बताया। यह बेहतर होगा कि इसे पढ़ने के बाद इसका पालन किया जाय और पुरानी अवधारणा के साथ मिलाया जाय।

1. "किसी भी जीव का विनाश करने अथवा उसके विनाश के लिए परिस्थितियां उत्पन्न करने से दूर रहना।"

(ठीक है, ये अच्छे शब्द हैं! परन्तु बुद्ध और उनके शिष्यगण मांस क्यों खाते थे और इस प्रकार वे जीवित पशुओं के विनाश में भागीदार क्यों होते थे? ओह, वे ऐसा करते हैं लेकिन हम ऐसा नहीं कर सकते! अब बात स्पष्ट हो गयी!)

2. "चोरी करने से परहेज करना अर्थात छल द्वारा या हिंसा द्वारा दूसरे की सम्पत्ति हड़पने या रखने से दूर रहना।"

('दूसरे की सम्पत्ति'! अर्थात सम्पत्ति उनकी होती है, जिनका इस पर आधिपत्य होता है! जो सम्पत्ति राजा के आधिपत्य में होती है, वह राजा की होती है! जो मन्त्री के आधिपत्य में होती है, वह मन्त्री की होती है! बिलकुल दुरुस्त। परन्तु अम्बेडकर तो दलील यह दे रहे हैं कि बुद्ध ने यह उपदेश दिया था कि कोई भी निजी सम्पत्ति नहीं होनी चाहिये। यह बड़ी विचित्र पहेली है कि, यदि व्यक्तिगत आधिपत्य वाली सम्पत्ति केवल अलग-अलग लोगों की ही सम्पत्ति है, तब वही सम्पत्ति उनके पास निजी सम्पत्ति के रूप में क्यों नहीं रह सकती?)

3. "झूठ बोलने से सदा दूर रहना।"

(बुद्ध ने क्यों झूठ बोला? उदाहरण के लिए, 'प्रकृति' नामक लड़की की कहानी में!)

4. "कामनाओं से दूर रहना।"

(क्या सभी प्रकार की कामनाओं से दूर रहना, या ज्ञान, उपहारों, प्रीतिभोजों की कामना को छोड़कर? वो भी, क्या बुद्ध के अलावा बाकी सभी लोगों को इससे दूर रहना चाहिए?)

5. "मादक पेयों के सेवन से दूर रहना।"

(कितनी दूरी रखनी चाहिए? उन धनिकों की सम्मानित मंडली में कितना दूर बैठना चाहिए जो नशा लेते हैं?)

अपने बुरे कर्मों को बदलने के लिए और दुखों से मुक्त होने के लिए, सर्वप्रथम इन पांच सिद्धान्तों का पालन करना चाहिए।

शोक और दुख के कुल मिलाकर दो कारण हैं। पहला कारण तो देख लिया। अब दूसरा कारण देखते हैं :

> **2. "संसार में, शोक और दुख का एक अंश बुद्ध के अनुसार मनुष्य की मनुष्य के प्रति असमानता का परिणाम है।"**

मालिक अपने दास को बराबर जैसा बर्ताव करने के बजाय उसे छोटा व्यक्ति समझता है। अतः दास दुखी हो जाता है और मालिक प्रसन्न होता है। दास भी अपने मालिक को बराबर का समझने के बजाय श्रेष्ठ व्यक्ति समझता है। इस कारण से भी दास दुखी होता है और मालिक प्रसन्न होता है।

कोई व्यक्ति दूसरे के साथ बराबर जैसा बर्ताव क्यों नहीं करता है? जो लोग अपनी जीवन दशाओं में बराबर नहीं हैं, वे एक दूसरे के साथ बराबर जैसा बर्ताव नहीं कर सकते। वह व्यक्ति आनन्द प्राप्त करता है जो उच्च स्थिति में रहता है, जबकि वह साधारण व्यक्ति दुख प्राप्त करता है जो निम्न स्थिति में रहता है।

परन्तु बुद्ध के अनुसार, किन्हीं भी दो व्यक्तियों को एक दूसरे के साथ तब भी बराबर जैसा बर्ताव करना चाहिए जबकि वे(जीवन दशाओं में) बराबर न हों।

अम्बेडकर को इस 'असमानता' के प्रश्न के समाधान के लिए बुद्ध के विचारों में एक सुन्दर मार्ग मिल गया।

> "मनुष्य की मनुष्य के प्रति असमानता को दूर करने के लिए बुद्ध ने श्रेष्ठ अष्टांग मार्ग सुझाया" (पृ. 447)।

हमने शोक और दुख के दो कारण देखे। ऐसे दुखों का समाधान 'पंचशील' है जो प्रथम कारण, यानी, बुरे कर्मों से उत्पन्न होते हैं!

ऐसे दुखों का समाधान 'अष्टाङ्ग मार्ग' है जो द्वितीय कारण, अर्थात असमानता से जनित होते हैं!

क्या ऐसा नहीं हो सकता है कि अष्टाङ्ग मार्ग उन दुखों को दूर कर दे जो 'प्रथम कारण' से उत्पन्न होते हैं और 'पंचशील' उन दुखों को दूर कर दे जो 'द्वितीय कारण' से उत्पन्न होते हैं? कदापि नहीं! क्या अजवायन के स्थान पर राई के दानों से बदहजमी दूर हो सकती है? प्रत्येक बीमारी का उपयुक्त औषधि से ही उपचार किया जाना चाहिए। यह भी उसी जैसा है!

चलिए सब ठीक है! क्या आपको अष्टाङ्ग मार्ग के सभी अंग याद हैं? यदि नहीं, तो संक्षिप्त रूप से उनका पुनःस्मरण कर लेते हैं : 1. उचित दृष्टि; 2. उचित संकल्प; 3. उचित वचन; 4. उचित आचरण; 5. उचित आजीविका; 6. अन्य सभी सातों में उचित अध्यवसाय।(केवल पांच सिद्धान्तों का उल्लेख करते हुए और सात सिद्धान्तों को छठवें सिद्धान्त के रूप में पालन करना प्रस्तावित करते हुए!); 7. उचित मनोयोग; 8. उचित चिन्तन। अम्बेडकर ने इन सभी आठ अंगों की विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत की। जिन लोगों को अपने दूसरे प्रकार के दुखों को अष्टाङ्ग मार्ग के साधनों द्वारा मिटाना हो, वे कृपया खंड 3 का पृष्ठ 447 देखें।

> "इस श्रेष्ठ अष्टांग मार्ग का उद्देश्य पृथ्वी पर नीतिपरायणता का साम्राज्य स्थापित करना है और इसके द्वारा विश्व से शोक और दुख को दूर करना है" (पृ.448)।

अष्टाङ्ग मार्ग का पालन करने में अनेकों कठिनाइयों एवं अवरोधों का सामना करना होगा।

> "निब्बाण (निर्वाण) का सिद्धान्त उन कठिनाइयों को बताता है जो अष्टांग मार्ग की सिद्धि के रास्ते में आती हैं"(पृ.448)।

दस कठिनाइयां होती हैं। वे इस प्रकार हैं : आत्म भ्रान्ति, संदेह और दुविधा, कर्मकाण्डों और अनुष्ठानों की सामर्थ्य पर निर्भरता, दैहिक भावावेश, दूसरे व्यक्तियों के प्रति वैमनस्यता, भौतिक शरीर के जीवन की इच्छा, गर्व, धर्माभिमान एवं अज्ञानता। यदि हम अन्य सभी कठिनाइयों को जीत भी लें, तो भी आखिरी एक अविजित ही रह जायेगी। फिर भी, हम इन 10 आसवों (बन्धनों या बाधाओं या कठिनाइयों) पर निब्बाण के साधनों द्वारा विजय पा सकते हैं।

बुद्ध के नवीन दिव्य संदेश का अंतिम अंश परामितों का सिद्धान्त है। यह सिद्धान्त दस सद्गुणों के व्यवहार को स्वभाव में ढालने के लिए कहता है (पृ.449)। वे इस प्रकार हैं : 1. पण्ण 2. शील 3. नेक्खण 4. दान 5. वीर्य 6. षान्ति 7. सुच्च 8. अदित्थान 9. मेत्त और 10. उपेक्खा।

अम्बेडकर कहते हैं कि बौद्ध मार्ग इन सब सिद्धान्तों के द्वारा सभी मनुष्यों को स्वेच्छया नीतिपरायण बनाता है।

> "यह स्पष्ट है कि बुद्ध द्वारा अपनाये गये साधन किसी मनुष्य को, उसकी नैतिक प्रवृत्ति को बदलते हुए, इस प्रकार परिवर्तित करने के लिए थे जिससे वह स्वेच्छया इस मार्ग का अनुसरण करने लगे" (पृ.450)।

न सिर्फ दास बल्कि उनके मालिक भी परिवर्तित होते हैं! न सिर्फ अछूत बल्कि सभी हिन्दू भी परिवर्तित होते हैं! इस रीति से साम्यवाद का उदय होता है!

> "ऐसा है वह दिव्य संदेश जो बुद्ध ने बोधिज्ञान के फलस्वरूप संसार में शोक व दुखों का अन्त करने के लिए प्रतिपादित किया" (पृ.450)।

अभी तक, अम्बेडकर ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि साम्यवाद प्राप्त करने के लिए केवल यही (बौद्ध मार्ग) सर्वोत्तम मार्ग है।

इस प्रयत्न के बारे में और क्या कहा जाय? यदि हम कुछ कहना भी चाहें, तो एक ही बात सामने आती हैः अम्बेडकर शायद उस साम्यवाद को भली-भांति जानते हैं जिसे अष्टाङ्ग मार्ग लाता है, परन्तु उस साम्यवाद का वह क ख ग भी नहीं जानते जिसे वर्ग संघर्ष लाता है। उनके प्रयत्न के बारे में, अब इसके अतिरिक्त कुछ कहने की कोई गुंजाइश नहीं है।

एक ऐसे शिक्षित व्यक्ति को देखना कैसा विचित्र अनुभव है जिसनेयद्यपि कि इसी आधुनिक संसार में जन्म लिया जहां श्रम के शोषण का रहस्य उजागर हो चुका है और अनेक डिग्रियां भी प्राप्त कींअपने मस्तिष्क में ज्ञान की एक किरण भी प्रविष्ट नहीं होने दी और 2500 वर्ष पुरानी आत्मा के साथ जीवित रहा।

अम्बेडकर ने अब तक बुद्ध के मार्ग को दिखाया है जो साम्यवाद तक जाता है। अब वह साम्यवाद का मार्क्स का मार्ग दिखायेंगे और यह व्याख्या करेंगे कि कौन सा मार्ग बेहतर है।

2. साम्यवाद हासिल करने के मार्क्स के साधन

अम्बेडकर ने इस सवाल पर अपनी चर्चा इस तरीके से आरंभ की :

> "कम्युनिस्टों द्वारा अपनाये गये साधन भी उसी तरह के स्पष्ट, संक्षिप्त और स्फूर्त हैं। वे हैं : 1. हिंसा और 2. सर्वहारा का अधिनायकत्व। कम्युनिस्टों का कहना है कि कम्युनिज़्म (साम्यवाद) स्थापित करने के दो ही साधन हैं। पहला हिंसा है। वर्तमान व्यवस्था

को तोड़ने के लिए, इससे कम कुछ भी पर्याप्त नहीं होगा। दूसरा, सर्वहारा का अधिनायकत्ववाद है। नई व्यवस्था को बनाये रखने के लिए, इससे कम कुछ भी पर्याप्त नहीं होगा। अब यह स्पष्ट हो गया है कि बुद्ध और कार्ल मार्क्स में क्या समानताएं हैं और क्या भिन्नताएं हैं। भिन्नताएं साधनों के बारे में हैं। लक्ष्य दोनों में समान है"(पृ.450)।

हालांकि अम्बेडकर यह कहते हैं कि बुद्ध और मार्क्स दोनों में लक्ष्य समान है, किन्तु यह एक अर्थहीन टिप्पणी है। दोनों में लक्ष्य समान नहीं है। जब उनके लक्ष्य ही समान नहीं हैं, तो इस चर्चा की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती कि उनके साधन एक ही हैं अथवा नहीं। चूंकि, अम्बेडकर भी मार्क्सवाद की वही मिथ्या-धारणाएं ग्रहण करते हैं जो बहुत से लोग करते हैं अतः हमें उनका परीक्षण करना होगा।

मार्क्सवाद एक ऐसा सिद्धान्त है जो शोषकों के वर्ग का विरोधी है। अतः वह वर्ग इस सिद्धान्त को समझने का प्रयत्न नहीं करता है। हालाँकि यह एक ऐसा सिद्धान्त है जो मेहनतकश वर्ग के अनुकूल है, परन्तु अभी भी यह उस अवस्था में है जहां कि यह मेहनतकश वर्ग के जन-जन तक व्याप्त नहीं हुआ है। यही कारण है कि आम मेहनतकश जन अपने को उस स्थिति में पाते हैं जिससे वे मार्क्सवाद के विरोधियों की आलोचना का करारा जवाब नहीं दे पाते। और तो और, श्रमिक वर्ग के भीतर ही बहुत से लोग विरोधियों की तरह मिथ्या-धारणाओं से ग्रस्त होकर अंधेरे में तीर चलाते हैं। इस कारण से, हमें 'हिंसा' और 'अधिनायकत्व' के उन सवालों को अवश्य जांचना चाहिए जिन्हें अम्बेडकर ने उठाया है। मार्क्सवाद पर बहस करने के लिए मार्क्स और एंगेल्स की रचनाओं का आश्रय लेना होगा और उन बातों पर भरोसा नहीं करना होगा जो रूस, चीन, भारत या कुछ अन्य देश में कम्युनिस्ट कहते हैं अथवा करते हैं।

हमें किसी कम्युनिस्ट व्यक्ति को, कम्युनिस्ट पार्टी को अथवा किसी कम्युनिस्ट देश को मार्क्स के सिद्धान्त के साथ पूरी तरह एक करके नहीं देखना चाहिए। उन व्यक्तियों और संगठनों से अनेक गलतियां हो सकती हैं जो मार्क्सवाद का अनुयायी होने का दावा करते हैं। वे ढेर सारी सीमाओं में बंध कर कार्य कर रहे हो सकते हैं। किन्हीं भी गलतियों और दोषों के लिए वे स्वयं अकेले उत्तरदायी होते हैं न कि सिद्धान्त। इसलिए, हमें मूल लेखकों के इतर किन्हीं भी व्यक्तियों और स्रोतों का उद्धरण नहीं लेना चाहिए।

बुद्धवाद के संदर्भ में, अम्बेडकर कहीं और यह दलील पेश करते हैं कि बुद्ध ने हीनयान और महायान शाखाओं की स्थापना नहीं की थी और हालाँकि इन पंथों को बुद्धवादी माना जाता है परन्तु वह (अम्बेडकर) केवल बुद्ध के मौलिक सिद्धान्तों को ही मान्य करेंगे। उसी प्रकार से, किसी सिद्धान्त का मूल्यांकन करते समय, केवल उन लोगों की मूल रचनाओं को विचारना होगा जिन्होंने उस सिद्धान्त को स्थापित किया। मार्क्सवाद के विषय में भी हमें वही पद्धति अपनानी चाहिए।

अब मार्क्सवाद के उन मुद्दों की जांच की जाय जिन पर अम्बेडकर को आपत्ति है।

हिंसा पर : अम्बेडकर कहते हैं कि मार्क्सवाद साधन के रूप में हिंसा की वकालत करता है। वह किस आधार पर यह बात कहते हैं? क्या उन्होंने मार्क्स की रचनाओं से कुछ भी उद्धृत किया है? उन्होंने कोई एक वाक्य भी उद्धृत नहीं किया है। हालांकि दूसरों की रचनाओं से मार्क्स का उद्धरण देना स्वीकार्य नहीं है, परन्तु इन्होंने तो वह भी नहीं किया है।

यदि अम्बेडकर ने मार्क्स की रचनाओं से कुछ भी साक्ष्य प्रस्तुत किया होता तो हम उस पर बहस कर सकते थे। परन्तु हम इस मुद्दे पर किस आधार बहस करें, जबकि वह बिना किसी प्रमाण को दर्शाते हुए दलील पेश करते हैं कि मार्क्सवाद साम्यवाद की स्थापना के लिए साधन के रूप में हिंसा की वकालत करता है? हमें स्वयं मार्क्स की रचनाओं में इस बात का प्रमाण ढूंढना होगा। मार्क्स और एंगेल्स की कृति "कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र" में कुछ ऐसे वाक्य हैं जहां हम *'बलात तख्तापलट'* और *'हिंसक तख्तापलट'* जैसे शब्द पाते हैं।

> "सर्वहारा के विकास के सबसे सामान्य चरणों का वर्णन करते हुए हमने विद्यमान समाज के भीतर न्यूनाधिक प्रच्छन्न रूप से चलने वाले गृह युद्ध का उसी बिंदु तक चित्रण किया है, जहां वह युद्ध खुली क्रांति में परिणत हो जाता है और जहां बुर्जुआ वर्ग का बलात तख्तापलट सर्वहारा के प्रभुत्व की बुनियाद डालता है।" (पृ. 44, हिन्दी संस्करण, 1999)।

> "कम्युनिस्ट अपने विचारों और उद्देश्यों को छिपाना तिरस्करणीय समझते हैं। वे खुलेआम ऐलान करते हैं कि उनके लक्ष्य समस्त वर्तमान सामाजिक अवस्थाओं के बलात तख्तापलट द्वारा ही सिद्ध किये जा सकते हैं" (पृ. 70)।

मार्क्स और एंगेल्स की कृतियों में इस तरह के वाक्य कई और जगहों पर भी देखे जा सकते हैं। अम्बेडकर जी, क्या आप इसे हिंसा कहते हैं? तो सुनिये! यह हिंसा नहीं है। बल्कि यह हिंसा के विरुद्ध संघर्ष है। यह हिंसा के विरुद्ध क्रांति है। वास्तविक हिंसा तो श्रम का शोषण है जो मालिकों द्वारा किया जाता है।

हिंसा का प्रतिरोध करने का प्रयत्न हिंसा नहीं है! यह मेहनतकश वर्ग की आत्म-रक्षा है! यदि आप उस संघर्ष को हिंसा का नाम देते हैं जो आत्म-रक्षा के लिए कटिबद्ध होता है तो इसका सीधा अर्थ यह होता है कि आप मेहनतकश वर्ग को उनकी खुद की मुक्ति के लिए संघर्ष और विद्रोह न करने का उपदेश दे रहे हैं और उनसे अपने मालिकों के लिए पूर्ववत खून-पसीना बहाते हुए दास ही बने रहने की सलाह कर रहे हैं।

यदि आपका कोमल हृदय श्रमिक वर्ग के संघर्ष को न झेल सके, तो आपके सामने एक दूसरा सुन्दर रास्ता है! यदि मालिक वर्ग से किसी लड़ाई-झगड़ा के बिना उनके स्वामित्व अधिकारों का परित्याग करा सकें तो भला मेहनतकश वर्ग संघर्ष क्यों छेड़ेगा और विप्लव क्यों करेगा? संघर्ष होगा ही क्यों जब संघर्ष की कोई आवश्यता ही न रह जायेगी?

क्या मालिक वर्ग अपने स्वामित्व अधिकारों को छोड़ेगा? क्या यह अपने खुद के भरण-पोषण के लिए श्रम करना आरंभ कर देगा? इसे मजदूरों के साथ जमीन जोतना होगा! इसे खानों-कारखानों में काम करना होगा। इसे बसों और ट्रेनों को दौड़ाना होगा। इसे गलियों में झाड़ू लगाना होगा और नालियों की सफाई करनी होगी। मात्र एक

तरह का काम नहीं बल्कि अनेक प्रकार के काम। इसे निम्नतम शारीरिक श्रम सहित हर प्रकार के काम ठीक वैसे ही करने होंगे जैसे कि समूची श्रमजीवी आबादी कई हजार वर्षों से करती आ रही है। इसके अतिरिक्त, मालिकों की सत्ता को उन समस्त आयुधों को छोड़ देना होगा जिन्हें वे अपने पास उस मेहनतकश वर्ग का दमन करने के लिए रखते हैं। इसे पुलिस और सेना का खात्मा करना होगा!

मेहनतकश वर्ग संघर्ष अथवा विप्लव क्यों करेगा अगर मालिकों का वर्ग स्वेच्छया ऐसे परिवर्तन के लिए राजी हो जाय? क्या मेहनतकश वर्ग सनकी है?

क्या आप नहीं जानते कि शस्त्रागार मजदूरों के नियंत्रण में रहते हैं अथवा मालिक के नियंत्रण में?

क्या आप नहीं जानते कि हिंसा मालिकों के वर्ग में जन्मती है? एक ओर जहां हिंसा के तरह-तरह के विचित्र और विलक्षण उपकरण मौजूद हों और जहां हिंसा में प्रशिक्षित कर्मचारियों की टोलियां मालिकों के वर्ग की मर्जी पर आश्रित हों, वहां पर आप मेहनतकश वर्ग के उस संघर्ष को हिंसा के बराबर मान रहे हैं जो उसकी आत्मरक्षा के लिए होता है। यह प्रदर्शित करता है कि आपको हिंसा के आधार की कितनी अच्छी समझदारी है!

बुद्ध ने हिंसा के बारे में क्या कहा है? उन्होंने कहा, "युद्ध अनुचित है बशर्ते कि वह सत्य और न्याय के लिए न हो" (पृ. 442)। इसका अर्थ हुआ कि ऐसा युद्ध (सत्य और न्याय के लिए) 'सही' युद्ध होगा।

मजदूर वर्ग जो युद्ध छेड़ता है वह भी एक 'सही' युद्ध होता है। यदि ऐसे युद्ध में मनुष्य मारे जाते हैं और हिंसा होती है तो इस हिंसा के लिए मजदूर वर्ग जिम्मेदार नहीं है। जिम्मेदारी मालिक वर्ग की होगी। अगर वर्ग अपना प्रभुत्व छोड़ दे तो कोई हिंसा नहीं होगी। अन्यथा, हिंसा अपरिहार्य है। आत्मरक्षा अपरिहार्य है। है या नहीं?

अम्बेडकर अपने ही शब्दों को हमेशा भूल जाते हैं। अन्यथा उन्होंने इस तथ्य को याद रखा होता कि उन्होंने भावुक होकर अछूतों के लिए हिंसा का उपदेश दिया था। वह संदर्भ इस प्रकार था : अम्बेडकर शुरुआत में अस्पृश्यता विरोधी संघ के सदस्य थे जिसे गांधी ने 1932 में आरंभ किया था। अम्बेडकर ने संघ के सचिव ठक्कर को पत्र लिखते समय तर्क दिया था कि अछूतों के अधिकारों की सुरक्षा के निमित्त संघर्ष करने के लिए कार्यकर्ताओं की एक सेना होनी चाहिए, यह भी कि इस कार्यक्रम में 'सामाजिक गड़बड़ी' और यहां तक कि 'रक्तपात' भी हो सकता है और यह कि दूसरी कोई भी कार्ययोजना प्रभावी नहीं होगी।

क्या आप इसे अम्बेडकर के ही शब्दों में देखना चाहेंगे?

> "मैं समझता हूं कि संघ को जो पहली चीज अपने जिम्मे लेनी चाहिए वह है भारत में सर्वत्र अभियानदलित वर्गों के पक्ष में उनके नागरिक अधिकारों का प्रयोग सुरक्षित कराने के लिए, जैसे कि गांवों के कुओं से पानी लेना, गांवों के स्कूलों में भर्ती, गांवों की चावड़ी में प्रवेश, सार्वजनिक यातायात का प्रयोग इत्यादि। ऐसा कार्यक्रम यदि गांवों में संचालित हो तो हिन्दू समाज में आवश्यक सामाजिक क्रांति लायेगा, जिसके बिना दलित वर्ग के लिए समान सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त करना कभी संभव नहीं होगा। ... सर्वप्रथम दलित वर्गों और हिन्दू जातियों के बीच **दंगे** होंगे जो **सिर फुटौवल** में परिणत हो जायेगा... संघ को ग्रामीण हिस्सों में कार्यकर्ताओं की सेना रखनी होगी जो दलित वर्ग को अपने अधिकारों के लिए लड़ने को प्रेरित करेंगे। यह सही है कि इस कार्यक्रम में **सामाजिक गड़बड़ी** और यहां तक कि **रक्तपात भी** शामिल हो सकता है। लेकिन मैं नहीं समझता कि इसे टाला जा सकता है। मैं न्यूनतम प्रतिरोध की कार्यदिशा स्वीकारने की वैकल्पिक नीति के बारे में जानता हूं। मुझे विश्वास है कि अस्पृश्यता मिटाने के मामले में यह अप्रभावी रहेगा।. .. आपको **सीधी कार्रवाई** द्वारा **संकट** अवश्य पैदा करना चाहिए।" (खंड 9, पृ.135-36, जोर हमारा)

इस प्रकार अम्बेडकर ने अपने काफी लम्बे पत्र में आद्योपान्त सुझाव दिये। किस तरह के सुझाव? यह कि केवल कार्यकर्ताओं की सेना द्वारा संगठित सीधी कार्रवाई ही अस्पृश्यता को मिटायेगी, भले ही इसमें रक्तपात भी क्यों न शामिल हो।

अम्बेडकर द्वारा उद्धृत अन्य उदाहरण के लिए जहां उन्होंने कहीं पर भी व्याप्त किसी भी अन्याय से लड़ने के लिए साधनों का सुझाव दिया है! (खंड 5, पृ.375)

इस अवसर पर अम्बेडकर ने गांधी की आलोचना की है। गांधी द्वारा स्थापित हरिजन सेवक संघ के संविधान का एक अनुच्छेद इस प्रकार है :

> "यह कि अधिकारों को हासिल करने के लिए किसी बाध्यता का प्रयोग नहीं होना है, बल्कि एकमात्र साधन के रूप में शान्तिपूर्वक समझाने-बुझाने को अपनाना है।" (खंड 5, पृ. 375)

इस अनुच्छेद के लिए गांधी की आलोचना करते समय, बल प्रयोग (रक्तपात भी) का पक्षपोषण करते हुए अम्बेडकर ने अपना तर्क बड़े उत्साह के साथ आगे बढ़ाया। अनुच्छेद उदृधृत करने के बाद, अम्बेडकर कहते हैं :

> "यह संघ का एक मूल सिद्धान्त है। यह मुझे विचित्र सुझाव लगा संघ ने अस्पृश्यता दूर करने के एकमात्र साधन के रूप में हिन्दू जातियों को शान्तिपूर्वक समझाने-बुझाने तक ही अपने को क्यों सीमित रखा है?" (खंड 5, पृ.375)।

इस तरह उन्होंने विस्तार से तर्क प्रस्तुत किया और अन्ततः निष्कर्ष निकाला कि अन्याय का 'ताकत द्वारा'(बल प्रयोग) 'प्रतिरोध' किया जाना चाहिए और इसे चुनौती दी जानी चाहिए।

> "यदि न्याय को खत्म किया जा रहा हो तो इसका प्रतिरोध किया जाना चाहिए और जब अन्याय, चाहे साम्राज्यवाद के रूप में अथवा वर्ग प्रभुत्व के रूप में, सामूहिक सत्ता की ओर से सिर उठा रहा हो तो इसे ताकत द्वारा चुनौती दी जानी चाहिए। जिस वर्ग ने अपनी स्थापित सत्ता की आड़ में किलेबन्दी कर ली हो उसे तब तक उखाड़ फेंका नहीं जा सकता, जब तक कि उसके मुकाबले में ताकत खड़ी न कर ली जाय। बलवानों द्वारा निर्बलों के शोषण को रोकने का मात्र यही रास्ता है" (खंड 5, पृ.375)।

इस तरह उन्होंने कहा 'मात्र यही रास्ता है', या नहीं कहा? फिर अन्याय का प्रतिरोध विद्रोह या प्रतिरोध संघर्ष के बजाय 'हिंसा' कैसे हो सकता?

"मैंने कई अवरोधों में से केवल दो का उल्लेख किया है जिन पर संघ को काबू पाना होगा बशर्ते कि नागरिक अधिकारों के इस अभियान को सफल होना है और सफल परिणाम के लिए संघ को ग्रामीण हिस्सों में कार्यकर्ताओं की एक सेना रखनी होगी जो दलित वर्गों को अपने अधिकारों के लिए लड़ने के लिए प्रेरित करेंगे और जो वहां से पैदा होने वाली किसी भी कानूनी कार्रवाई में उनकी मदद करेंगे। यह सही है कि इस कार्यक्रम में **सामाजिक अशान्ति** और **हिंसक हाथापाई** भी हो सकते हैं। परन्तु मैं नहीं समझता कि इसे टाला जा सकता है" (खंड 5, पृ. 368, जोर हमारा)।

"दलित वर्गों की मुक्ति तभी होगी जब हिन्दू जाति को सोचने के लिए बाध्य किया जाय और **बलात** महसूस कराया जाय कि उसे अपने रास्तों को अवश्य बदलना चाहिए।" (खंड 5, पृ. 368, जोर हमारा)

जब मार्क्स के सिद्धान्त की चर्चा की बारी आयी तो अम्बेडकर के तर्क क्यों उलट गये जिनमें उन्होंने "हिंसक हाथापाई", "बलात" "संकट" और "सीधी कार्रवाई" की बात की थी?

क्या 'हिंसा' और 'बल प्रयोग'जो अस्पृश्यता के विरुद्ध लड़ने के सर्वोत्तम साधन थे'श्रम के शोषण' के विरुद्ध लड़ने के 'निकृष्ट' साधन हो गये हैं? इस प्रकार की दलीलों के लिए कौन सी संज्ञा उपयुक्त होगी?

यदि हम इस विषय पर और विस्तार से चर्चा करें तो हम पायेंगे कि ये विद्रोह और बल प्रयोग अस्पृश्यता के मामले में उतने प्रभावी ढंग से कतई नहीं कार्य करते जैसा कि वे श्रम के शोषण के मामले में करते हैं।

श्रम का शोषण समाप्त करने के लिए मेहनतकश वर्ग को ही परिवर्तित होना है। और इसके लिए उसे यह ज्ञान प्राप्त हो जाना पर्याप्त है कि शोषणकारी स्वामित्व अधिकारों का खात्मा होना चाहिए। फिर तो समस्या सुलझ जायेगी। परन्तु 'अस्पृश्यता' के प्रश्न पर स्थिति वही नहीं है। यहां पर अछूतों नहीं बल्कि हिन्दुओं को परिवर्तित होना होगा। जब तक हिन्दू महसूस नहीं करते कि 'अस्पृश्यता का पालन अनुचित है' और जब तक वे स्वयं बदलते नहीं, तब तक अछूतों के विद्रोह प्रभावी नहीं होंगे।

अछूतों को सार्वजनिक कुओं का प्रयोग करने अधिकार प्राप्त हो सकता है। परन्तु उस दशा में अछूत क्या कर सकते हैं जब हिन्दू उन कुओं पर आना ही बन्द कर दें? वे किस अधिकार से हिन्दुओं को कुओं पर लाने के लिए बाध्य कर सकते हैं? जब हिन्दू बच्चे उन स्कूलों में जायें ही न जिनमें अछूतों के बच्चे पढ़ते हों तो वे क्या करेंगे? यदि हिन्दू उन मन्दिरों में न जायें जहां अछूत प्रविष्ट होते हों? यदि हिन्दू अछूतों को घरेलू नौकरों के रूप में न रखें? वे (अछूत) किसी हिन्दू के विरुद्ध उसे इस बात से रोकने के लिए किस अधिकार से लड़ सकते हैं कि किसी अछूत से स्पर्श हो जाने के बाद वह घर पर नहा लेता हो? यह वैसा कुछ नहीं है जो हिन्दुओं के विरुद्ध बल प्रयोग द्वारा अछूतों को हासिल हो सके। इसका समाधान हिन्दुओं के हाथों में है न कि अछूतों के।

अस्पृश्यता और जाति विभेद की समस्या की प्रकृति ऐसी है कि उनका उन्मूलन करना तब तक संभव नहीं है जब तक कि इन्हें अमल में करने वाले में परिवर्तन न हो। यहां दूसरों के अधिकार महत्व नहीं रखते।

यह वास्तविकता कि अस्पृश्यता की प्रथा आज क्षीण हो चुकी है, दिखाती है कि ऐसा हिन्दुओं के सांस्कृतिक परिष्कृत विचारों के कारण है न कि इस कारण कि अछूतों ने हिन्दुओं को इसके अमल से रोक दिया है।

सांस्कृतिक रूप से परिष्कृत विचार सदैव उन अवस्थाओं के विरुद्ध लड़ाई के कारण उत्पन्न होते हैं जो उन विचारों के प्रतिकूल होती हैं। बहरहाल, जाति भेद मानने वालों में सांस्कृतिक परिष्कृत विचार इसलिए उपजते हैं क्योंकि अस्पृश्यता-पीड़ितों ने किसी न किसी रूप में अस्पृश्यता के विरुद्ध संघर्ष किया। यह यथार्थ है। परन्तु अस्पृश्यता-पीड़ितों ने उन विचारों को ग्रहण कैसे ग्रहण किया और अस्पृश्यता के विरुद्ध संघर्ष किया? अपने उत्पीड़न की वजह से। यही वजह आदिमकाल में भी मौजूद थी। उत्पीड़न के अलावा, उत्पादन सम्बन्धों के क्षेत्र में परिवर्तन और संघर्षजो कि संस्कृति के आधार को निरूपित करते हैंसंस्कृति के क्षेत्र को प्रभावित करते हैं। ऐसे परिवर्तन और संघर्ष दलितों को अस्पृश्यता के विरुद्ध लड़ने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। वे उन हिन्दुओं को भी प्रभावित करते हैं जो अस्पृश्यता का बर्ताव करते हैं।

अम्बेडकर ने अस्पृश्यता के मामले में बल प्रयोग का सुझाव दिया जहां बल प्रयोग के साधनों द्वारा गलत प्रथा को समाप्त करना संभव नहीं। जब कि 'श्रम के शोषण' के बारे में वह दलील दे रहे हैं कि 'बल' लागू नहीं होता। उन्होंने कहा था कि लोगों को वर्ग प्रभुत्व के रूप में सामूहिक सत्ता का प्रतिरोध करना होगा, कहा था न? फिर वह कैसे कह सकते थे कि मार्क्सवाद हिंसा के मार्ग की वकालत करता है और इसलिए यह श्रेयस्कर मार्ग नहीं है? क्या यह आश्चर्यजनक नहीं है?

यदि हम अम्बेडकर की हर बात पर आश्चर्यचकित होने लगें तो यह अंतहीन क्रिया होगी। हम केवल एक या दो अवसरों पर नहीं, बल्कि निरन्तर आश्चर्यचकित होते हैं। आखिरकार, हम कब तक आश्चर्यचकित होते रहें जबकि हमें प्रत्येक पृष्ठ पर आश्चर्यचकित होना पड़े।

यदि दूसरे लोग वही बातें कहें जो उन्होंने कहा था, तो अनुचित है! बल्कि, आज वह उस बात को नहीं कहेंगे जो उन्होंने कल कही थी! वह वही बात कल नहीं कहेंगे जो उन्होंने आज कही! अन्तर्वस्तु में किसी तब्दीली के बगैर ही उनकी दलीलें बदल जाती हैं। इसका कोई कारण नहीं कि उनकी दलीलें क्यों बदल जाती हैं। वह अपनी सुविधानुसार उनमें फेरबदल कर लेते हैं! यही एकमात्र सिद्धान्त है जिसका वह अनुसरण करते हुए प्रतीत होते हैं!

खैर, अब मार्क्सवाद के उस दूसरे बिन्दु पर चर्चा की जाये जो अम्बेडकर को नागवार है।

सर्वहारा का अधिनायकत्व :

अम्बेडकर दलील पेश करते हैं कि मार्क्स ने जनवाद के बजाय अधिनायकत्व के मार्ग का सुझाव दिया था जबकि बुद्ध ने जनवाद का उपदेश दिया था और इसलिए बौद्ध मार्ग बेहतर है!

हम यह बाद में चर्चा करेंगे कि अधिनायकत्व से मार्क्स का क्या आशय है। पहले तो हम यह देख लें कि, इस दावे का आधार क्या है

कि बुद्ध ने जनवाद प्रस्तावित किया था? अम्बेडकर अपने दावे के समर्थन में कुछ उदाहरण देते हैं।

1. "डिक्टेटरशिप (अधिनायकत्व) बुद्ध को बिल्कुल स्वीकार्य नहीं। वह जनवादी ही रहे। उनके जीवन काल में 14 राजतन्त्र थे और 4 गणतन्त्र। वह शाक्यों के वंशज थे और शाक्यों का राज गणतन्त्र था। (पृ.451)।

वे सभी देश दासों के शोषण पर टिके थे जिनका अम्बेडकर ने 'गणतन्त्र' के रूप में गुणगान किया। उन गणतन्त्रों में एक वह वर्ग जो श्रम करता था और एक वह वर्ग था जो श्रम का शोषण करता था। दासों को कोई भी अधिकार प्राप्त नहीं था। यही वह सर्वश्रेष्ठ जनवाद है जो अम्बेडकर को प्रिय हैं! अम्बेडकर ने कई अवसरों पर कहा कि भारत में कोई जनवाद नहीं है जहां कि हमारे बीच अछूत हों और यह कि जनवाद के नाम पर जो कुछ भी है वह अछूतों के लिए जनवाद नहीं है। फिर दासों से भरा वह समाज जनवादी समाज कैसे हो सकता था जो 2500 वर्षों पूर्व विद्यमान था? देखिए, हम एक बार फिर आश्चर्यचकित हो गये!

2. बुद्ध जनवादी थे यह दावा करने के लिए अम्बेडकर ने एक और उदाहरण गिनाया है : यह कि बुद्ध, अन्य सभी भिक्षुओं के साथ ही, 'चिथड़ों से निर्मित पोशाक' पहनते थे! अम्बेडकर कहते हैं कि चिथड़ों से निर्मित पोशाक को पहनने का कारण अभिजात वर्गों को संघ में सम्मिलित होने से रोकना था। इसका अर्थ है, लोगबाग संघ में इसलिए नहीं सम्मिलित होते थे कि उनकी धम्म (पंथ) में कोई रुचि थी। वे तभी सम्मिलित होते थे जब वे चिथड़ों से निर्मित पोशाकों से भयभीत नहीं होते थे! यदि उन्हें चिथड़ों से सजने का भय रहता तो वे सम्मिलित नहीं होते!

यदि बुद्ध अभिजातों को प्रवेश देने में रुचि नहीं रखते थे, तो क्या उनके द्वारा यह शर्त रख देना ही पर्याप्त नहीं होता कि वह धनिकों को प्रवेश नहीं देंगे? क्या 'चिथड़ों से निर्मित पोशाक' पहनना ही समाधान है?

बुद्ध ने किसी भी सूरत में यह नियम नहीं निर्धारित किया कि सदस्यों के पास 'मुद्रा' नहीं होनी चाहिए, क्या ऐसा किया था? फिर मुद्रा की स्वायत्तता या अभिजात्यवाद अनुचित कैसे हो गया? किसी व्यक्ति को संघ में प्रवेश देने के लिए मुद्रा का संदर्भ ही क्या है? चाहे कितना ही छोटा मामला अम्बेडकर क्यों न उठाते हों, इसमें कम से कम सौ भूलें जरूर होती हैं!

जब सभी भिक्षु इन्हीं 'चिथड़ों से निर्मित पोशाकों' को पहन रहे थे, उसी बीच जीविका नामक एक शाही वैद्य ने "बुद्ध को पूर्ण वस्त्र से निर्मित पोशाक स्वीकार करने के लिए राजी कर लिया। बुद्ध ने तत्काल नियम पलट दिया और इसका सभी भिक्षुओं तक विस्तार कर दिया।' (पृ. 452) अम्बेडकर के अनुसार, बुद्ध 'पूर्ण समतावादी' थे! ऐसा प्रतीत होता है कि बुद्ध को पूर्ण वस्त्र से निर्मित पोशाक भा गयी थी। चूंकि, वह उस पोशाक को हटाना नहीं चाहते थे, अतः उन्होंने भिक्षुओं को भी ऐसी पोशाक पहनने की अनुमति दे दी। ओह, बुद्ध कितने चतुर व्यक्ति थे!

चिथड़ों वाला यह जनवाद अद्‌भुत है; परन्तु, क्या अभिजातों के संघ में सम्मिलित होने वाली समस्या फिर उपस्थित नहीं हो जायेगी? चिथड़ों से निर्मित पोशाकों वाला पहले का नियम तो अभिजातों के प्रवेश को रोकने के लिए ही था, या नहीं था? यदि आप उस नियम को हटा देंगे तो आप अभिजातों के संघ में सम्मिलित होने वाली समस्या को कैसे हल करेंगे? क्या यह जानकर फिर से आश्चर्य नहीं होता है कि अम्बेडकर ने बिना इस प्रश्न को दिमाग में रखे ही कहानी उद्धृत कर दी? यह दुखद है कि अम्बेडकर यह सोचते हुए बेवजह मुश्किल में कूद पड़े कि वह पोशाकों वाली इस दंतकथा द्वारा बुद्ध के जनवाद को प्रमाणित कर देंगे!

3. "एक बार बुद्ध की माता गौतमी ने, जो कि भिक्खुणी संघ में सम्मिलित हो चुकी थीं, सुना कि 'बुद्ध को ठण्ड लग गयी है...' यह सुनने पर, उन्होंने उनके लिए तुरंत गुलबंद तैयार करना आरंभ कर दिया।"

(ये माताजी शायद उस प्रकार की व्यक्ति हैं जिनके लिए वह तेलुगू कहावत चरितार्थ होती है कि घर में आग लगने पर कुआँ खोदना! ठण्ड लग जाने के बाद गुलूबन्द बना रही हैं!)

"इसे पूर्ण हो जाने के बाद वह बुद्ध के पास ले गयीं और उनसे इसको पहनने का अनुरोध किया। लेकिन उन्होंने यह कहते हुए इसे स्वीकार करने से मना कर दिया कि यदि यह उपहार है तो यह पूरे संघ के लिए होना चाहिए न कि संघ के किसी व्यक्तिगत सदस्य के लिए। वह याचना करती रहीं परन्तु उन्होंने मानने से इनकार कर दिया।" (पृ.452)

इसका आशय है, बुद्ध जनवादी थे! यह तीसरा उदाहरण है। लेकिन वह गुलूबन्द को संघ के लिए ले सकते थे और हर-एक जिसे भी इसकी आवश्यकता होइसका प्रयोग कर सकता था। अभी तो बुद्ध इसलिए प्रयोग करते क्योंकि उन्हें सर्दी हो गयी थी। बाद में, इसे धुलकर साफ करने के बाद दूसरे इसका प्रयोग करते। क्या सर्दी पकड़ने का भी कोई अकाल है? जिसके पास भी नाक होगी, उसे सर्दी होगी ही। संघ द्वारा गुलूबन्द प्रयोग किये जाने का मतलब है कि प्रत्येक सदस्य को अलग-अलग इसका प्रयोग करना होगा। संघ के सभी सदस्य उसी को अपने सिरों पर एक ही समय पर नहीं बांध सकते।

बुद्ध अपनी माता से स्पष्टतः कह सकते थे कि वह इसे तभी स्वीकार करेंगे जब वह इसे संघ को देंगी और यदि यह केवल उन्हीं के लिए बना है तो नहीं लेंगे।

क्या माता ने ऐसा कहा था कि यदि संघ के लिए देना होगा तो नहीं देंगी?

ऐसा लगता है कि अम्बेडकर के बुद्ध मस्तिष्क का प्रयोग नहीं करते। उनकी माता भी उन्हीं जैसी लगती हैं। वह कह सकती थीं, 'ठीक है, इसे संघ के प्रयोग के लिए ले लो! जो भी चाहे इसका प्रयोग कर सकता है!' यह उनके विचार में नहीं आया। उनके विचार में यह कैसे आ सकता था जबकि बुद्ध सरीखे प्रबुद्ध पुरुष, दार्शनिक और जनवादी के विचार में नहीं आया? बहरहाल, बुद्ध ने गुलूबन्द नहीं लिया। यदि जमीन या महल रहा होता, तो उन्होंने संघ के नाम पर स्वीकार कर लिया होता। उन्होंने इसे इसलिए स्वीकार नहीं किया क्योंकि यह एक निरा गुलूबन्द था।

'पोशाक-जनवाद और गुलूबन्द-जनवाद' की दंतकथाएं अम्बेडकर के इस दावे का आधार हैं कि बुद्ध महान जनवादी थे और उनका मार्ग सभी मार्गों से श्रेष्ठ है। यह कितना विचित्र है! क्या ऐसी कहानियों के आधार पर ही कोई सिद्धान्त 'जनवादी' सिद्धान्त हो सकता है?

अम्बेडकर 'जनतंत्र' शब्द पर फिदा हो चुके हैं। उन्हें यहां तक भी फिक्र नहीं कि उसी जनतंत्र में दास विद्यमान हैं। फिर तो 'संसदीय जनतंत्र' की शब्दावली पर बात करना ही व्यर्थ हैजबकि, यहाँ वर्ग, श्रम के शोषण और सभी कुछ यथावत बरकरार है।

शोषण पर आधारित समाज शोषण सम्बन्धों को 'जनतंत्र' के नाम पर जारी रख सकता है ऐसा जनवाद मालिकों के बीच ही विद्यमान होता है न कि मालिकों और मेहनतकशों के बीच। अतः 'शोषण' के संदर्भ में 'जनवादी' और 'गणतन्त्रवादी' शब्द निरर्थक हैं। ये महज सुन्दर नाम हैं।

केवल नाम द्वारा ही किसी बात की वकालत करना अथवा उसका विरोध करना अनुचित है। अम्बेडकर का सरोकार केवल नामों से था और उन नामों के 'सार' से उनका कुछ भी लेना-देना नहीं था। अतः शाक्य गणतंत्र, वैशाली गणतंत्र, मगध गणतंत्र और ऐसे ही नामों पर दृष्टिपात करते हुए उन राजाओं के शासन को 'जनवादी' बताते हैं। इसी प्रकार, मार्क्स के 'अधिनायकत्व' पर दृष्टिपात करते हुए, वह इसके प्रति गम्भीर विरोध प्रदर्शित करते हैं।

जी हां, मार्क्स 'अधिनायकत्व' की बात करते हैं। परन्तु उन्होंने इसे "सर्वहारा का अधिनायकत्व" कहा। वह उस अधिनायकत्व को निम्न प्रकार से वर्णित करते हैं :

पूंजीवादी और कम्युनिस्ट समाज के बीच एक के दूसरे में क्रान्तिकारी रूपान्तरण की अवधि होती है। इसी के समवर्ती एक राजनीतिक संक्रमण काल भी होता है जिस दौरान सर्वहारा के क्रान्तिकारी अधिनायकत्व के अतिरिक्त राज्य का कोई अस्तित्व नहीं हो सकता। *(गोथा कार्यक्रम की आलोचना, पृ.26, अंग्रेजी संस्करण, मास्को, 1971)*

कम्यून वर्गीय सरकार के नये स्वरूप को स्थापित नहीं कर सका। उत्पादन के सभी साधन उत्पादक श्रमिक को हस्तान्तरित करने के जरिए उत्पीड़न की मौजूदा स्थितियों को नष्ट करके, और इस तरह हर समर्थ व्यक्ति को आजीविका के लिए श्रम करने हेतु बाध्य करके वर्ग शासन और उत्पीड़न का एकमात्र आधार नष्ट कर दिया जायेगा। परन्तु इससे पहले कि ऐसा परिवर्तन अमल में लाया जाय, सर्वहारा अधिनायकत्व आवश्यक होगा।

(मार्क्स, "मार्क्स-एंगेल्सः संकलित रचनाएं, खंड 2, पृ.633-34, अंग्रेजी संस्करण, मास्को, 1986)

मार्क्स की व्याख्यानुसार, सर्वहारा का यह अधिनायकत्व क्यों आवश्यक है? यह ऐसा अधिनायकत्व नहीं है जो शोषण को जारी रखने के लिए मालिकों के वर्ग के काम आता है; बल्कि इसका ठीक विपरीत है। यह ऐसा अधिनायकत्व है जो शोषण समाप्त करने में मेहनतकश वर्ग के लिए उपयोगी है।

जब मेहनतकश वर्ग अपने संघर्षों से 'राज्य सत्ता' को अधिकृत कर लेगा, तब भी समाज पुरानी दशाओं में ही रहेगा। अर्थात उन्हीं 'मालिक-मजदूर सम्बन्धों' की दशाओं में। मेहनतकश वर्ग को ऐसे समाज को एक 'नये' समाज में परिवर्तित करना होगा। वर्तमान श्रम सम्बन्धों पर क्रान्तिकारी पाबन्दियां लगानी होंगी। भूमि और पूंजी पर स्वामित्व अधिकारों का खात्मा चरणबद्ध तरीके से आरम्भ होगा। प्रत्येक व्यक्ति को अनिवार्यतः श्रम करना होगा। न सिर्फ मानसिक श्रम बल्कि निम्नतम शारीरिक श्रम भी। मजदूरी अथवा वेतन किसी व्यक्ति की आमदनी होती है जो वह व्यक्ति 'श्रम' के बदले पाता है। इसका अर्थ यह है कि किसी भी व्यक्ति को बिना किसी श्रम के उस आमदनी को प्राप्त करने का कोई अधिकार नहीं होना चाहिए जो किराया, ब्याज और मुनाफा के रूप में होती है। 'धर्म' एक व्यक्तिगत मामला होना चाहिए। किसी भी को भी धर्म का खुल्लमखुल्ला प्रचार करने, धार्मिक संगठन गठित करने और बिना कोई श्रम किये महन्तों और मठाधीशों के रूप में रहने का कोई अधिकार नहीं होना चाहिए। इस तरीके से, मेहनतकश वर्ग शासन को उन सभी तर्कहीन स्वरूपों को समाप्त करना होगा जो शोषणकारी समाजों में जारी थे। यह सब हासिल करने के लिए इस सत्ता को अनेक क्रान्तिकारी प्रतिबन्ध लागू करने होंगे।

ऐसे प्रतिबन्ध लगाने का मतलब है उन अधिकारों का उन्मूलन जो पीढ़ी दर पीढ़ी चले आ रहे थे, जैसे, 'भूस्वामी के आधिपत्य की भूमि अब उसके पास नहीं रहेगी,' पूंजी पूंजीपतियों की सम्पत्ति नहीं हैं और प्रत्येक व्यक्ति को श्रम करना चाहिए और अपने श्रम पर निर्वाह करना चाहिए। यह उन्मूलन सम्पत्तिशाली वर्ग के विरुद्ध अधिनायकत्व है। चाहे हम किसी भी तरह से इसका नाम बदल दें और चाहे हम इसे 'सर्वहारा जनवाद' ही क्यों न कहें, यह उस समय तक किसी दूसरे वर्ग के विरुद्ध अधिनायकत्व ही रहेगा जब तक कि प्रतिबन्ध जारी रहेंगे। इस अधिनायकत्व और इन प्रतिबन्धों की अनुपस्थिति में, शोषणकारी स्वामित्व अधिकारों का उन्मूलन करना कैसे सम्भव है?

'समता' स्थापित करने के लिए आवश्यक सभी प्रतिबन्ध केवल शोषकों के वर्ग तक ही सीमित नहीं हैं। कुछ प्रकार के प्रतिबन्ध आवश्यक रूप से सभी लोगों पर लागू होंगे। उदाहरण के लिए, यदि उन लोगों को जरूरीशारीरिक श्रम करना हो जो केवल मानसिक श्रम में प्रवृत्त हैं; तो सभी प्रतिबन्धों को विद्यमान होना चाहिए। इसी प्रकार, कुछ ऐसे प्रतिबन्ध होने चाहिए जो पुरुषों और स्त्रियों के बीच वर्तमान श्रम विभाजन को बदलने के लिए हों। मार्क्स ने कहा था कि कम्युनिस्टों को 'सभी वर्तमान सामाजिक दासताओं' के क्रान्तिकारी रूपान्तरण का कार्यभार लेना चाहिए।

सभी वर्गों से सम्बन्धित उन तमाम लोगों को समता के सम्बन्धों और समता के विचारों में रूपान्तरित होना होगा जो सदियों से शोषण सम्बन्धों एवं तदनुरूप विचारधारा में जीते आये हैं। असमानता के सम्बन्धों को ध्वस्त कर देना होगा और जीवन के सभी क्षेत्रों में नये सम्बन्धों को रचना होगा। यह सब उस 'स्वतन्त्रता' के विरुद्ध संघर्ष है जिसका मालिक वर्ग ने अकेले उपभोग किया। यह विद्रोह हैहर उस जगह पर जहां प्रभुत्व मौजूद है। अतः 'क्रान्तिकारी अधिनायकत्व' के अलावा दूसरा कोई भी नाम चरितार्थ नहीं होता। तथापि, यह अधिनायकत्व ऐसा कुछ नहीं है जो निरन्तर मौजूद रहे। यह तभी तक आवश्यक है जब तक कि हम शोषण-सम्बन्धों को समता-सम्बन्धों में परिवर्तित न कर दें। क्रान्तिकारी अधिनायकत्व का काल केवल संक्रमण काल में रहता है। जब इस अवस्था की कोई आवश्कता ही नहीं रह जायेगी, तो वर्ग विभेद भी विद्यमान न होंगे। जब वर्ग विभेद बिल्कुल ही नहीं होंगे, तो वर्ग अधिनायकत्वों का भी कोई अस्तित्व न रह

जायेगा।

अम्बेडकर ने मार्क्स की इन व्याख्याओं में से किसी एक पर भी ध्यान नहीं दिया। उनकी दृष्टि में, 'अधिनायकत्व' शब्द ही अनुचित है! हर उस व्यक्ति को सर्वहारा का अधिनायकत्व अनुचित प्रतीत होता है जिसे श्रम का शोषण दिखाई नहीं देता।

अम्बेडकर ऐसा कोई प्रतिबन्ध नहीं चाहते जिसे इस प्रकार के अधिनायकत्व द्वारा बुर्जुआ वर्ग के ऊपर थोपा जाता हो। उनके अनुसार, सभी लोग बुद्धवाद के साधनों द्वारा परिवर्तित होंगे और अधिनायकत्व की कोई आवश्कता नहीं।

यदि ऐसा परिवर्तन संभव है, तो फिर हमें इससे अधिक और क्या चाहिए? क्या हम बहुत थोड़े समय में वर्गविहीन समाज स्थापित नहीं कर सकते और वो भी किसी वर्ग द्वारा एक बूंद भी खून बहाये बगैर, बशर्ते कि शोषकों का वर्गप्रतिबन्धों के अस्तित्व से निरपेक्षअपने स्वामित्व अधिकारों को छोड़ दे और श्रम करने की जिम्मेदारी को महसूस कर ले? क्या बौद्ध मार्ग के साधनों द्वारा यह हो सकेगा?

सर्वहारा के अधिनायकत्व का विरोध करते हुए, अम्बेडकर की आलोचना इस प्रकार है :

> ''अधिनायकत्व को ही ले लीजिए। अधिनायकत्व का लक्ष्य क्रान्ति को सतत क्रान्ति बनाना है। यह बहुमूल्य लक्ष्य है। लेकिन, क्या कम्युनिस्ट ऐसा कह सकते हैं कि उन्होंने इस लक्ष्य को प्राप्त करने में अन्य बहुमूल्य लक्ष्यों को ध्वस्त नहीं किया है?'' (पृ.452)
>
> "उन्होंने निजी सम्पत्ति को नष्ट किया है।...अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए उन्होंने न जाने कितने लोगों की हत्या की है। क्या मानव जीवन का कोई मूल्य नहीं? क्या वे मालिक की जान लिए बगैर सम्पत्ति नहीं ले सकते थे?''(पृ.452)

ये 'हत्याएं' कहां पर हुईं? कब? किस अवसर पर? उन्होंने कोई भी साक्ष्य नहीं प्रस्तुत किया है; सिवाय यह कहने के कि 'उन्होंने हत्या कर दी! उन्होंने हत्या कर दी!'

यदि कहीं पर ऐसा हुआ भी तो यह किसी लड़ाई में हुआ। अथवा यह तब हुआ होगा जब मालिक ने मजदूरों के आन्दोलन का विरोध करते समय उनकी हत्या करने का प्रयास किया होगा। जब तक हम यह न जान लें कि हुआ क्या था और किस संदर्भ में हुआ था, तब तक हम कैसे निर्णय ले सकते हैं कि क्या सही है और क्या गलत?

अम्बेडकर पूछते हैं, 'क्या वे मालिक की जान लिए बगैर सम्पत्ति नहीं ले सकते थे ?'

जी हां, वे ले सकते थे। वास्तव में ऐसा करना ही आदर्श व अभीष्ट है। लेकिन यह तभी संभव है जब मालिक भी सहयोग करें! अर्थात जब मालिक अपने कब्ज़े की सम्पत्ति और स्वामित्व की अभिवृति त्याग दे! यदि ऐसा होता है तो वह बहुत सुरक्षित हो जायेगा, और यदि एक तेलगु मुहावरे का प्रयोग करें तो, 'वह फूल भी नहीं मुरझायेगा जिसे मालिक अपने सिर में लगाता है।' परन्तु कोई भी मालिक इतना संवेदनशील व्यवहार नहीं करता है। वह कहता है, "समूची धरती मेरी है", यद्यपि कि धरती किसी एक व्यक्ति की नहीं होती। वह कहता है, "सारी पूंजी मेरी है," यद्यपि कि वह पूंजी मेहनतकशों की होती है! वह कहता है, "जब मेरे पास सम्पत्ति है तो मैं काम क्यों करूं।" यह अन्तरविरोध किसी भी हद तक जा सकता है। यदि यह संघर्ष और हत्याओं में परिणत हो जाय, तो क्या यह मजदूरों का अपराध होगा? क्या यह मजदूरों की जिम्मेदारी होगी?

क्या इन संघर्षों में केवल मालिक ही मरते हैं? क्या मेहनतकशों का कुछ नहीं होता? मजदूर भी, अपने जीवन की बाजी क्यों लगा देते हैं? क्योंकि, इसकी आवश्कता है!

अम्बेडकर बड़ी मानवीय संवेदना के साथ पूछते हैं, 'क्या वे मालिक की हत्या किये बगैर, सम्पत्ति नहीं ले सकते'? क्या हम यही प्रश्न उनसे नहीं कर सकते? यदि हम उनसे पूछें, 'क्या अछूत, हिन्दुओं का सर फोड़े बगैर सार्वजनिक सुख-सुविधाओं का प्रयोग नहीं कर सकते', तब क्या जवाब होगा? अम्बेडकर ने हिन्दुओं के संदर्भ में 'रक्तपात भी' का क्यों समर्थन किया? उन्होंने खुद कहा कि सिर टूट सकते हैं, कहा या नहीं? तो फिर क्या अछूत, बिना किसी का सिर तोड़े, आन्दोलन नहीं चला सकते हैं? स्वयं अम्बेडकर ने यह क्यों कहा कि दूसरा कोई रास्ता नहीं? फिर वह कम्युनिस्टों से यह कैसे पूछ सकते हैं कि 'क्या आप मालिक की हत्या किये बगैर' सम्पत्ति नहीं ले सकते हैं?

अछूत, और साथ ही साथ कम्युनिस्ट भी, यह जानते हैं कि हत्या आदर्श नहीं है और न ही अभीष्ट है और उन्हें इस पद्धति का सहारा नहीं लेना चाहिए। ऐसी बात तभी होती है जब स्थिति अपरिहार्य हो जाती है।

हमने हर मुकाम पर दर्जनों बार देखा कि अम्बेडकर की प्रणाली किस प्रकार कार्य करती है। अगर वह कुछ कहें तो ठीक होता है। वही बात जब दूसरे कहते हैं तो अनुचित होता है! यही उनका सिद्धान्त है! यही उनके सभी अनुसंधानों का मार्गदर्शक सिद्धान्त है।

क्या आपको याद है कि इस जनतंत्रवादी नेजो कि अधिनायकत्व और बल के प्रयोग को खारिज करते हैंहिन्दू धर्म का सुधार कैसे किया जाये, इस सन्दर्भ में क्या कहा था? अब जरा, **'जाति का खात्मा'** निबन्ध को देखें। वहां पर, उन्होंने कई प्रतिबन्धों का सुझाव दियाः कि हिन्दू धर्म के लिए केवल एक ही मानक ग्रन्थ होना चाहिए, कि वेदों, शास्त्रों और पुराणों जैसे सभी हिन्दू धर्मग्रन्थों को नष्ट कर दिया जाय, कि उन ग्रन्थों की किसी भी बात के प्रचार को अपराध माना जाय और दण्डित किया जाय और ऐसे ही कुछ और। क्या ये सभी उपाय उन लोगों पर अधिनायकत्व के समान नहीं होंगे जो इन ग्रन्थों को पवित्र धर्मग्रन्थ मानते हैं? क्या ऐसे लोगों को दण्डित करना, बल प्रयोग के समान नहीं होगा?

यदि हिन्दू धर्मग्रन्थों के प्रचार करने की स्वतन्त्रता को प्रतिबन्धित करना अधिनायकत्व नहीं है, तो वह प्रतिबन्ध अधिनायकत्व कैसे हो सकता है जो शोषणकारी अधिकारों पर लागू होता है?

अम्बेडकर के अनुसार, ऐसा कोई भी प्रतिबन्ध और दण्ड जो उन्होंने सुझाया, अधिनायकत्व या अवैधानिकता के समान नहीं है। मार्क्स ने जो कुछ भी कहा, सिर्फ वही अधिनायकत्व है और अवैध है!

इस तरह का रवैया अपनाते हुए, अम्बेडकर ने मार्क्स के मार्ग को 'बल-प्रयोग' के रूप में निष्कर्षित किया। अम्बेडकर ने घोषित किया कि ऐसा मार्ग, हालांकि अन्तरिम रूप से सफल होता है, चिरस्थायी नहीं होगा और इसलिए बुद्ध का मार्ग चिरस्थायी होगा।

यहां पर भी अम्बेडकर ने 'नीतिपरायणता द्वारा शासन' और 'बल द्वारा शासन' के बीच भेद को सिद्ध करने के लिए एक कथा सुनानी शुरू का दी। यह नीतिपरायणता की एक कहानी है जिसे अम्बेडकर ने मार्क्सवाद के खण्डन के लिए हथियार के रूप में प्रयोग किया है। पाठकों को इस बहुत ही अहम 'वैज्ञानिक' चर्चा को बड़ी सावधानी से जांचना-परखना होगा।

दिव्य चक्र द्वारा शासन :

अम्बेडकर के अनुसार, बुद्ध ने भिक्षुओं को यह कहानी सुनाई थी (पृ.453-58)। 'बहुत समय पहले, प्रभुत्वशाली महाराजा था। वह समुद्र तक फैली इस पृथ्वी पर आधिपत्य के साथ रहता था, जिस पर उसने विजय प्राप्त कर ली थी।' वह ऐसा विजेता था। बुद्ध कहते हैं कि उसने पृथ्वी को 'तलवार द्वारा नहीं अपितु नीतिपरायणता द्वारा' जीता था।

बुद्ध बताते हैं कि इस सम्राट ने पृथ्वी को तलवार द्वारा नहीं अपितु नीतिपरायणता द्वारा जीता था! "हां, यह सही है"अम्बेडकर सुर में सुर मिलाते हैं! बुद्ध और अम्बेडकर दोनों सम्राट का एक महान नीतिपरायणता शासक और जन संरक्षक के रूप में वर्णन कर रहे हैं।

बुद्ध का सम्राट के प्रति समर्पण वर्णनातीत है! अम्बेडकर के समर्पण के बारे में तो बात करना ही अनावयक है। किसी 'राजा' की झलक ही पर्याप्त है! तत्काल पूर्ण समर्पण!

सम्राट के पास एक 'दिव्य चक्र' था। उसने नीतिपरायणता के साथ हजारों वर्षों तक लोगों पर शासन किया। एक दिन दिव्य चक्र थोड़ा सा धंसा और अपने स्थान से नीचे खिसक गया। सम्राट ने अपने बेटे को तुरन्त बुलाया और उससे कहा, 'मैं इन्द्रिय सुखों का भोग कर चुका हूँ। अब ईश्वरीय आनन्द खोजने का समय आ गया है। समुद्र से घिरी इस धरा का कार्यभार ग्रहण करो। मैं अपने केश और दाढ़ी मुंडवाकर सन्यासी बनूंगा।' ऐसा कहते हुए, सम्राट 'घर छोड़कर चला गया।'

सम्राट के जाने के बाद सातवें दिन, दिव्य चक्र अन्तर्ध्यान हो गया। बेटा गया और अपने पिता से इसके बारे में बताया। पिता ने कहा, 'चिन्ता मत करो! दिव्य चक्र कोई पैतृक विरासत नहीं है' (वास्तविक पैतृक विरासत में केवल भूमि और दास ही शामिल होते हैं। क्या हुआ अगर, वह दिव्य चक्र किसी के पास हो अथवा न हो!)

बाप ने बेटे को भारी-भरकम प्रवचन दिये : 'आर्य कर्तव्य का पालन करो! दिव्य चक्र वहीं रहता है जहां नीतिपरायणता रहती है! सत्य और नीतिपरायणता की उपासना करो! नीतिपरायणता तुम्हारा गुरु है! सेना, असामियों, अपनी स्व-जाति, ब्राह्मणों, प्रजा को संरक्षण प्रदान करो! गरीबों को पैसे दो! इन्द्रियों के मद में रहने से उत्पन्न निश्चिन्तता को दूर करो!

यह सम्राट तलवार का प्रयोग नहीं करता है बल्कि नीतिपरायणता का प्रयोग करता है, है कि नहीं? तो फिर उसने अपने पास सेना क्यों रखी है? यह सेना भी युद्ध छेड़ती है! दूसरे राजागण उसके असामी हो जाते हैं! वे कर अदा करते हैं! राजा की स्वयं की जाति के पास विशेष विलासिताएं मौजूद होती हैं! ब्राह्मणों को विशेष संरक्षण प्राप्त होता है! यही वह नीतिपरायणता का शासन है जो अम्बेडकर को इतना प्रिय था।

दिव्य चक्र तब पुनः प्रकट हुआ जब बेटा घर गया और पूर्णिमा के दिन पूजा की। चक्र के प्रकट होने पर, राजा और भी बड़ा राजा हो जायेगा,या सम्राट हो जायेगा और यहां तक कि विश्वाधिराज हो जायेगा। राजा ने अपने बांये हाथ में एक कलश लिया और अपने दाहिने हाथ से दिव्य चक्र पर यह कहते हुए पानी छिड़का :

'हे चक्र भगवान ! आगे बढ़ते चलो। (ऐसा लगता है कि बेटा उस साम्राज्य से खुश नहीं है जो उसके पिता ने उसे दिया था! वह चक्र से और भी जीतने के लिए (आक्रान्त करने के लिए) आह्वान कर रहा है।)

दिव्य चक्र पूर्वी क्षेत्र की ओर बढ़ता गया और उसके पीछे राजा और उसकी चतुरंगिणी सेना हो ली। (अम्बेडकर कहते हैं कि यह नीतिपरायणता है और बल का प्रयोग नहीं है!) उस क्षेत्र से, सभी राजागण सम्राट के पास आये और उसके आधिपत्य को सिर नवाया, ''हे प्रतापी राजा! हे प्रतापी राजा! सब कुछ आपका है!''

तब उस संप्रभु राजा ने उन अधीनस्थों को प्रवचन दिया : 'जीवों की हत्या मत करो! झूठ मत बोलो! मादक पेय मत पीयो। चोरी मत करो!' (मैं ही यह सब करूंगा और सभी साम्राज्यों को हड़प लूंगा। तुम ये चीजें मत करो!)

तब दिव्य चक्र ने सभी दिशाओं का चक्कर लगाया। "दिव्य चक्र समुद्र समेत पूरे पृथ्वी को जीतते हुए आगे बढ़ता रहा और राज नगर में वापस आया और स्थिर हो गया" (पृ.456)।

(याद करें, यह अम्बेडकर का विचित्र अर्थनिरूपण है कि बुद्ध नेजिन्होंने कि 'पूरे पृथ्वी पर विजय' की इन गाथाओं का वर्णन किया 'निजी सम्पत्ति' का विरोध किया था!)

इस तरह से, सात सम्राटों ने नीतिपरायण मार्ग पर चलते हुए शासन किया। लेकिन एक सम्राट ने आर्य कर्तव्य की उपेक्षा करते हुए अपने मन मुताबिक शासन करना आरंभ कर दिया। उसने अनाथों को पैसा देना बन्द कर दिया।

दिव्य चक्र फिर से अन्तर्ध्यान हो गया। चारों ओर गरीबी फैल गयी। एक गरीब व्यक्ति ने चोरी की। राजा ने उसे पैसा दिया। सभी गरीब लोगों ने सोचा कि यह उत्तम रास्ता है और चोरी करना आरंभ कर दिया। लेकिन राजा ने इस बार लोगों के सिर कटवा दिये। फिर चोर डाकुओं में बदल गये और लोगों की हत्या करने लगे।

अनैतिक कार्यशैली और स्वेच्छाचारिता बढ़ गयी। धर्मात्माओं में धर्मनिष्ठा की कमी होने लगी।

बुद्ध आगे कहते हैं कि ऐसी स्थिति में किस प्रकार की असामान्यताएं पैदा होती हैं। मानव का जीवन काल दस वर्ष पर आ जायेगा। पांच वर्ष की कन्याएं विवाहयोग्य उम्र की होंगी। ऐसे मनुष्यों में अभिरुचियों का ज्ञान विलुप्त हो जायेगा। (क्यों न विलुप्त हो जबकि कुछ खाने को ही न हो?) दस नैतिक आचार क्रम एक साथ विलुप्त हो जायेंगे और दस अनैतिक तौर-तरीके बेहद पनपेंगे।

कहानी अन्त तक ऐसे ही चलती है।

सम्राटगण अनेक साम्राज्यों को जीतने में तब सफल हुए जब उन्होंने आर्य कर्तव्य का निर्वहन किया। तब संसार स्वयं को नीतिपरायण ढंग से संचालित करता था। परन्तु संसार दुर्व्यसनों से इसलिए भर गया क्योंकि एक सम्राट ने अपने आर्य कर्तव्य का परित्याग कर दिया! यही सार है! यह वह कथा है जो सम्राटों, ब्राह्मणों और आर्य कर्तव्य

का महिमामण्डन करती है!

बुद्ध आर्य कर्तव्य का बखान करते हुए इस कहानी का वर्णन करते हैं!

अम्बेडकर ने बस यही दर्शाने के लिए इस कहानी को उद्धृत किया कि नीतिपरायणता द्वारा शासन बहुत महान है और संसार उस दशा में दुर्व्यसनों से भर जायेगा जब यह मार्क्स की अधिनायकत्वी अवधारणा का अनुसरण करने लगेगा।

अम्बेडकर हमें यह बताने में बिलकुल नहीं झिझके कि उन सम्राटों ने नीतिपरायणता के द्वारा शासन किया और तलवार के द्वारा शासन नहीं किया जिन्होंने कि चतुरंगिणी सेना के साथ पृथ्वी के सारे भागों में आक्रमण किया था। ब्राह्मणों और आर्य कर्तव्य का गुणगान करने में भी उन्हें झिझक नहीं हुई।

'सर्वहारा के अधिनायकत्व पर कुछ और बातें :

अम्बेडकर की चर्चा अभी भी पूरी नहीं हुई। यह कई रास्तों से होकर गुजरती है। उनकी एक दलील निम्न प्रकार से है :

> "कम्युनिस्ट यह स्वयं स्वीकारते हैं कि सतत अधिनायकत्व के रूप में सत्ता का उनका सिद्धान्त, उनके राजनीतिक दर्शन में एक कमजोर कड़ी है। ... अल्प अवधि के लिए, अधिनायकत्व श्रेयस्कर हो सकता है और यहां तक कि जनवाद को सुरक्षित बनाने के लिए भी स्वागतयोग्य बात हो सकती है। अधिनायकत्व को स्वयं को उसके बाद क्यों न समेट लेना चाहिए जबकि इसने अपना कार्य संपन्न कर लिया हो, जबकि इसने जनवाद के रास्ते से सारे अवरोधों एवं रोड़ों को हटा दिया हो और जनवाद के रास्ते को सुरक्षित बना दिया हो" (पृ.459)।

> "... सतत अधिनायकत्व के लिए कोई दलील नहीं। सतत अधिनायकत्व ने आध्यात्मिक मूल्यों की तरफ कोई ध्यान नहीं दिया है और न ही ऐसा करने की कोई मंशा जाहिर होती है" (पृ.461-62)।

'कम्युनिस्ट स्वीकारते हैं कि उनके सिद्धान्त में सतत अधिनायकत्व एक कमजोरी है'अम्बेडकर कहते हैं! मतलब यह है कि अम्बेडकर को पता नहीं है कि सर्वहारा अधिनायकत्व सतत नहीं होता है, कि यह अंतरिम होता है और यह कि यह एक 'संक्रमण काल' का प्रतिनिधित्व करता है! इसका यह भी मतलब होता है कि वह मार्क्सवाद की सैद्धान्तिक चर्चा के अखाड़े में बिना यह जाने-बूझे घुस गये कि मार्क्स ने क्या लिखा था। वह उन कम्युनिस्टों का कोई उल्लेख नहीं करते जिन्होंने "अपने राजनीतिक दर्शन में कमजोरी" को स्वीकारा है। यहां पर हमें एक बार फिर आश्चर्यचकित हो जाते हैं।

मार्क्सवाद पर अम्बेडकर की समूची चर्चा उसी तरह की है। उन्होंने कहीं भी मार्क्स के शब्दों का उद्धरण देते हुए इसकी चर्चा नहीं की और न ही इस सम्यक जानकारी के साथ चर्चा की कि मार्क्स ने क्या कहा है। मार्क्सवाद से सम्बन्धित उनका समग्र ज्ञान सुनी-सुनी बातों पर आधारित ज्ञान है।

वह इससे सहमत हो गये कि अल्प अवधि के लिए अधिनायकत्व श्रेयस्कर हो सकता है। उन्होंने कहा कि जनतंत्र को सुरक्षित बनाने के लिए यह आवश्यक है। मार्क्स ने भी यह कहा था कि यह केवल एक संक्रमण काल तक ही होता है और स्थायी रूप से नहीं होता। तो फिर अम्बेडकर को मार्क्स के सिद्धान्त के प्रति घृणा क्यों होनी चाहिए? क्या उनकी दन्तकथाएं और विरचित कहानियां पूर्णतः निरर्थक नहीं हैं?

यहां तक कि, यदि कोई व्यक्ति यह न जानता हो कि मार्क्स ने 'अधिनायकत्व' के बारे में क्या कहा था, तो भी वह इसे यथोचित समझ सकता है बशर्ते कि वह थोड़ा सा भी चिन्तन करे। यहां तक कि उन लोगों ने भी 'वर्ग-विहीन समाज', 'वर्गों का उन्मूलन' और 'साम्यवादी समाज' जैसे शब्दों को सुन रखा होगा जिन्होंने मार्क्सवाद के बारे में, अधकचरे ढंग से ही सही, सुना होगा। यदि वर्ग विभेद मौजूद नहीं हों तो श्रमिक वर्ग का अस्तित्व और उसका अधिनायकत्व हो ही कैसे सकता है? आखिर यह अधिनायकत्व किसके विरुद्ध होगा? साम्यवाद के सिद्धान्त किसके लिए सतत अधिनायकत्व का प्रस्ताव करता है? यदि कोई इतना ही विचार करे, तो वह आसानी से यह समझ सकता है कि सर्वहारा का अधिनायकत्व कोई सतत चलने वाली परिघटना नहीं है अपितु मात्र एक अस्थायी परिघटना है।

परन्तु अम्बेडकर यह छोटी बात नहीं समझ पाये। कोई व्यक्ति बातों को तभी समझ सकता है जब उन्हें समझने का प्रयत्न करे। अम्बेडकर सकारात्मक ढंग से बिलकुल सोचना ही नहीं चाहते। उनकी चाहत यह है कि मार्क्सवाद में कुछ न कुछ दोष ढूंढ लिया जाय, उस स्थिति में भी जबकि उसके लिए कोई आधार ही नहीं होता है। उनकी समस्त ऊर्जा एवं प्रज्ञा इसी निमित्त प्रवृत्त होती है।

मार्क्सवाद के लिए उनकी घृणा इतने से ही खत्म नहीं हुई। यह कई रूपों में प्रदर्शित हुई।

> "वे (कम्युनिस्ट) इस तर्क की शरण लेते हैं कि अन्ततोगत्वा राज्य का विलोप हो जायेगा। दो प्रश्न हैं, जिसका उन्हें उत्तर देना होगा। यह कब नष्ट होगा? जब राज्य का विलोप हो जायेगा, तो कौन सी चीज उसका स्थान लेगी?... कम्युनिस्टों ने कोई उत्तर नहीं दिया है।... क्या इसके स्थान पर अराजकता आयेगी? यदि ऐसा है तो, कम्युनिस्ट राज्य की स्थापना करना एक निरर्थक प्रयास है। यदि यह बल के अलावा किसी और चीज द्वारा कायम न रखा जा सके और यदि यह उस समय अराजकता में परिणत हो जाय जबकि उस बल को हटा लिया जाय जो इसे थामे हुए है, तब कम्युनिस्ट सत्ता का क्या लाभ" (पृ.459-60)।

उनका तर्क इसी तरह चलता है।

यदि कोई वर्गों की अवधारणा और अन्तरविरोधी हितों को समझ ले, तब यह भी स्पष्ट हो जायेगा कि राज्य क्या है और यह क्यों नष्ट होता है। यदि कोई राज्य के विलोप की अवधारणा को नहीं समझा है तो इसका अर्थ यह है कि उसने 'श्रम के शोषण' और 'वर्गों' की अवधारणा को नहीं समझा है।

यदि वह 'शोषण' को जानता है तो वह 'राज्य सत्ता' के बारे में भी जानेगा। राज्य समाज की नैसर्गिक आवश्यकता नहीं है। समाज के प्रारम्भिक चरणों में, एक लम्बे समय तक इसका प्रादुर्भाव नहीं हुआ था। केवल शोषण के प्रारंभ से और दासों और मालिकों के विभेद से यह नयी परिघटना मालिकों के लिए आवश्यक हो गयी। समूची भूमि

पर अपनी सम्पत्ति के रूप में कब्जा करने और दासों से अपने लिए श्रम कराने के लिए, उनको कुछ व्यवस्थाओं और नियमों की आवश्यकता हुई। इसी से राज्य सत्ता का सूत्रपात हुआ। यह दासों के ऊपर मालिकों की सत्ता थी। चूंकि श्रम का शोषण अब भी अस्तित्व में है, अतः वर्तमान राज्य सत्ता भी मालिक वर्ग के हितों के लिए है।

जब तक वर्ग विद्यमान होंगे, तब तक राज्यसत्ता वर्गीय राज्यसत्ता होगी। यदि यह 'जनवाद' का लेबल भी लगा ले, तब भी यह वह सत्ता नहीं हो सकती जो दोनों वर्गों को समता प्रदान करती हो।

ऐसे समाज में, जब शोषणकारी स्वामित्व अधिकारों का उन्मूलन हो जायेगा, जब सभी व्यक्ति श्रम करना आरम्भ कर देंगे और जब विभेद क्रमशः समाप्त हो जायेंगे, तब अन्तरविरोध का लोप हो जायेगा। किसी भी वर्ग का अधिनायकत्व समाप्त हो जायेगा। इसका आशय है कि राज्य सत्ता से सम्बन्धित किसी भी स्वरूप की कोई आवश्यकता नहीं रह जायेगी। यदि शोषण का उन्मूलन होने लगे, तो राज्य का विलोप भी होने लगता है। अब, हम अम्बेडकर के प्रश्नों के उत्तर दे सकते हैं।

1. राज्य का विलोप कब होगा?

उत्तर : जब भी इसकी आवश्यकता का लोप हो जाय! जब भी वर्ग विभेदों का लोप हो जाय! 'यह कब होगा' वर्षों की संख्या पर नहीं निर्भर करता। यह उन परिवर्तनों पर निर्भर करता है जो श्रम सम्बन्धों में घटित होते हैं। मेहनतकश वर्ग को अपनी मुक्ति के लिए नये विचारों को हासिल करना होगा। इसे अपने संघर्ष से असमानता के सम्बन्धों को परिवर्तित करना होगा। जैसे ही ऐसा रूपान्तरण होगा, वैसे ही राज्य का विलोप हो जायेगा।

2. जब राज्य का विलोप हो जायेगा तब इसका स्थान कौन सी चीज लेगी? अराजकता?

उत्तर : उस समय 'बुरे-स्वास्थ्य' के स्थान पर कौन सी चीज आयेगी जब बुरे स्वास्थ्य का लोप हो जायेगा? इसके स्थान पर अच्छा स्वास्थ्य आता है। यहां भी वही स्थिति है।

'क्या जब राज्य विलुप्त हो जायेगा तब अराजकता व्याप्त हो जायेगी?' यह प्रश्न यह मानकर चलता है कि अराजकता कुछ ऐसी चीज है जो बुरी है और राज्य बहुत श्रेष्ठ है! राज्य और अराजकता दोनों 'वर्ग विभेदों' की अवस्था से उत्पन्न होते हैं। जब वर्ग समाप्त होंगे, तो ये दोनों भी समाप्त हो जायेंगे।

जब राज्य की कोई आवश्कता नहीं होगी, तब अराजक स्थिति नहीं होगी। वह स्थिति अराजक नहीं होती है जिसमें आपको हाथ में डंडा लिए कोई पुलिसकर्मी न मिले अथवा जिसमें आपको कोई ऐसा बदमाश न मिले जिसका पेशा ही हिंसा हो। यह एक ऐसी स्थिति होगी जो सुख और शान्ति के वातावरण को प्रदूषित नहीं करती।

मनुष्य के जीवन के लिए उत्पादन और वितरण (विक्रय नहीं) नैसर्गिक आवश्यकताएं हैं। राज्य सत्ता कोई ऐसी आवश्कता नहीं है। यदि इसका अस्तित्व मिट जाता है तो इसका मतलब है कि उस अप्राकृतिक परिघटना का अन्त हो चुका जो समाज के लिए आवश्यक नहीं।

जब राज्य सत्ता का विलोप होता है, तो उस नयी व्यवस्था का प्रादुर्भाव होता है जो वर्गीय सत्ता से भिन्न होती है, जिसका वर्गविहीन चरित्र होता है और जो श्रम सम्बन्धों को संगठित कर सकती है। यह 'राज्य सत्ता' नहीं होती है और जिसका यह अराजकता के समान तो बिलकुल ही नहीं होती। यह 'समाज को संगठित करने' के समान होता है। यह वैसा स्वरूप धारण करेगी जो उस समाज के लिए उपयुक्त होगा।

जब हम वर्गों के लोप की बात करते हैं तो इससे मात्र एक काल्पनिक आदर्श (यूटोपिया) का आभास होता है। लोगों को यह भरोसा नहीं होता कि यह यूटोपिया तर्कपरक है। किसी भी प्रदत्त काल बिन्दु पर जो कुछ भी प्रचलित होता है, वही शाश्वत तथ्य प्रतीत होता है। चूंकि वर्ग विभेद और राज्य सत्ता कई हजार वर्षों से अस्तित्व में बने हुए हैं, अतः ये और भी शाश्वत सत्य प्रतीत होते हैं। परन्तु कोई भी परिघटना मात्र इसलिए शाश्वत नहीं हो सकती है कि यह एक लम्बे अर्से से अस्तित्व में है। केवल वही परिघटनाएं शाश्वत हैं जिनकी अनुपस्थिति मानव जीवन को असम्भव बना देती है। प्रत्येक वह घटना शाश्वत नहीं जो प्रचलित है। राज्य सत्ता का आविर्भाव ही केवल वर्ग शोषण के लिए हुआ है और यह कोई नैसर्गिक आवश्कता नहीं है।

परन्तु अम्बेडकर के अनुसार, पूरा राज्य तन्त्र शाश्वत सत्य है। यह वर्गों से ऊपर है। अर्थात, वर्गों से असम्बद्ध। एक सम्राट सारी प्रजा पर समान रूप से शासन करता है! पूंजीवादी संसदें, उनके लोकतन्त्र और सभी कुछ वर्गों से ऊपर है। यदि राज्य सत्ता अनुपस्थित हो तो अराजकता का साम्राज्य होता है। शान्ति और सुरक्षा उस पुलिसकर्मी की अनुपस्थिति में गड़बड़ाने लगती है जो डंडे का प्रयोग करता है अथवा उस सैनिक की अनुपस्थिति में ह्रासोन्मुख हो जाती है जो अपने रणकौशल का प्रदर्शन करता है। मार्क्सवाद के मार्ग से तो राज्य सत्ता का विलोप होता है और अराजकता पैदा होती है। बौद्ध मार्ग से राज्य सत्ता शाश्वतता के साथ कायम रहती है जहां कोई अराजकता नहीं होगी। अम्बेडकर का यही आशय है।

बौद्ध मार्ग में राज्य सत्ता के स्थायी होने का अर्थ है कि राज्य सत्ता की आवश्यता शाश्वत रूप से बनी रहेगी। इसका मतलब यह है कि मनुष्यों में विभेद, अन्तरविरोध और उत्पीड़न सदैव विद्यमान रहेगा। इसका यह भी मतलब है कि उनके (विभेद, अन्तरविरोध, उत्पीड़न इत्यादि के) बिना मानवीय सम्बन्ध प्रकट नहीं होंगे! ऐसा मार्ग सर्वोत्तम है! अति उत्तम! यह उत्तमता उत्कृष्ट है! यह उत्कृष्टता अद्‌भुत है!

5. अम्बेडकर के अनुसार, साम्यवाद 'सुअरों का दर्शन' ('Pig philosophy') है!

अम्बेडकर बार-बार कहते हैं कि मार्क्स के संघर्ष मार्ग की तुलना में बुद्ध का अष्टाङ्ग मार्ग श्रेष्ठ है। अम्बेडकर कहते हैं कि अष्टाङ्ग मार्ग बिना कोई बल प्रयोग किये मनुष्य को हृदय के अभ्यंतर से रूपांतरित करता है।

वह बौद्ध मार्ग का इस प्रकार वर्णन करते हैं :

> "बुद्ध की प्रणाली भिन्न थी। उनकी प्रणाली मनुष्य के मन को परिवर्तित करने के लिए थी : उसकी प्रवृत्ति को बदलने के लिए: ताकि आदमी जो भी करे, वह इसे बिना बल के प्रयोग अथवा बिना बाध्यता के स्वेच्छया करे। मनुष्यों की प्रवृत्ति को बदलने का उनका मुख्य साधन था उनका धम्म और इस धम्म का सतत प्रचार। बुद्ध का तरीका लोगों को वह करने के लिए बाध्य करना नहीं था जो

वे न करना चाहते हों भले ही यह उनके लिए उत्तम था। उनका तरीका मनुष्यों की प्रवृत्ति को ऐसे बदलना था ताकि वे स्वेच्छया वह करें जो कि वे अन्यथा नहीं कर सकते थे" (पृ.461)।

बहुत ठीक, यह तो अद्‌भुत है; परन्तु, क्या ऐसी कोई घटनाएं हैं जहां कि धनी व्यक्ति बौद्ध मार्ग के साधनों से परिवर्तित हुए हों? क्या ऐसे राजा हुए जिन्होंने धम्म के बौद्ध प्रवचन द्वारा, पुरानी विचारधारा को बदल दिया हो, जिन्होंने सांस्कृतिक परिष्करण विकसित किया हो और अपने साम्राज्यों का 'परित्याग' कर दिया हो? क्या ऐसे व्यापारी थे जिन्होंने अपनी सम्पत्ति में कमी कर ली हो? क्या ऐसे मालिक थे जिन्होंने अपने दासों का परित्याग कर दिया हो? बुद्ध के इतिहास में इस तरह का एक अकेला प्रसंग भी उपलब्ध नहीं है। किसी एक धनी व्यक्ति के भी हृदय में ऐसा परिवर्तन नहीं हुआ।

चूंकि बुद्ध मार्ग किसी को विवश नहीं करता है, अतः धनी व्यक्तियों को भी विवश नहीं करेगा। यह उनके अधिकारों को समाप्त नहीं करेगा। यह उन्हें परेशानी में नहीं डालेगा। कुछ भी बदलना नहीं है : मालिक मालिक बना रहता है! दास दास बना रहता है! दासता और प्रभुत्व यथावत! क्या सत्य के इस तत्व को हमें बताने के लिए बुद्ध की जरूरत है? क्या दास-स्वामी पर्याप्त नहीं?

बौद्ध मार्ग के साधनों द्वारा सामाजिक अवस्थाओं को बदलने का कोई जरिया नहीं है। क्या यह कम से कम कुछेक धनी व्यक्तियों को परिवर्तित करेगा? नहीं, यह नहीं करेगा! इसका अर्थ है कि इस मार्ग में न तो सामाजिक सुधार है न ही व्यक्तिगत सुधार। दोनों असत्य हैं।

मार्क्स के मार्ग में ये दोनों उपस्थित हैं। मार्क्स-सिद्धान्त के अनुसार, किसी व्यक्ति का विचार और व्यवहार वर्गीय स्थितियों पर निर्भर करता है और उनसे अंतर्सम्बन्धित होता है। 'समता' की दिशा में परिवर्तनों का आरम्भ 'नये विचारों' का आरंभ होता है। वर्गों के एकीकरण की प्रक्रिया व्यक्तियों के पुराने विचारों और समाज में व्याप्त पुरानी अवस्थाओं को भी परिवर्तित करती है। इसका अर्थ है कि मार्क्स के मार्ग द्वारा समाज में, और साथ ही साथ, व्यक्ति में, परिवर्तन होते हैं।

कुछेक व्यक्तियों को परिवर्तित करने वाला वैयक्तिक सुधार वर्ग सुधार नहीं लायेगा। पूरे समाज को बदल देने वाले वर्गीय सुधार से व्यक्ति भी बदलेगा। बुद्ध के मार्ग और मार्क्स के मार्ग में यही अन्तर है!

अम्बेडकर को इस सब के बारे में कोई परवाह नहीं है। चूंकि बुद्ध के मार्ग में 'अधिनायकत्व' शब्द नहीं है, अतः अम्बेडकर बारम्बार इसे सर्वश्रेष्ठ बताते हैं!

ठीक है, पर क्या बौद्ध मार्ग अस्पृश्यता के मामले में प्रभावी नहीं होगा?

अम्बेडकर ने बुद्ध की पद्धति का कुछ इस रूप में महिमामण्डन किया है जो कि आदमी के मन को परिवर्तित कर देती है और उसकी प्रवृत्ति को बदल देती है, किया नहीं है?

वह यह भी कहते हैं कि अगर हम मनुष्यों को बिना बाध्यता उपस्थित किये केवल बता भर दें, तो वे परिवर्तित होते हैं और इसलिए इस कारण से बुद्ध का मार्ग सर्वश्रेष्ठ है। परन्तु पाठकों को तब किस प्रकार प्रतिक्रिया व्यक्त करनी चाहिए जब वे यह जान लें कि अम्बेडकर ने, कहीं और, व्यक्तियों को सुधारने के मार्ग का कड़ाई से विरोध किया था और यह भी कहा था कि ऐसा सुधार वर्ग का भला नहीं करेगा? इसके अलावा गांधी ने, अस्पृश्यता की समस्या पर बहस करते समय, हिन्दुओं के विरुद्ध बल प्रयोग करने के बजाय शान्तिपूर्ण पद्धतियों पर विचार करने का सुझाव दिया था, दिया था कि नहीं? तब अम्बेडकर ने गांधी के सुझाव को अस्वीकार क्यों कर दिया?

उस समय गांधी के विरुद्ध अम्बेडकर की दलील इस प्रकार थीः

"मैं आश्वस्त हूं कि, हिन्दू जाति के अज्ञानी जनसमूह में विवेकशील विचारों की मौन घुसपैठ, दलित वर्गों की मुक्ति के लिए कारगर नहीं हो सकती। सभी मनुष्यों की तरह, सवर्ण हिन्दू जाति दलित वर्गों के प्रति अस्पृश्यता का पालन करने में सबसे पहले अपने प्रथागत आचरण का अनुसरण करे। साधरणतया, लोग अपने व्यवहार की प्रथागत रीति को इसलिए नहीं छोड़ते कि कुछ लोग इसके विरुद्ध प्रचार कर रहे हैं। दलित वर्गों की मुक्ति तभी हो सकती है जब सवर्ण हिन्दू जाति को सोचने पर विवश किया जाय और बलात महसूस कराया जाय कि उसे अपने रास्ते अवश्य बदलने चाहिए।... न्यूनतम प्रतिरोध की नीति और विवेकशील विचारों की मौन घुसपैठ में भारी दोष इस बात में निहित है कि वे 'विवश' नहीं करते हैं क्योंकि वे संकट नहीं उत्पन्न करते" (खंड 5, पृ. 368-69)।

और आगे अम्बेडकर की वह दलील देखें जिसे उन्होंने ठक्कर को लिखे अपने पत्र में प्रस्तुत किया था :

"मेरे विचार में, इस समस्या तक पहुंचने की एक दूसरी विधि भी है। यह इस परिकल्पना से आरंभ होती है कि व्यक्ति का भाग्य उसके उस परिवेश और उन परिस्थितियों से नियंत्रित होता है जिसमें वह रहने को बाध्य है, और यदि कोई व्यक्ति अभाव और दुखों से ग्रसित है तो ऐसा इसलिए है क्योंकि उसका परिवेश अनुकूल नहीं है। मुझे कोई शंका नहीं है कि दोनों दृष्टिकोणों में बाद वाला अधिक ठीक है, पहला कुछ इक्का-दुक्का व्यक्तियों को उस वर्ग के स्तर तक ऊपर उठा सकता है जिससे वे सम्बन्धित होते हैं। यह वर्ग को सम्पूर्ण रूप से नहीं उठा सकता। अस्पृश्यता विरोधी लीग के लक्ष्य का मेरा दृष्टिकोण यह है कि इसका आविर्भाव कुछ मनचाहे व्यक्तियों अथवा दलित वर्गों के कुछ चयनित लड़कों को मदद करने के लिए नहीं हुआ है बल्कि सम्पूर्ण वर्ग को उच्चतर स्तर तक उठाने के लिए हुआ है। परिणामतः, मैं नहीं चाहूंगा कि लीग उस कार्यक्रम पर अपनी ऊर्जा का अपव्यय करे जो निज के गुणों का उत्थान करे। मैं चाहूँगा कि बोर्ड अपनी समस्त ऊर्जा को उस कार्यक्रम पर एकाग्र करे जो दलित वर्गों के सामाजिक परिवेश में परिवर्तन पैदा करेगा"(खंड 9, पृ. 134-35)।

उन्होंने तब यह तर्क दिया था कि हमें मनुष्यों को परिवर्तन के लिए विवश करना होगा और यह कि विवेकशील विचारों का उपदेश देना किसी उपयोग का नहीं है? फिर उनका यह तर्क सिर के बल उल्टा कैसे हो गया? उन्होंने कहा था कि विवेकशील विचारों से परिवर्तन नहीं उत्पन्न होता है। ठीक, फिर बुद्ध के धर्मोपदेश से क्या घटित होता है? क्या उनके विचार बदल नहीं गये?

इतना ही नहीं, यहां पर अम्बेडकर यह दलील पेश कर रहे हैं कि वैयक्तिक सुधार वर्ग को सम्पूर्ण रूप से नहीं उठायेगा, कि हमें वर्ग की

सामाजिक दशाओं को बदलना होगा और यह कि उस कार्यक्रम का कोई उपयोग नहीं जो व्यक्तिगत सद्गुण के स्तर को उठाता है।

गांधी सरीखे हिन्दू सुधारक, अछूतों में व्याप्त गरीबी की समस्या पर ध्यान दिये बिना ही, अपना ध्यान उन व्यक्तिगत दुर्व्यसनों को बदलने पर केन्द्रित करते हैं जो अछूतों में आम होते हैं और इस प्रकार के नारों का प्रयोग करते हैं जैसे, ' ताड़ी पीना बन्द करो' ... इत्यादि। इस तरह के सुधारों का विरोध करने के लिए, अम्बेडकर तर्क देते हैं कि हमें वर्गीय दशाओं को बदलना है और व्यक्तिगत सद्गुण वर्ग को नहीं उठाते हैं। यह तर्क ऐसे सुधारों का विरोध करने के लिए उपयुक्त है।

लेकिन मार्क्स ने भी तो सामाजिक दशाओं को ही बदलने की बात की थी, या नहीं की थी? फिर अम्बेडकर ने उनका विरोध क्यों किया?

कांग्रेस का विरोध करते समय व्यक्तिगत गुणों की अपेक्षा सामाजिक परिवेश को बदलना अधिक महत्वपूर्ण हो गया था।! जबकि मार्क्स का विरोध करते समय, वैयक्तिक सुधार अधिक महत्वपूर्ण हो गया ताकि व्यक्तिगत गुणों को उठाया जा सके!

यदि हम इस नतीजे पर पहुंचना चाहें कि अम्बेडकर ने अपनी उस गलती को महसूस कर लिया जो उन्होंने पहले किसी अवसर पर और इसलिए उन्होंने अब दूसरे अवसर पर अलग बात कही है, तो हम कहीं पर ऐसा स्पष्टीकरण अथवा व्याख्या नहीं पाते हैं।

क्या अम्बेडकर गलत बोलते हैं? ना, यह असंभव है! वह जो कुछ भी कहते हैं, उचित होता है! वह जो भी चाहते थे, उसे उन्होंने बोला और जब-जब चाहा, तब-तब बोला! वह सही हैं, चाहे जो भी वह कहते हों!

यहां पर हम उस बात को जरा याद करें जो अम्बेडकर ने रोम के गुलामों के बारे में पहले कही थी। क्या अम्बेडकर की तब भी वही दृष्टि थीकि वैयक्तिक सुधार कुछ व्यक्तियों के स्तर को उठा सकता है परन्तु सम्पूर्ण वर्ग को नहीं उठाता हैजब उन्होंने रोम के गुलामों की दशा की चर्चा की थी? वह ऐसा वर्णन कैसे कर सके कि रोम के गुलाम शिक्षा, कला और व्यवसाय के साथ आराम और आनन्द में रहते थे? वहां पर उन्होंने प्रश्न क्यों नहीं उठाया कि, 'क्या चन्द एक की दशा सभी गुलामों की दशा मानी जा सकती?' वहां पर उन्होंने ऐसी बात इसलिए कही क्योंकि वह यह बताना चाहते थे कि अछूतों की अपेक्षा गुलाम अधिक आराम से रहते थे। चूंकि वह गांधी का विरोध करना चाहते थे इसलिए उन्होंने ठक्कर को सम्बोधित अपने पत्र में कहा कि 'वैयक्तिक सुधार पर्याप्त नहीं है'। जबकि मार्क्स का विरोध करते समय, वह यहां पर उद्घोष कर रहे हैं कि वही मार्ग श्रेष्ठ है जो व्यक्तिगत गुणों के स्तर को उठाता है। हम इस सबको क्या कहें? क्या हम इसे 'ईमानदार चर्चा' कह सकते हैं?

अम्बेडकर का कम्युनिस्टों को सुझाव :

एक ओर अम्बेडकर ने कहा कि कम्युनिस्ट राज्य का निर्माण निरर्थक है, दूसरी ओर उसी रौ में उन्होंने कम्युनिस्टों को कई सुझाव भी दे डाले कि राज्यसत्ता के बारे में उन्हें कैसी सावधानियां बरतनी चाहिए। उनके अनुसार वे बल प्रयोग के साधनों द्वारा सत्ता को कुछ अवधि के लिए बनाये रख सकते हैं परन्तु उन्हें इसे समाप्त करना पड़ेगा और कोई धर्म अपनाना पड़ेगा!

> "बल हटा लेने के बाद अगर कोई चीज इसे संभाल सकती है, तो वह है धर्म" (पृ.460)।

अम्बेडकर की दलील आगे बढ़ती है :

> "कम्युनिस्ट धर्म से घृणा करते हैं। वे उन धर्मों से घृणा करते हैं जो देवताओं और परलोक की बात करते हैं। बुद्धवाद उस तरह का धर्म नहीं है। इसमें कोई भी अंधविश्वासी धारणाएं नहीं होती हैं। यह उत्तम आचरण की शिक्षा देता है। यह खून, चोरी, वेश्यावृत्ति, झूठ, मादक द्रव्यों आदि का निषेध करता है। यह लिप्सा, लोभ, बुरी भावना, आलस्य एवं सुस्ती, विकर्षण और उत्तेजना तथा संशय को दूर करने का मार्ग दर्शाता है। जो गृहस्थ विधि-सम्मत तरीके से सम्पत्ति अर्जित करता है, केवल वही सुखी नहीं रहेगा बल्कि अपने बीवी-बच्चों और नौकरों को भी सुखी रखेगा और इसलिए बुद्धवाद उस सम्पत्ति के उपार्जन का उपदेश देता है जो विधि सम्मत हो। इसलिए हमें बुद्धवाद को अन्य धर्मों जैसा नहीं समझना चाहिये। बल हटा लेने के बाद साम्यवाद को संभाले रखने के लिए बौद्ध ध र्म सर्वोपरि सहायक होगा" (पृ.460-61)।

यह किस तरह की दलील है? इसका अर्थ है कि चोरी, वेश्यावृत्ति, खून और सभी तरह के अपराध साम्यवादी समाज में तब तक बने रहते हैं जब तक कि वह बुद्धवाद न अपनाये! तब यदि साम्यवादी समाज बुद्धवाद का पालन करे तो सभी लोग सज्जन हो जायेंगे और उन सभी दुर्गुणों का लोप हो जायेगा! और तब भी मालिक विधिसम्मत तरीके से सम्पत्ति अर्जित करेंगे और अपने नौकरों और मजदूरों के साथ सुखपूर्वक रहेंगे! उस स्थिति में साम्यवाद कैसे हो सकता है जबकि ये सारे सम्बन्ध शाश्वत रहें? क्या साम्यवाद को केवल इन सम्बन्धों (मालिक और नौकर इत्यादि) को कायम रखने के लिए बुद्धवाद का सहारा लेना होगा?

बुद्ध की बात अलग है परन्तु अम्बेडकर पर तरस आता है। कोई भी ऐसा संदर्भ उठा लें जिसमें उन्होंने मार्क्सवाद की बात की हो हम उन्हें कहीं भी इसके बारे में जानकारी के साथ बात करते हुए नहीं देखते।

यदि सिद्धान्त साम्यवादी समाज का सूत्रपात कर सकता है और इसे जीवित रख सकता है, तो इस सिद्धान्त में ऐसी प्रणाली भी शामिल होगी जो समाज को आगे ले जायेगी। जरूरत बस यह है कि उस सिद्धान्त को सही ढंग से लागू किया जाये। इसे किसी 'धर्म' के सहारे की आवश्यकता नहीं होगी।

बहरहाल, जरा अम्बेडकर की दृष्टि से देखा जाय। वह कह रहे हैं कि मार्क्सवाद के साधनों द्वारा समाज को बदलने के बाद, हमें बुद्धवाद का अनुसरण करना है? इसका अर्थ है कि मार्क्सवाद प्रथम आवश्यकता है। उसके बाद ही हमें बुद्धवाद की आवश्यकता होती है। क्या अम्बेडकर ने दलितों को मार्क्सवाद का अध्ययन करने की राय दी थी, इससे पहले कि वह कम्युनिस्टों को बुद्धवाद का अनुसरण करने की सलाह देते? ऐसा कोई भी प्रसंग विद्यमान नहीं है। ऐसा एक भी संदर्भ नहीं है जिसमें उन्होंने मार्क्सवाद के बारे में एक भी शुभ शब्द कहा हो। अपितु ऐसे अनेक अवसर हैं जहां पर उन्होंने मार्क्सवाद का

विरोध किया।

मार्क्सवाद के प्रति अम्बेडकर का विरोध उस अवस्था में पहुंच गया कि उन्होंने मार्क्सवाद का ऐसे दर्शन के रूप में वर्णन किया जो मनुष्यों को सुअर बना देता है! चूंकि मार्क्सवाद कोई धर्म नहीं मानता इसलिए अम्बेडकर की आलोचना इन शब्दों में सामने आती है :

> "कार्लाइल ने राजनीतिक अर्थशास्त्र को सुअर दर्शन कहा था। कार्लाइल बेशक गलत था। क्योंकि इन्सान को भौतिक सुखों की आवश्यकता होती है। परन्तु साम्यवादी दर्शन भी समान रूप से गलत प्रतीत होता है क्योंकि उनके दर्शन का लक्ष्य सुअरों को हट्टा-कट्टा बनाना प्रतीत होता है मानो इन्सान सुअरों से जरा भी बेहतर नहीं हैं। इन्सान को भौतिकता के साथ-साथ आध्यात्मिक रूप से भी विकसित होना चाहिये" (पृ. 462)।

अम्बेडकर की दृष्टि का सार यह है : मनुष्यों को भौतिक आवश्यकताओं की आवश्यकता होती है; परन्तु उन्हें आध्यात्मिक रूप से भी विकसित होना चाहिये। जबकि सुअरों के लिए, यह पर्याप्त है कि उन्हें भोजन मिलता रहे। उन्हें आध्यात्मिकता की आवश्यकता नहीं होती है। यह सोचना कि मनुष्यों को केवल भौतिक सुखों (जैसे भोजन आदि) की आश्यकता होती है, मनुष्यों को जानवरों के समान मानना है। साम्यवाद नहीं कहता है कि इन्सानों को आध्यात्मिकता की आवश्यकता होती है। अतः यह वह दर्शन है जो सुअरों के लिए उपयोगी है न कि मनुष्यों के लिए। यह अम्बेडकर की आलोचना है!

परन्तु 'आध्यात्मिक रूप से विकसित होने' का अर्थ क्या है? बौद्ध सन्यासी जैसा होना। यदि कोई व्यक्ति अपना सिर मुड़वा लेता है, केसरिया कपड़े पहनता है, गांवों में गृहस्थों पर धावा बोलता है और प्रीतिभोजों का मजा लूटता है, उपहार एकत्र करता है, प्रतिदिन कुछ समय के लिए पालथी मार कर बैठता है, एक नथुने से श्वास खींचकर दूसरे से छोड़ने में महारत हासिल कर लेता हैतो यही आध्यात्मिक रूप से विकसित होने का अर्थ है! चूंकि साम्यवाद में इन सनक भरी बातों के लिए कोई स्थान नहीं है, अतः यह एक सुअर दर्शन है!

सुअरों जैसा जीवन व्यतीत करना तब कितना सुखद है जब हम धार्मिक कट्टरता के भय से मुक्त हों?

ऐसे धर्मोपदेशक से, जिसने कि साम्यवाद को इतनी खूबसूरती से समझा हो, दलित केवल चन्द सरकसी करतब सीखेंगे जो उन्हें नाकों से प्रयोग करने में समर्थ बनायेंगे!

इस ढंग से, अम्बेडकर अपने निबन्ध 'बुद्ध या कार्ल मार्क्स?' में बार-बार कहते रहे कि मार्क्सवाद निरर्थक है। परन्तु अन्तिम पैराग्राफ में उन्होंने साम्यवाद के प्रति कुछ 'दया' दिखा दी!

> "यह दावा किया गया है कि रूस में साम्यवादी अधिनायकत्व ने अद्‌भुत उपलब्धियां प्राप्त की हैं। इसे नकारा नहीं जा सकता। यही कारण है जिससे मैं कहता हूं कि रूस जैसा अधिनायकत्व सभी पिछड़े देशों के लिए अच्छा होगा" (पृ.461)।

"यह दावा किया गया है", ऐसा अम्बेडकर का कहना है जिसे वह "रूस में साम्यवादी अधिनायकत्व" के सन्दर्भ में कहते हैं। इसका अर्थ यह होता है कि उन्होंने इसके बारे में केवल सुना है और उन्हें इस बात की जानकारी नहीं है कि किस हद तक यह सत्य था अथवा असत्य था। उस सिद्धान्त को जानने का कोई प्रयास नहीं किया गया है। एक स्थान पर वह इसे 'सुअर दर्शन' कहते हैं और दूसरे स्थान पर वह कहते हैं कि 'इसके नाम अद्‌भुत उपलब्धियां हैं और यह सभी पिछड़े देशों के लिए अच्छा है'! छिद्रान्वेषण और प्रशंसा दोनों ही बिना इसके बारे में जाने! चूंकि रूस एक ऐसे देश के रूप में उभरा जो मेहनतकश वर्ग के लोगों के लिए प्रयास कर रहा था और चूंकि यह शोभनीय नहीं होता यदि इतनी भी सराहना न की जाती, अतः अम्बेडकर ने इस सराहना का आश्रय लिया!

परन्तु यह सराहना भी अधिक समय तक नहीं टिकी? उन्होंने साम्यवाद की अल्पतम प्रशंसा के तोड़ के तौर पर यह निष्कर्ष निकाला कि समता के अतिरिक्त साम्यवाद का कोई अन्य गुण नहीं है। यहां पर अम्बेडकर की दलील इस ढंग से चलती है :

> "समाज एक नया आधार स्थापित करने का लक्ष्य करता आ रहा है, फ्रांसीसी क्रान्ति ने इसे तीन शब्दों, भाईचारा, स्वतन्त्रता और समता में सूत्रबद्ध कर दिया। फ्रांसीसी क्रान्ति का स्वागत ही इस नारे के कारण हुआ। लेकिन समता उत्पन्न करने में यह विफल हो गयी। हम रूसी क्रान्ति का स्वागत इसलिए करते हैं क्योंकि यह समता उत्पन्न करने का लक्ष्य रखती है। परन्तु इस बात पर अधिक बल नहीं दिया जा सकता कि समाज, समता उत्पन्न करने में, भाईचारा अथवा स्वतन्त्रता का त्याग नहीं कर सकता है। भाईचारा अथवा स्वतन्त्रता के बिना, समता का कोई महत्व नहीं होगा। ऐसा प्रतीत होता है कि तीनों तभी एक साथ विद्यमान रह सकते हैं जब कोई बुद्ध के मार्ग का अनुसरण करे। साम्यवाद एक ही दे सकता है परन्तु सब नहीं।" (पृ.462)

इस प्रकार **'बुद्ध या कार्ल मार्क्स?'** निबन्ध का समापन हुआ। हमें इस निबन्ध के अन्त में प्रस्तुत टिप्पणियों के सत्य-असत्य की अभी जांच करनी है।

समता क्या है? अम्बेडकर कह रहे हैं कि बौद्ध मार्ग में सभी अच्छे गुण हैं जबकि मार्क्सवाद में केवल एक गुण है। परन्तु यदि कोई सिद्धान्त समता प्रदान करने में वास्तव में समर्थ है तो यह दूसरे गुणों को भी प्रदान करने में वैसा ही समर्थ होगा। क्योंकि, समता सभी शुभ परिवर्तनों का आधार होती है। सभी अन्य गुण केवल इसी आधार पर विकसित होते हैं। यह परीक्षण करने के लिए कि यह सत्य है या नहीं, हमें कुछ उदाहरणों पर विचार करना होगा।

अम्बेडकर के अनुसार, समता का तात्पर्य है सभी लोगों द्वारा श्रम करना और किसी स्वामी/मालिक की अनुपस्थिति।

समता विद्यमान होती है, 'स्वतन्त्रता' इस समता में समुचित ढंग से रूपान्तरित होती है। यह इस प्रकार घटित होता है : समता के आविर्भाव से पूर्व जो कोई भी सम्पत्ति अर्जित करता है, वह मालिक हो सकता था। परन्तु यदि किसी व्यक्ति को मालिक होने की स्वतन्त्रता हो, तो बहुत से मनुष्यों को दासता की जंजीरों में बंधना पड़ेगा। ऐसी दशाओं में जो स्वतन्त्रता हमें वहां पर दृष्टिगत होती है, वह मेहनतकशों की नहीं होती बल्कि मालिकों की होती है। चूंकि 'समता' अनुपस्थित होती है, अतः स्वतन्त्रता भी उन्हीं अवस्थाओं के अनुरूप एकपक्षीय होगी। परन्तु यदि हम समस्त जनसमुदाय के बीच समता की कल्पना करें, तब किसी

भी व्यक्ति को मालिक होने की स्वतन्त्रता नहीं रहेगी। तात्पर्य यह कि, प्रत्येक व्यक्ति को एक ऐसा जीवन बिताने की स्वतन्त्रता होगी जो दासता से मुक्त होगा। दूसरे शब्दों में, पुरातन कालीन स्वतन्त्रता अब समता के अनुरूप ढलने लगती है। जहां एक तरफ, समता की अनुपस्थिति में, केवल कुछ व्यक्तियों को ही स्वतन्त्रता प्राप्त होती है, वहीं पर जब समता विद्यमान हो तब सभी लोगों को स्वतन्त्रता प्राप्त होगी।

इसी प्रकार, यदि हम भाईचारा के विषय पर विचार करें, तो यह भ्रातृत्व (brotherhood) और बहनापा (sisterhood) है। यह लोगों का मिलजुल कर रहन-सहन एवं सुखों तथा कठिनाइयों में बराबर की सहभागिता है। यह भी उसी समता के अनुरूप निरूपित होती है, चाहे जहां कहीं भी यह विद्यमान हो। जब 'मालिक-मजदूर सम्बन्ध' विद्यमान होते हैं (और इसके लिए किसी भी ऐसे सम्बन्ध को देखा जा सकता है जिसमें प्रभुत्व और दासता जैसी परस्पर विरोधी अभिलाक्षणिकताएं विद्यमान हों तब मालिक मजदूरों की कठिनाइयों अथवा सुखों की कोई परवाह नहीं करता है। परन्तु जब सभी लोग श्रम करेंगे तब सभी लोगों की कठिनाइयां एवं सुख एक जैसे होंगे। सभी व्यक्ति एक-दूसरे से सहयोग करेंगे।

अम्बेडकर कहते हैं कि मार्क्स का रास्ता केवल समता प्रदान करता है और दूसरे अच्छे गुणों (स्वतन्त्रता और भाईचारा) को नहीं देता है; क्या वह ऐसा नहीं कह रहे हैं? तीनों गुणोंस्वतन्त्रता, समता और भाईचारामें से समता बुनियादी मुद्दा है। यदि समता न हो तो अन्य गुण भी नहीं होंगे। अम्बेडकर यह भी स्वीकार करते हैं मार्क्स का मार्ग समता प्रदान करता है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि यह मार्ग अन्य अच्छे गुण भी देता है। बुद्ध का मार्ग 'मालिक-मजदूर सम्बन्धों' को समाप्त नहीं करता। अतः यह समता नहीं प्रदान करता है। ऐसा मार्ग अन्य अच्छे गुणों को नहीं प्रदान करेगा।

फिर, निष्कर्ष क्या निकला? अकेला मार्क्स का मार्ग ही सभी गुण प्रदान करेगा। बौद्ध मार्ग एक भी गुण नहीं प्रदान करता है। यही इसका निचोड़ हैजो अम्बेडकर ने कहा उसके ठीक विपरीत!

●

बुद्ध और मार्क्स की तुलना के प्रसंग केवल खंड 3 में ही नहीं हैं बल्कि खंड 11 में भी यत्र-तत्र मिलते हैं।

अम्बेडकर ने कुछ प्रश्न उठाये, 'क्या बुद्ध ने स्वतन्त्रता का पाठ पढ़ाया? क्या बुद्ध ने समता का पाठ पढ़ाया? ... क्या बुद्ध कार्ल मार्क्स का जवाब दे सकते हैं?' और यह निष्कर्ष निकाला कि बौद्ध मार्ग सर्वोत्तम है। (खंड11, पृ.226)

यह सारी विभ्रांति हुई ही नहीं होती, अगर अम्बेडकर इतनी तरह के प्रश्नों को उठाना बन्द कर देते और स्वयं को केवल एक प्रश्न पर केन्द्रित करते कि 'समता क्या है'? और इसका उत्तर ढूंढ़ते!

●

ऐसा कोई भी 'शार्ट कट' नहीं बचा है जिसका अम्बेडकर ने, मार्क्स के मार्ग को नीचा दिखाने और बुद्ध के मार्ग को महिमामंडित करने के लिए आश्रय न लिया हो।

वह कहते हैं कि बुद्ध का मार्ग 'किसी से उधार लिया हुआ नहीं है, फिर भी इतना सत्य है' (खंड 11, पृ.317)। इससे यह प्रदर्शित होता है कि मार्क्स का सिद्धान्त उस तरह का नहीं है! इसका अर्थ यह होता है कि यदि किसी देश के पास अच्छे गुण हों तो दूसरे देशों को इसे नहीं सीखना चाहिये! उसी व्यक्ति ने यह प्रशंसा क्यों की कि चीन, बर्मा, तिब्बत, थाईलैण्ड और इंडोनेशिया ने भारत से बुद्धवाद प्राप्त किया था और यह कई सुदूर देशों में फैला? क्या वे देश भारत से 'उधार' ले सकते हैं? अम्बेडकर के अनुसार, सभी देशों को बौद्धधर्म अपनाना चाहिए परन्तु किसी भी देश को मार्क्स का सिद्धान्त नहीं अपनाना चाहिये। यही अम्बेडकर के सांस्कृतिक परिष्करण का स्तर है! यही 'आध्यात्मिक रूप से विकसित होने' का तात्पर्य है!

जब उनका यह पक्का विश्वास था कि बुद्धवाद स्वतन्त्रता और समता प्रदान करता है, तब अम्बेडकर ने दलितों को आरक्षण जैसे सभी साधनों को त्यागने और केवल अष्टाङ्ग मार्ग का अनुसरण करने की सलाह क्यों नहीं दी? क्या यह प्रश्न किसी उत्तर की अपेक्षा नहीं रखता?

●

अम्बेडकर, जगह-जगह पर, यह वर्णन करते हैं कि धनी और गरीब का जीवन एक-दूसरे के कितने विपरीत हैं :

> "व्यावहारिक रूप से बात करें तो, एक वर्गीय संरचना में, एक ओर निरंकुशता, अहम्मन्यता, गर्व, अक्खड़पन, लालच, स्वार्थपरता है और दूसरी ओर, असुरक्षा, गरीबी, अवनति, स्वतन्त्रता की हानि, आत्मनिर्भरता, स्वाधीनता, गौरव और आत्मसम्मान है" (पृ.285)।

परन्तु वह इन दो परस्पर विरोधी वर्गों को एक ही प्रवचन देते हैं! अष्टाङ्ग मार्ग! उनके मस्तिष्क में यह प्रश्न ही नहीं उभरता कि 'धनी वर्ग उसी मार्ग का अनुसरण क्यों करेगा जिसका गरीब वर्ग अनुसरण करता है?'

> "जाति व्यवस्था, जो कि नैसर्गिकता से परे है, शासक वर्गों द्वारा दास-वर्गों के ऊपर वस्तुतः थोपी हुई है" (खंड 9, पृ.289)।

शासक वर्ग और दास वर्ग, दोनों, विद्यमान हैं! परन्तु दोनों वर्गों के लिए मार्ग एक ही है! अष्टाङ्ग मार्ग! यह वह वर्ग संघर्ष नहीं है जिसे शासक वर्ग का तख्ता पलट देने के लिए दास वर्ग को छेड़ना होगा। इसे अम्बेडकर नहीं चाहते!

क्या बुद्ध और मार्क्स की तुलना करने के लिए हमें सैकड़ों पृष्ठों का परीक्षण करने की आवश्यकता है? कोई भी एक पृष्ठ पर्याप्त है! बुद्ध सम्पत्तिशाली वर्ग के अनुकूल थे! मार्क्स इसके पूर्णतः विरुद्ध हैं! बुद्ध के अनुसार, अमीरी और गरीबी, प्रकाश और अंधकार की भांति नैसर्गिक घटनाएं हैं। मार्क्स के अनुसार वे ऐसे अन्तरविरोध हैं जो श्रम के शोषण से उत्पन्न होते हैं। बुद्ध की तमाम बातों का सार यथास्थितिवाद है! मार्क्स जो कुछ कहते हैं उसका आशय है, वह 'क्रान्ति'! संपूर्ण परिवर्तन! दोनों में तुलना ही कहां है? क्या यह अत्यन्त आश्चर्यजनक बात नहीं है कि कोई दलितजो कि 'दलितों के उत्थान' को ही अपना उद्देश्य मानने का दावा करता हैउस सिद्धान्त के प्रति ऐसी निरर्थक घृणा का प्रदर्शन करता है जो मेहनतकश वर्ग की मुक्ति की व्याख्या करता है?

इस नेता ने तब दलितों का क्या भला कर दिया जब उन्होंने, मार्क्सवाद की दिशा में बिना कोई सकारात्मक रुख बनाये, अष्टाङ्ग मार्ग, मुण्डन और दान के नाम पर भीख मांगने वाली शर्मनाक काहिल जिन्दगी अपनाने की अनुशंसा की? उन्होंने उन लोगों को, एक अनुचित

मार्ग के अलावा, कौन सा मार्ग दिखा दिया जो कि यह विश्वास रखते थे कि वह उन्हें मुक्ति का मार्ग दिखायेंगे?

●

> "भारत में सामाजिक सुधार के हिमायती कम हैं और आलोचक अधिक। आलोचक दो भिन्न वर्गों में हैं। एक वर्ग राजनीतिक सुधारकों का है और दूसरा समाजवादियों का" (खंड1, पृ.38)।

'समाजवादी', 'साम्यवादी' अथवा 'मार्क्सवादी', हमें इन शब्दों को एक ही अर्थ में लेना है। अम्बेडकर ने इन तीनों शब्दों का एक ही अर्थ में प्रयोग किया है।

सामाजिक सुधार किसी भी समस्या से सम्बन्ध रख सकते हैं। परन्तु अम्बेडकर यहां पर केवल 'जातियों के उन्मूलन' के बारे में ही बात कर रहे हैं। समाजवादी पूर्णतः इसके पक्ष में हैं न कि इसके विरोध में। फिर अम्बेडकर यह क्यों कहते हैं कि समाजवादी समाजसुधार के विरुद्ध हैं? क्योंकि, समाजवादी यह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि जातियों का पूर्ण विलोप तब तक सम्भव नहीं है जब तक कि 'बुनियाद' अथवा 'आधार' नहीं बदलता है।

अम्बेडकर समाजवादियों की 'समाज' की अवधारणा को पसन्द नहीं करते हैं। समाजवादी कहते हैं कि 'श्रम सम्बन्ध' समाज की बुनियाद हैं। वे तर्क प्रस्तुत करते हैं कि बुनियाद शोषण पर आधारित होती है और बिना इसे झकझोरे, उन समस्याओं को पूर्णरूपेण हल कर पाना सम्भव नहीं है जो इससे उत्पन्न होती हैं। परन्तु वे यह नहीं कहते कि सामाजिक सुधार अनावश्यक हैं और इनका कार्यान्वयन नहीं होना चाहिए। जहां भी सम्भव हो और जिस हद तक सम्भव हो, संघर्षों को या तो सुधारों के रूप में अथवा अस्थायी विद्रोहों के रूप में चलते रहना चाहिये। लेकिन, इन संघर्षों को उन संघर्षों के साथ जोड़ा जाना चाहिये जो वर्गों के उन्मूलन के लिए प्रयत्नशील हैं। श्रमिक वर्ग को क्रमशः वर्ग-चेतना ग्रहण करनी चाहिये। यही समाजवादी कहते हैं।

अम्बेडकर यह सब नहीं चाहते। उनके अनुसार, पहले जाति का उन्मूलन होना चाहिये। यानी, चारों ओर, अन्तर्जातीय विवाह बड़े पैमाने पर होना चाहिये। ऐसा होने के पश्चात ही, हमें बाकी परिवर्तनों के बारे में विचार करना होगा। परन्तु समाजवादी अन्तर्जातीय विवाहों के कार्यक्रम को प्राथमिक कार्यक्रम के रूप में नहीं लेते हैं। अतः, अम्बेडकर की दृष्टि में, समाजवादी भी जाति के उन्मूलन के विरुद्ध हैं। समाजवादियों के विरुद्ध यह सारी आलोचना, *'जाति का खात्मा'* निबन्ध से है (खंड 1)। अम्बेडकर ने समाजवादियों द्वारा की गयी आलोचना का कोई एक बिन्दु भी नहीं प्रदर्शित किया।

'जातियों' के प्रश्न पर भी अम्बेडकर के विचार ठीक वैसे ही असंगत हैं जैसे कि अन्य प्रश्नों पर। इसे हमने पहले ही देख लिया है। कुछ स्थानों पर, वह कहते हैं कि अछूतों की समस्या 'भूमि' समस्या है, कि यह अस्वच्छ कामों तक ही सीमित रहने की समस्या है, कि सम्पत्ति का कब्जा उच्च जातियों के हाथों में हथियार है और इस प्रकार सम्पत्ति और जातियों के बीच कोई सूत्र अवश्य है। लेकिन फिर, दूसरे स्थानों पर, वह ऐसे बात करते हैं मानो सम्पत्ति और जातियों के बीच कोई सम्बन्ध ही न हो। अम्बेडकर, जिनमें कि 'सम्पत्ति' के प्रश्न पर कोई स्पष्टता नहीं, समाजवादियों की (जिन्हें विषय की स्पष्टता है) ऐसे आलोचना करते हैं मानो वे भ्रमों के शिकार हों। उदाहरणार्थ, वह कहते हैं,

> "समाजवादियों की भ्रान्ति यह मानने में निहित है कि चूंकि यूरोपीय समाज की वर्तमान अवस्था में सत्ता के स्रोत के रूप में सम्पत्ति प्रभावी है, अतः वही भारत के बारे में सत्य है..."(खंड 1, पृ. 45)।

इसका अर्थ यह है कि, अम्बेडकर के लिए, भारत में सम्पत्ति सत्ता का स्रोत नहीं है जबकि यूरोप में है और वह भी केवल वर्तमान यूरोप में। परन्तु वर्तमान यूरोप में जो मौजूद है वह विकसित पूंजीवाद है। इसलिए, 'पूंजी' स्पष्ट रूप से सम्पत्ति के रूप में उपस्थित होती है। अम्बेडकर के लिए, छोटी पूंजी अथवा भूमि सम्पत्ति नहीं होती है। यही कारण है कि उन्होंने सोच लिया कि सम्पत्ति केवल यूरोप में शक्ति का स्रोत है और भारत में नहीं है।

परन्तु विश्व के किसी कोने में, किसी भी काल खण्ड में, सत्ता का स्रोत और कुछ नहीं बल्कि सम्पत्ति है! सत्ता यदि शोषण के लिए (अर्थात दूसरों को अपने लिए श्रम करने को बाध्य करने के वास्ते) न हो, तो निरर्थक है। यदि सभी लोग इस मायने में समान हों कि सभी श्रम करें, तब सत्ता का अस्तित्व ही नहीं रहेगा।

उसी व्यक्ति ने जिसने कहा कि सम्पत्ति उच्च जातियों का हथियार होता हैयह कहने में संकोच नहीं किया कि 'भारत में सम्पत्ति सत्ता का स्रोत नहीं है! एक बार फिर, वह अपने विचारों में संगति बनाये नहीं रख सके हैं।

यह दलील देते हुए कि सत्ता का एक स्रोत नहीं बल्कि तीन स्रोत होते हैं, वह सम्पत्ति का उल्लेख उन तीन स्रोतों में से एक के रूप में करते हैं।

"धर्म, सामाजिक प्रतिष्ठा और सम्पत्ति सभी शक्ति और सत्ता के स्रोत हैं, जिसे एक आदमी दूसरे की स्वतन्त्रता नियंत्रित करने के लिए रखता है। एक अवस्था में एक प्रभावी होता है और दूसरी अवस्था में दूसरा प्रभावी होता है। यही अन्तर है" (खंड 1, पृ.45)।

अम्बेडकर के अनुसार, धर्म, सामाजिक प्रतिष्ठा और सम्पत्ति तीनों मूल घटक ('स्रोत') होते हैं। यदि हम इस समझदारी के साथ आगे बढ़ें, तो धर्म एक स्वायत्त घटक है जो सम्पत्ति से स्वतन्त्र है। इसलिए, इससे यह प्रदर्शित होता है कि हम धर्म की समस्याओं को उस दशा में भी हल कर सकते हैं जबकि सम्पत्ति का संदर्भ ही न लिया जाय! जाति एक ऐसी धार्मिक समस्या है जो हिन्दुत्व से पैदा हुई। इसका मतलब यह होता है कि, जाति की समस्या को हल करने के लिए, इसे सम्पत्ति के प्रश्न के साथ जोड़ने की कोई आवश्यकता नहीं है! अर्थात, हम सम्पत्ति के संदर्भ के बिना ही जाति समस्या को हल करने में समर्थ होंगे! इसी तरह, सामाजिक प्रतिष्ठा में सोपानिक भिन्नताएं भी स्वायत्त मसला है जो कि सम्पत्ति से असम्बद्ध है। इस प्रश्न को भी, हम सम्पत्ति के संदर्भ बिना ही हल कर सकते हैं। यह अम्बेडकर की दलील है!

लेकिन यह सब गलत है। सही समझदारी यह होनी चाहियेः सम्पत्ति, धर्म और सामाजिक प्रतिष्ठा ये तीनों मुद्दे समान रूप से स्वायत्त नहीं हैं। तीनों में से, अकेला 'सम्पत्ति' ही बुनियादी मुद्दा है। बाकी दोनों मुद्दे, सम्पत्ति सम्बन्धों से उत्पन्न होते हैं। अन्य दो मुद्दों से सम्बन्धित समस्याओं को हल करने के लिए, हमें सम्पत्ति की समस्या

को पहले ही हल करना होगा।

बार-बार यह कहना अनावश्यक है कि जब भी हम सम्पत्ति की बात करते हैं, तो हमारा आशय 'शोषकों की सम्पत्ति' या 'शोषण पर आधारित सम्पत्ति' से होता है।

सम्पत्ति और सामाजिक प्रतिष्ठा के बीच के रिश्ते के चरित्र का परीक्षण करने के लिए, समाज के इतिहासक्रम में सबसे शुरुआती वर्गों अर्थात दासों के वर्ग और दास-स्वामियों के वर्ग पर गौर करें! स्वामी की सामाजिक प्रतिष्ठा ऊंची है और दास की नीची। यदि कोई व्यक्ति स्वामी है, तो दूसरा व्यक्ति दास होगा। इसका कारण क्या है? स्वामी द्वारा सम्पत्ति पर कब्जा और दास की सम्पत्ति से बेदखली। यदि हम 'सम्पत्ति' को हटाकर अलग रख दें, तब न तो कोई एक स्वामी होगा और न ही दूसरा दास। आशय यह कि सामाजिक प्रतिष्ठा ऐसा कुछ नहीं है जो सम्पत्ति से असम्बन्धित हो।

इसी तरह, कोई भी उदाहरण ले लें जिसमें वे सोपानिक भिन्नताएं मौजूद हों जो सामाजिक प्रतिष्ठा में व्याप्त होती हैं! हम देख सकते हैं कि ऐसे विभेद केवल सम्पत्ति के ही कारण उत्पन्न होते हैं।

सम्पत्ति और सामाजिक प्रतिष्ठा के बीच सम्बन्ध कभी-कभी तो प्रत्यक्षतः परिलक्षित होता है और अन्य मौकों पर कुछ रूपान्तरों के साथ परिलक्षित होता है। कुछ व्यक्तियों के पास भले ही सम्पत्ति न हो, परन्तु वे, उच्च शिक्षा और उच्चकोटि की कला के कारण, सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकते हैं। इस तथ्य को देखते हुए, हमें यह नहीं सोच लेना चाहिये कि सम्पत्ति और सामाजिक प्रतिष्ठा के बीच कोई सम्बन्ध ही नहीं है। उच्चतर शिक्षा और कला भी सम्पत्ति के विभिन्न रूप होते हैं। वे केवल सम्पत्ति के साधनों द्वारा ही हासिल किये जाते हैं। वे बदले में सम्पत्ति अर्जित करने की शक्ति प्रदान करते हैं। सम्पत्ति के साथ किसी सम्बन्ध के बिना, उन्हें हासिल करने का प्रश्न ही नहीं उठता।

अम्बेडकर के लिए यह कैसे सम्भव हुआजिनके पास, विदेश में अध्ययन करने एवं अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए, सम्पत्ति नहीं थी? यह इसलिए सम्भव हुआ क्योंकि जमींदारों ने (सामंतों/भू-स्वामियों ने) उन्हें धन दिया। उन्हें (जमींदार) धन मिली कैसे? क्या उन्होंने अम्बेडकर को वह धन दिया जो उन्होंने कड़ी मेहनत और अपने खून-पसीने से कमाया था? वे सदियों से सैकड़ों-हजारों एकड़ जमीनों पर अपनी सम्पत्तियों के रूप में कब्जा जमाते चले आ रहे हैं। वे अपनी जमीनों को बटाई पर उठाते हैं, उस पैसे से विलासितापूर्ण जिन्दगी गुजारते हैं जो वे लगान के नाम पर किसानों से निचोड़ते हैं, मुट्ठी भर पैसा दान में दे दिया, कलाकारों को संबल प्रदान कर दिया और महादानी व्यक्तियों के रूप में ख्याति अर्जित कर ली। वह ऐसा ही धन था जिसे अम्बेडकर ने प्राप्त किया था। यदि ऐसी सम्पत्ति न रही होती तो अम्बेडकर ने विदेश में शिक्षा न प्राप्त की होती और न ही तद्नुरूप सामाजिक प्रतिष्ठा होती। इसका अर्थ यह है कि, सामाजिक प्रतिष्ठा का जो भी रूप हो, यह ऐसा कुछ नहीं है जो सम्पत्ति के साथ बिना किसी सम्बन्ध के ही पैदा होता हो।

वही बात 'धर्म' के साथ है। आदिम काल में, जब शोषणकारी सम्पत्ति का प्रचलन अभी पैदा नहीं हुआ था, प्रकृति की जो संकल्पना मनुष्य ने की थी उसमें केवल अज्ञान और भय था। यह फिर भी 'धर्म' नहीं था। धर्म का श्रीगणेश 'शोषण' के शुरू होने के बाद हुआ जिसमें अज्ञान और उन उपदेशों की मिलावट व्याप्त हो गयी थी जो दासों को अधीन बनाते हैं।

एक धार्मिक उपदेशक या सन्यासी सम्पत्तिविहीन व्यक्ति हो सकता है। परन्तु, यदि वह व्यक्ति दासों को ऐसे उपदेश देता है, 'जो स्वामी की निष्ठापूर्वक सेवा करेगा, वह स्वर्ग में जायेगा। ऐसे व्यक्ति पर देवतागण पुष्पों की वर्षा करेंगे', तब यह उपदेश शोषणकारी सम्पत्ति के अनुकूल होता है। और यह उपदेश अपने आप में धर्म है। इसका कार्य दासों को स्वर्ग और देवताओं में विश्वास कराना है। आज भी धर्म, मेहनतकश वर्ग को, अन्धविश्वासी धारणाओं में उलझाये रखने का कार्य कर रहा है। जब लोग किसी सम्पत्तिविहीन सन्यासी के प्रवचनों पर विश्वास करते हैं, तब हमें इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंच जाना चाहिये कि सम्पत्ति और धर्म के बीच कोई सम्बन्ध ही नहीं है। वह कार्य, जो सन्यासी के माध्यम से धर्म द्वारा सम्पादित किया जाता है, सम्पत्ति की सुरक्षा है। इसका अर्थ यह होता है कि धर्म का उद्भव सम्पत्ति की समस्या के कारण हुआ है और यह कोई स्वायत्त घटक नहीं है। यदि शोषण का कोई अस्तित्व ही न हो तब धर्म की कोई आवश्कता नहीं रह जायेगी; अतः सामाजिक प्रतिष्ठा में विभेदों का भी कोई अस्तित्व नहीं रहेगा।

यदि हम समाज में व्याप्त समस्याओं को, स्थायी रूप से परन्तु अस्थायी रूप से नहीं और मूल रूप से परन्तु सतही रूप से नहीं, हल करना चाहते हैं तो हमें सम्पत्ति सम्बन्धों के आधार पर प्रश्न उठाना होगा। ऐसे लोग केवल सतही तौर पर ही समाधानों को ढूंढ़ते रह जायेंगे जो इस बोधगम्य समझ से सहमत नहीं। और यही अम्बेडकर ने किया। ऐसे लोगों के बारे में उनकी आलोचना नीचे प्रस्तुत है जो आर्थिक मामलों पर जोर देते हैं :

> "यदि स्वतन्त्रता अभीष्ट है,... इस बात पर जोर नहीं दिया जा सकता कि आर्थिक सुधार ही एकमात्र उपयोगी कार्रवाई है... सामाजिक सुधार और धार्मिक सुधार को आवश्यक किस्म के सुधारों के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिये" (खंड 1, पृ.45)।

"भारत के समाजवादियों द्वारा अपनायी गयी इतिहास की आर्थिक व्याख्या के सिद्धान्त पर इस प्रकार हमला किया जा सकता है" (खंड1, पृ.46)। इसका अर्थ यह होता है कि समाजवादी गलत हैं और कोई भी उनके तर्क को निरुत्तर कर सकता है। परन्तु आश्चर्य की बात तो यह है कि अम्बेडकर आर्थिक मामलों को सबसे कम महत्वपूर्ण मुद्दा मानते हैं पर वे सभी मांगें जो उन्होंने अछूतों के लिए उठायीं, केवल आर्थिक मांगें हैं। अछूतों के लिए पानी की मांग एक आर्थिक मांग है। शिक्षा की मांग एक आर्थिक मांग है, चिकित्सा व्यवस्था की मांग एक आर्थिक मांग है। अलग गांवों की मांग एक आर्थिक मांग है। हर वह परिवर्तन जो अछूतों के कष्टों को दूर करता है, स्वभावतः आर्थिक है। यदि हम इन मांगों को अधिकारों के रूप में लें, तो अधिकार भी स्वभाव से आर्थिक हैं। यद्यपि कुछ प्रतिबन्धजैसे 'शूद्रों का सम्पत्ति पर कब्जा नहीं होना चाहिए और न ही उन्हें शिक्षा मिलनी चाहिए'बाहर से अधिकारों के रूप में दिखायी देते हैं, परन्तु इनकी अन्तर्वस्तु आर्थिक है। उच्च जातियों द्वारा निम्न जातियों के अधिकारों को नकारना और उन्हें श्रम करने तथा अस्वच्छ कामों तक बांधे रखना, उच्च जातियों के लिए लाभदायक है। यह उनके श्रम के शोषण के लिए लाभदायक होता है।

समाज में व्याप्त कोई भी अन्य समस्या ले लीजिये; चाहे यह संजातीयता से संबन्धित हो अथवा धर्म, जाति, लिंग या किसी भी दूसरे प्रकार की समस्या हो, यहां तक कि, चाहे यह सत्ता या राजनीति की समस्या के रूप में भी क्यों न प्रकट होती हो, इसकी जड़ें आर्थिक सम्बन्धों में ही होंगी।

परन्तु श्रम सम्बन्धोंअथवा इसका दूसरा नाम, आर्थिक सम्बन्धोंका प्रश्न अम्बेडकर को कतई उद्वेलित नहीं करता। जब किसी को मूल कारण से ही कोई सरोकार न हो, तो बचेगा क्या? केवल सतही बातें। अर्थात धर्म, सामाजिक प्रतिष्ठा और राजनीति। अम्बेडकर की समस्त चर्चा, सदैव सतही विषयों के चारों ओर चक्कर लगाती है और मूल कारणों से उनका सरोकार नहीं रहता।

●

उन लोगों में, जो कि 'बुद्धिजीवी' समझे जाते हैं, मार्क्सवाद के प्रति उनके रुख के लिहाज से तीन मुख्य श्रेणियां होती हैं। पहली श्रेणी के लोग मार्क्सवाद के बारे में कुछ भी नहीं जानते। वे इस तथ्य को नहीं जानते कि 'मार्क्सवाद' नाम का कोई सिद्धान्त भी है। ऐसे लोग न तो मार्क्सवाद के पक्ष में कुछ बोलते हैं और न ही इसके विरुद्ध। वे इसके बारे में बात ही नहीं करते हैं। हम ऐसे लोगों को गैर-मार्क्सवादी (Non-Marxist) मान सकते हैं।

बुद्धिजीवियों की दूसरी श्रेणी भी मार्क्सवाद के बारे में कुछ भी नहीं जानती है। परन्तु कम से कम, उन्होंने इसका नाम सुन रखा है। उन्होंने, यद्यपि कि अधकचरे रूप में, मार्क्सवाद से सम्बन्धित सकारात्मक और नकारात्मक दोनों विचारों को सुना होगा। अतः वे, मार्क्सवाद के विषय में, दुविधा में टटोलते रहते हैं। परन्तु वे यह जांचने का प्रयास नहीं करते हैं कि इन विचारों में क्या सच्चाई है और क्या झूठ है। लेकिन मार्क्सवाद के प्रति उनका विरोध बहुत गंभीर नहीं होता है। हम ऐसे बुद्धिजीवियों को भी गैर-मार्क्सवादी मान सकते हैं।

जहां तक बुद्धिजीवियों की तीसरी श्रेणी की बात है, वे मार्क्सवाद के बारे में थोड़ा-बहुत जानते हैं। उन्हें इस तथ्य का ज्ञान है कि मार्क्सवाद शोषण का विरोध करता है और यह निजी सम्पत्ति के शोषक स्वामित्व के विरुद्ध है। लेकिन ये बुद्धिजीवी यह सब नहीं चाहते। वे आमदनी के शोषणकारी स्रोतों का बचाव करते हैं। किन्तु वे खुल्लमखुल्ला ऐलान नहीं करते किः 'शोषण होने दो'। वे अपनी सुविधानुसार शब्दावली में केवल अदल-बदल कर देते हैं। कुल मिलाकर, वे शोषणकारी सम्पत्ति सम्बन्धों के पक्षधर होते हैं। ये बुद्धिजीवी मार्क्सवाद के प्रति तीखा विरोध बनाये रखते हैं। ऐसे बुद्धिजीवी मार्क्सवाद-विरोधी होते हैं और गैर-मार्क्सवादियों की श्रेणी में नहीं आते।

अम्बेडकर को मार्क्सवाद के पक्ष में बोलने की आवश्यकता नहीं। वह सिद्धान्त के सम्बन्ध में संदेह व्यक्त कर सकते थे। यदि उन्होंने अपने को इस रुख तक सीमित रखा होता, तो उन्हें गैर-मार्क्सवादी की श्रेणी में रखा जा सकता था। परन्तु अम्बेडकर ने जो किया, वह ऐसा नहीं था। उन्होंने हमेशा उस मार्क्सवाद के प्रति विरोध और घृणा दर्ज की जो मेहनतकश वर्ग के हितों का बचाव करता है। मार्क्सवाद के विरुद्ध अभियान, उनके जीवन के उद्देश्यों में से एक था।

6. एक पत्र, जिसे किसी ने किसी और को लिखा था!

अम्बेडकर ने भारतीय समाजवादियों की काफी आलोचना की है? इसका आधार क्या है? सामाजिक सुधारों के विरुद्ध होने के लिए समाजवादियों की क्या आलोचना है? क्या अम्बेडकर ने कोई ऐसा साक्ष्य दिया कि भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने कुछ गलत किया अथवा गलत कहा? क्या आप जानते हैं कि अम्बेडकर ने एकमात्र साक्ष्य क्या दिया? "मैं नीचे एक पत्र का उद्धरण देता हूं जिसे कुछ दिनों पहले एक प्रमुख समाजवादी ने मेरे एक मित्र को लिखा था"यह कहते हुए अम्बेडकर ने पाठकों के समक्ष प्रमाणस्वरूप एक पत्र रख दिया। इसका अर्थ है कि अम्बेडकर का एक मित्र था। इस मित्र को एक समाजवादी मित्र ने पत्र लिखा। यह मित्र उस पत्र को लाया और इसे अम्बेडकर को दिखा दिया। उस पत्र के कुछ शब्दों ने अम्बेडकर को खिझा दिया। यह अकेला 'पत्र' ही अम्बेडकर की उस समस्त आलोचना का आधार है जो उन्होंने अपने निबन्ध 'जाति का उन्मूलन' में भारतीय समाजवादियों के विरुद्ध व्यक्त किया है।

उस पत्र में है क्या? उस समाजवादी ने लिखा था :

> "मुझे विश्वास नहीं है कि हम भारत में एक स्वतंत्र समाज निर्मित कर सकते हैं, जब तक कि एक वर्ग पर दूसरे द्वारा दुर्व्यवहार और दमन लेशमात्र भी मौजूद हो। मैं एक समाजवादी आदर्श में विश्वास रखता हूं, मैं विभिन्न वर्गों और समूहों के साथ बरताव में अनिवार्य रूप से पूर्ण समता में विश्वास रखता हूं। मैं समझता हूं कि समाजवाद अन्य समस्याओं के साथ-साथ इसका भी एकमात्र सही उपचार प्रस्तुत करता है" (खंड 1, पृ.46)।

पत्र में यही लिखा था! इन शब्दों में कुछ भी अनुचित नहीं है, है कि नहीं? इस पत्र के लेखक ने "एक वर्ग पर दूसरे द्वारा दुर्व्यवहार और दमन" के विरुद्ध दलील दी थी। उसने "विभिन्न वर्गों व समूहों के साथ बरताव में पूर्ण समता" की वकालत की। अम्बेडकर को इन शब्दों से क्रुद्ध क्यों हो जाना चाहिये? क्योंकि, पत्र लेखक ने यह भी कह दिया था कि "समाजवाद, इसके साथ-साथ दूसरी समस्याओं का भी एकमात्र सही उपचार प्रस्तुत करता है।" अम्बेडकर के अनुसार यह अनुचित बात है! यही वह बात है जिसने अम्बेडकर को खिझा दिया!

अपने निबन्ध, 'जाति का उन्मूलन' में अम्बेडकर उस समाजवादी पर बरस पड़े जिसने ऐसा पत्र लिखा : 'क्या समाजवादियों का यह कहना पर्याप्त है कि सभी को समान होना चाहिये? क्या यही पर्याप्त है कि वे समता में विश्वास रखते हैं? क्या जातियों के बारे में सोचने का यही तरीका है?'

क्या इसका अर्थ यह होता है कि उस समाजवादी को कुछ और बातें लिखनी चाहिये थीं? क्या उसे उन बातों को गिनाना चाहिये था कि समाजवादी सिद्धान्त जातियों के बारे में क्या कहता है और इस परिप्रेक्ष्य में उसकी पार्टी ने क्या किया और क्या करेगी? उन्होंने उपने पत्र में निश्चित रूप से यह सब लिखा होता बशर्ते कि उन्हें पहले से यह पता रहता कि उनका पत्र अम्बेडकर के हाथ लग जायेगा और यह कि यदि पत्र में जातियों के उन्मूलन का कोई कार्यक्रम न रखा गया तो अम्बेडकर बड़े नाराज होंगे। परन्तु दुर्भाग्य से उस समाजवादी को यह सब नहीं मालूम था। उसने अनौपचारिक रूप से अपने मित्र को दो-चार बातें लिख दीं और नाहक अम्बेडकर का कोप-भाजन बनना पड़ा।

क्या यह बात यकीन करने लायक है कि अम्बेडकर ने समाजवादियों की आलोचना महज इसलिए की क्योंकि कुछ निश्चित बातें एक ऐसे पत्र में नहीं थीं जो किसी ने किसी और को लिखा था? कितना आश्चर्यजनक है यह! परन्तु हम कितनी बार आश्चर्यचकित हुए और स्तब्ध हुए? बार-बार पुनरावृत्ति के कारण, आश्चर्यचकित होना और स्तब्ध होना आम हो गया है। हम अपने आश्चर्य को बार-बार कैसे व्यक्त कर सकते हैं? कितना अच्छा होता अगर अम्बेडकर ने मार्क्स की किन्हीं कृतियों से कुछ शब्दों को ठीक वैसे ही उद्धृत किया होता जैसा कि उन्होंने किसी के पत्र से शब्दों को उद्धृत किया था! अम्बेडकर ने ऐसा क्यों नहीं किया? क्या इसलिए कि मार्क्स का पत्र उनके हाथ नहीं लगा? मार्क्स भी किसी ऐसे व्यक्ति को पत्र लिख सकते थे जो अम्बेडकर के घर के सामने या बगल में रह रहा होता! मगर मार्क्स ने ऐसा नहीं किया। क्या हमेशा उन्हें अपने सारे पत्र केवल एंगेल्स को ही लिखने चाहिये थे? क्या उन्हें कम से कम एक पत्र अम्बेडकर के मित्र को नहीं लिखना चाहिये था? अम्बेडकर ने कहीं भी मार्क्स को नहीं उद्धृत किया क्योंकि उनको मार्क्स का पत्र ही नहीं मिला था। वजह यही होनी चाहिये!

अच्छा होता यदि कुछ लोग इस विषय पर शोध करते कि कुछ व्यक्तियों में असीम अहम्मन्यता क्यों होती है? बुद्ध ने अनेक बार कहा', कि कुछ व्यक्तियों में अहम्मन्यता, घमंड, डींग हंकाई और सब कुछ मौजूद रहेगा। यद्यपि उन्होंने यह तो बता दिया कि ऐसी प्रवृत्तियां होंगी परन्तु उन्होंने यह नहीं बताया कि वे प्रवृत्तियां होती क्यों हैं। मैं समझती हूं कि इन प्रवृत्तियों में अभिवृद्धि तभी होती है जब उन्हें टोकने वाला कोई नहीं होता है! बहरहाल, 'अहम्मन्यता' का यह पहलू शोध के लिए बहुत अच्छा विषय है।

7. अम्बेडकर का एक तर्कसंगत संदेह

अम्बेडकर को समाजवादी सिद्धान्त के बारे में भारी संदेह है। शोषण को समाप्त करने के लिए, समाजवादी सिद्धान्त वर्ग संघर्ष का रास्ता सुझाता है। इसे पाने के लिए, मेहनतकश वर्ग के सभी लोगों को एकजुट होना चाहिये। परन्तु, भारत में जाति विभेद मौजूद है : यहां अस्पृश्यता है। निर्धन लोग भी इन विभेदों का पालन करते हैं। इन परिस्थितियों में, ये सभी निर्धन लोग एकजुट कैसे होंगे? वे संघर्षों को शुरू कैसे करेंगे अगर वे एकजुट न हों?यह अम्बेडकर का संदेह है। यह एक तर्कसंगत और उचित संदेह है।

अम्बेडकर के शब्दों में :

> "मुझे यकीन है कि क्रांति संचालित करने वाले किसी समाजवादी का यह आश्वासन कि वह जाति में विश्वास नहीं रखता, पर्याप्त नहीं होगा। आश्वासन को ऐसा आश्वासन होना चाहिये जो अधिक गहरी बुनियाद से उत्पन्न होता हो। ... क्या यह कहा जा सकता है कि भारत में दरिद्र लोग जात-पांत, ऊंच-नीच को नहीं मानते हैं? यदि तथ्य यही है कि वे मानते हैं तो, धनिकों के खिलाफ अपनी कार्रवाई में, ऐसे सर्वहारा से किस एकजुट मोर्चे की उम्मीद की जा सकती है? क्रांति हो ही कैसे सकती है अगर सर्वहारा एक संयुक्त मोर्चा प्रस्तुत न कर सके?" (खंड 1, पृ. 46-47)।

यह एक अच्छा प्रश्न है। परन्तु जिस तरीके से उन्होंने प्रश्न रखा उससे यह ध्वनित होता है कि समाजवादी सैद्धान्तिकी यह गलत धारणा लेकर चलता है कि 'यदि श्रमिक वर्ग के भीतर कोई एकता न हो तब भी कोई बात नहीं है' और इसीलिए अम्बेडकर ऐसे पूर्वानुमान पर सवाल उठा रहे हैं। क्या समाजवादी सिद्धान्त कहता है कि 'हम वर्ग संघर्ष के संचालन द्वारा समाज को तब भी बदल सकते हैं जब कि मेहनतकश वर्ग के भीतर मतभेद विद्यमान हो और यहां तक कि मेहनतकश वर्ग में विभिन्न हिस्से एकजुट न होते हों? नहीं, यह ऐसा नहीं कहता। यह कहता है कि 'मजदूरों की एकता' उनकी ताकत है। इसने तो वास्तव में यह कहा, 'दुनिया के मजदूरो, एक हो!'

काई भी संगठन जिसका उद्देश्य मेहनतकश लोगों में वर्ग संघर्ष की चेतना जागृत करना है, उसे हर उस समस्या पर विचार करना चाहिये जो उनकी एकता में बाधा उत्पन्न करती हो। इसे इस ढंग से अपने कार्यक्रमों का सूत्रपात करना होगा जो समस्या को हल करने में सहायक हो। यदि ऐसा नहीं करता है, तो हमें उस संगठन की आलोचना करना होगा न कि समाजवादी सिद्धान्त की।

सिद्धान्त तो सामान्य मार्गदर्शक सिद्धान्तों को प्रस्तुत करता है जो सभी क्षेत्रों और सभी स्थितियों में लागू होते हैं। वह यह भी बताता है कि संगठनकर्ताओं को विशिष्ट स्थानों की विशिष्ट स्थितियों को ध्यान में रखना चाहिये। मगर, यह उस स्थिति का विशेष उल्लेख नहीं कर सकता जो किसी स्थान विशेष में संभावित हो।

जब समाजवादी सिद्धान्त यह कहता है कि हमें शोषण-सम्बन्धों को शोषणहीन सम्बन्धों में बदलना होगा, तो यह आलोचना किया जाना निरर्थक है कि इस सिद्धान्त ने केवल शोषण की बात की और सामाजिक सुधार के बारे में कुछ नहीं कहा।

जब समाज में शोषण विद्यमान रहेगा तो जीवन के सभी क्षेत्र में वही शोषणकारी चरित्र प्रतिबिम्बित होगा। जहां कहीं भी और जिस रूप में भी प्रभुत्व विद्यमान होता है, यह शोषण सम्बन्धों और तद्नुरूप शोषण के विचारों के कारण ही मौजूद होता है। इसलिए शोषण का खात्मा करने में जीवन के सभी क्षेत्रों में बदलाव शामिल होता है। यही बात प्रत्येक समस्या के लिए लागू होती है, चाहे वह जातियों की समस्या हो अथवा कोई दूसरी समस्या।

भारत में जाति व्यवस्था एक ऐसी समस्या है जो मेहनतकश वर्ग की एकता को नुकसान पहुंचाती है। यह भारत की विशिष्ट स्थिति है। यदि समाजवादी पार्टी (या, कम्युनिस्ट पार्टी) इस ख़ास स्थिति को अपनी दृष्टि में न रखती हो, तो हमें निश्चित रूप से इसकी गलती बतानी होगी और इसकी आलोचना करनी होगी। मगर प्रश्न यह है कि क्या उस पार्टी ने ऐसा किया? क्या पार्टी ने जाति समस्या या अस्पृश्यता को ध्यान में नहीं रखा? क्या अम्बेडकर के समय की कम्युनिस्ट पार्टी ने जाति व्यवस्था के विरुद्ध अभियान नहीं छेड़े या प्रचार नहीं किया? क्या इसने कोई भी गतिविधियाँ नहीं कीं?

यदि कोई भी ऐसे प्रसंग हों, तो अम्बेडकर को इसे सामने लाना चाहिए। उन्हें इसके आचरण को यह कहते हुए उजागर करना चाहिए कि, 'देखो, इस मामले में कम्युनिस्ट पार्टी ने कैसा काम किया।' परन्तु अम्बेडकर ने ऐसी कोई सूचना नहीं दी। उन्होंने एक भी प्रसंग उद्धृत नहीं किया(उस पत्र को छोड़कर जो उनके मित्र ने प्राप्त किया था)! सोते-जागते, उठते-बैठते, हर समय, अम्बेडकर की आलोचना मार्क्सवाद

के विरुद्ध होती है, वो भी बिना किसी औचित्य के! 'श्रम के शोषण' के बारे में बिना कुछ जाने-समझे!

मेहनतकश जनता एकजुट कैसे हो जबकि भारत में जाति विभेद वर्तमान हैं? वे संघर्षों को कैसे शुरू करेंगे?यह वाकई समस्या है। उपयुक्त कार्यक्रमों को चुनना ही समाधान है।

यहां तक कि ''नीची'' जाति के लोग भी अपने बीच जात-पांत के भेदभाव को बरतते हैं। वे अन्तर्जातीय सहभोज और अन्तर्जातीय विवाहों में सम्मिलित नहीं होते हैं। इन परिस्थितियों में, उन्हें यह बताना आवश्यक है कि यह सब गलत, अज्ञान और अन्यायपूर्ण है। सहभोजों और अन्तर्जातीय विवाहों के पक्ष में अभियानों का सिलसिला लोगों के पुराने विचारों को बदलने लगता है। किन्तु, समग्र जाति समस्या केवल यही करने से नहीं समाप्त होगी। चूंकि यह समस्या 'श्रम के शोषण' और पुराने श्रम-विभाजन से सम्बन्धित है, अतः लोगों को इन पक्षों के बारे में भी जानना चाहिये। दूसरे शब्दों में हमें मार्क्सवाद की शिक्षा देनी होगी!

अम्बेडकर आगे टिप्पणी करते हैं :

> "बहस के तौर पर मान लीजिये कि दैव-संयोग से कोई क्रांति घटित होती है और समाजवादी सत्ता में आ जाते हैं, तो क्या उन्हें उन समस्याओं से नहीं निपटना होगा जो भारत में प्रचलित विशेष सामाजिक व्यवस्था द्वारा निर्मित हैं? मुझे नहीं सूझता कि भारत में समाजवादी सत्ता एक पल भी कैसे चल सकती है जो ऐसे पूर्वाग्रहों से निर्मित हुई हो जो भारत के लोगों को ऊंच-नीच और शुद्ध--अशुद्ध का भेदभाव बरतने में प्रवृत्त रखता है" (खंड 1, पृ. 47)।

अम्बेडकर का ऐसा पूर्वाग्रह समाजवादी सत्ता की संकल्पना और समाजवादी सिद्धान्त के प्रति है। 'यह तथ्य कि मानवों के बीच ऊंच-नीच और शुद्ध-अशुद्ध का भेद-भाव मौजूद है, ऐसा कुछ नहीं है जिसके अस्तित्व को समाजवादी सिद्धान्त न स्वीकारता हो। ये विभेद समाज में व्याप्त उन सम्पत्ति-सम्बन्धों और श्रम-विभाजन की उपज हैं जो शोषण पर आधारित हैं। मनुष्यों में समता के लिए तब तक कोई गुंजाइश नहीं है जब तक कि हम इन विभेदों को मिटा न दें।' यह सारी समझदारी समाजवादी सिद्धान्त का भाग है। अम्बेडकर नेबिना यह जाने कि समाजवादी सिद्धान्त वास्तव में क्या कहता हैबुर्जुआ वर्ग की ही तरह समाजवादी सिद्धान्त के प्रति नाक-भौं सिकोड़ने की प्रवृत्ति विकसित कर ली थी। इस विमुखता के कारण वह इस निष्कर्ष पर पहुंच गये कि समाजवादी सत्ता का ऊंच-नीच और शुद्ध और अशुद्ध के विभेदों से कोई सरोकार नहीं। अम्बेडकर की यह रायकि समाजवादी सिद्धान्त इन विभेदों से कोई सरोकार नहीं रखता हैबताती है क उन्होंने कितनी (गैर-) जिम्मेदारी के साथ सिद्धान्त को समझने का प्रयास किया। यदि अम्बेडकर को उस बात से कुछ लेना-देना नहीं रहा जो कि मार्क्सवाद ने कही थी, यानी, 'शोषणकारी श्रम विभाजन को समाजवादी श्रम विभाजन में अवश्य परिवर्तित होना चाहिये, तब किसका दोष हैमार्क्सवाद का या अम्बेडकर का?

यह सिद्धान्त कि 'हमें शोषणकारी स्वामित्व अधिकारों को समाप्त करना होगा' और 'प्रत्येक व्यक्ति को श्रम करना चाहिये', ऊंच-नीच के भेद-भाव को समाप्त करेगा। यह सिद्धान्त कि प्रत्येक व्यक्ति को न सिर्फ स्वच्छ काम बल्कि अस्वच्छ काम भी करने चाहिये, 'शुद्ध-अशुद्ध' के विभेद को समाप्त करेगा। यह श्रमिक (सर्वहारा) वर्ग का दायित्व है कि नये, क्रांतिकारी सम्बन्धों को व्यवहार में लागू करे। वे सभी लोग जो भारत में अस्वच्छ काम करते हैं, सर्वहारा का हिस्सा हैं। बिना यह सब समझे ही अम्बेडकर ने समाजवादी सिद्धान्त में गलतियां निकालनी शुरू कर दीं।

●

एक बार, जब मुम्बई की कपड़ा मिलों में हड़ताल हो गयी थी, अम्बेडकर ने दलित मजदूरों की ओर से सवर्ण हिन्दू मजदूरों के सामने एक शर्त रखी। उन दिनों, अस्पृश्यता के चलते, मिल मालिक दलित मजदूरों को मिल के सभी हिस्सों में नौकरी पर नहीं रखा करते थे। इस मौके पर, अम्बेडकर ने शर्त रखी कि सवर्ण हिन्दू मजदूरों को भी अपने मिल मालिकों से कपड़ा उद्योग की सभी शाखाओं में दलितों को नौकरियां मुहैया कराने की मांग करनी चाहिये। उन्होंने कहा कि यदि सवर्ण हिन्दू मजदूरों ने ऐसी मांग नहीं की तो दलित मजदूर हड़ताल में भाग नहीं लेंगे।

यद्यपि प्रारम्भ में सवर्ण हिन्दू मजदूरों ने अस्पृश्यता का चलन छोड़ने का विचार पसंद नहीं किया, फिर भी उन्होंने इस बारे में सोचा और इस मांग के लिए सहमत हो गये। सवर्ण हिन्दू मजदूरों ने महसूस किया कि मिल मालिकों के विरुद्ध संघर्ष मुख्य है न कि अस्पृश्यता का बरताव (खंड 2, पृ.474)।

ऐसा कोई विवरण नहीं मिलता है कि मिल मालिक मांग से सहमत हो गये अथवा नहीं।

सवर्ण हिन्दू मजदूरों के साथ बहस-मुबाहसे के कारण अंधविश्वासी धारणाओं को कम से कम कुछ हद तक क्षीण करना संभव हुआ। यदि हम नये और तर्कसंगत विचार प्रस्तुत करें तो गलत विचार निश्चित रूप से क्षीण होंगे। ये अभियान और प्रचार उस वर्ग के मतलब का नहीं है जो शोषण पर जीवित है। ये जनता के लिए आवश्यक हैं। ये शिक्षाप्रद कार्यक्रम सवर्ण हिन्दू जन अथवा दलित जन को बदलने की दिशा में शुरुआती कदम हैं।

यदि अम्बेडकर 'नीची' जातियों की मुक्ति चाहते हैं तो उन्हें, नीची जाति के लोगों में, जाति विभेदों की दिशा में नकारात्मक रुख और मार्क्सवाद की दिशा में सकारात्मक रुख निर्मित करना चाहिये। परन्तु उन्होंने दोनों बात नहीं कीं। चूंकि मार्क्सवाद के प्रति उनका सकारात्मक रवैया नहीं था, अतः उन्होंने दलितों में भी सकारात्मक प्रभाव नहीं निर्मित किया। उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि मार्क्सवाद निरर्थक है और उन्हें (दलितों को) केवल बुद्धवाद का अनुसरण करना चाहिये।

यदि हम 'जाति प्रश्न' पर विचार करें तो उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला था कि जातियों का उन्मूलन संभव नहीं है और इसका कोई समाधान नहीं है क्योंकि ब्राह्मण जातियों के उन्मूलन के लिए आन्दोलन का नेतृत्व नहीं करते।

इसका तात्पर्य यह होता है कि 'नीची' जाति के लोगों ने अम्बेडकर से न तो ऐसा कोई कार्यक्रम प्राप्त किया जिसके आधार पर वे जाति व्यवस्था के विरुद्ध लड़ सकते और न ही मार्क्सवाद प्राप्त किया जो उनकी मुक्ति का मार्ग है। उन्होंने अम्बेडकर से कुछ भी सार्थक नहीं पाया।

●

स्तालिन के निधन के पचास वर्ष बाद

● लूडो मार्टेन्स
(बेल्जियम की वर्कर्स पार्टी के अध्यक्ष)

इंस्टीट्यूट ऑफ मार्क्सिस्ट स्टडीज द्वारा फ्री युनिवर्सिटी ऑफ ब्रुसेल्स में 5 मार्च 2003 को आयोजित स्मृति सभा में दिया वक्तव्य

''स्तालिन बीसवीं शताब्दी के महानतम व्यक्तित्व थे, एक महानतम राजनीतिक प्रतिभा''; ऐसा कहा था भूतपूर्व सोवियत विरोधी अलेक्सांद्र जिनोविएव ने। उसके शब्दों में, *''मैं सत्रह वर्ष की आयु में ही पक्का स्तालिन विरोधी बन चुका था.. स्तालिन की हत्या का विचार मेरी सोच और भावनाओं में घर कर चुका था....हमने हमले की तकनीकी संभावनाओं का अध्ययन किया और यहां तक कि उसका अभ्यास भी किया। यदि उन्होंने 1939 में ही मुझे मृत्युदण्ड दे दिया होता तो उनका निर्णय न्यायसंगत होता। जब स्तालिन जीवित थे तो मैं चीजों को भिन्न नजरिए से देखता था, परन्तु अब, जबकि मैं इस सदी को पीछे मुड़कर देखता हूं, मैं यह कह सकता हूं कि स्तालिन इस सदी के महानतम व्यक्तित्व थे, महानतम राजनीतिक प्रतिभा।''*

1994 में मैंने पेरिस में स्तालिन पर एक व्याख्यान दिया था। एक अल्जीरियाई ने 5 मार्च 1953 को याद करते हुए बीच में हस्तक्षेप किया : *''उस सुबह मैं अपने पिता का हाथ थामे बाहर निकला। मैंने देखा कि सभी अल्जीरियाई कैसे उदास दिखाई दे रहे थे और फ्रांसीसी खुशियां मना रहे थे। मैंने अपने पिता से पूछा कि क्या हुआ था। उन्होंने गम्भीरता से जवाब दिया, 'स्तालिन का देहांत हो गया है...'। मैंने पूछा कि स्तालिन कौन था? मेरे पिता ने कहा, ''वह हमारे समय का सबसे महान व्यक्ति था। वह महानतम क्रान्तिकारी राष्ट्र सोवियत संघ का नेता था। स्तालिन एक मोची का बेटा था।' मैंने सोचा : 'मोची का लड़का, मेरे ही जैसा कोई...' उन अल्जीरियाई देशभक्तों के लिए स्तालिन साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद के खिलाफ संघर्ष का प्रतिनिधित्व करते थे जिनके मुक्ति युद्ध के दौरान फ्रांसीसी उपनिवेशवादियों ने दस लाख लोगों को मौत के घाट उतारा था।''*

आज उनके निधन की पचासवीं बरसी पर दुनियाभर के क्रान्तिकारी स्तालिन को आज तक विश्व के महानतम क्रान्तिकारी के रूप में याद कर रहे हैं। मानवता के इतिहास के एक मील के पत्थर सोवियत संघ में स्तालिन के नेतृत्व में ही असाधारण राजनीतिक और आर्थिक रूपान्तरण सम्पन्न हुए थे। स्तालिन ही थे जिन्होंने सोवियत संघ की रक्षा के लिए फासीवाद विरोधी महान क्रान्तिकारी युद्ध का नेतृत्व किया था। स्तालिन ने दुनियाभर में उपनिवेश बने राष्ट्रों, विशेषकर एशिया में चीन और भारत के मुक्तिसंघर्षों को प्रोत्साहन दिया था।

आज हम स्तालिन को इसलिए याद कर रहे हैं क्योंकि उनकी उपलब्धियां मानवता के भविष्य के लिए भारी महत्व रखती हैं। स्तालिन का नाम उन चार महान क्रान्तिकारी संघर्षों का प्रतीक है जो 21वीं शताब्दी में मानवता के भाग्य का निर्णय करेंगे। ये हैंआर्थिक विकास, स्वतंत्रता, शांति और समाजवाद के लिए संघर्ष।

स्तालिन और साम्राज्यवाद विरोधी स्वतंत्रता संग्राम

लेनिन और स्तालिन का अनुभव यह बताता है कि राष्ट्रीय स्वतंत्रता के लिए लड़ाई और समाजवाद के लिए संघर्ष अलग करके नहीं देखा जा सकता। वह यह भी बताता है कि अवसरवाद साम्राज्यवाद और पूंजीवाद के लिए एक आरक्षित बल के रूप में काम करता है।

25 अक्टूबर (नये कैलेण्डर के अनुसार 7 नवम्बर) 1917 को महान समाजवादी क्रान्ति की विजय हुई थी। अगले ही दिन मेंशेविक पार्टी ने बोल्शेविकों पर *''दासता की व्यवस्था''* को लागू करने का आरोप लगाते हुए उन्हें उखाड़ फेंकने के इरादे की घोषणा कर दी। रूस के सामाजिक जनवादियों ने *''रूस को बोल्शेविक क्रूरता से मुक्त करने''* के लिए साम्राज्यवादी फौजों से अपील की। समाजवादी शिशु सोवियत संघ के विरुद्ध ब्रिटेन, फ्रांस, जापान, इटली और अमेरिका के सैनिकों के हस्तक्षेप में चर्चिल ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

हस्तक्षेप करने वाली फौजों के विरुद्ध जनयुद्ध के निर्णायक मोर्चे को नेतृत्व देने के लिए लेनिन द्वारा भेजे गये प्रमुख नेता स्तालिन थे। लम्बे समय तक भूमिगत रहने के कारण बोल्शेविकों की संख्या बहुत अधिक नहीं थी। साम्राज्यवादियों का आकलन था कि आठ विदेशी फौजों, जिन्हें जार की सेना के अवशेषों, बड़े भूस्वामियों, पूंजीपतियों और सामाजिक जनवादी पार्टी का समर्थन प्राप्त था, के विरुद्ध सोवियत संघ टिक नहीं पायेगा। लेनिन और स्तालिन ने वास्तविक अर्थों में व्यापक जनता की लड़ाई को संगठित किया जिसने सभी आक्रमणकारियों और उनके सहयोगियों पर विजय प्राप्त की।

सोवियत संघ की स्वतंत्रता कायम रखने के लिए लेनिन और स्तालिन के नेतृत्व में चलाये गये राजनीतिक और सैन्य संघर्ष साम्राज्यवादी भूमण्डलीकरण की वर्तमान परिस्थिति में विशिष्ट अर्थ ग्रहण कर लेते हैं। आज मानवता की भारी बहुसंख्या के समक्ष प्रमुख समस्या वास्तविक राजनीतिक और आर्थिक स्वतंत्रता हासिल करना है।

यह समस्या उस राजनीतिक, आर्थिक, सैन्य और सांस्कृतिक पुनर्उपनिवेशीकरण के विरुद्ध राष्ट्रीय मुक्ति संघर्षों की है जो 19वीं शताब्दी के उपनिवेशवाद से अधिक खूनी व आक्रामक है।

पिछले छह वर्षों में, मुझे इस यथार्थ का अनुभव पहली बार कांगो में हुआ। कांगो, दुनिया के समृद्धतम देशों में से एक होने की क्षमता रखता है लेकिन 37 वर्षों की नवऔपनिवेशिक तानाशाही में वहां की जनता गरीब व वंचित रही आज वह अमेरिका द्वारा प्रोत्साहित आक्रमण का शिकार है और भयावह गरीबी में अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रहा है।

आंग्ल-अमेरिकी साम्राज्यवाद *''अफ्रीका के लिए एक नया युद्ध''* देख रहा है, ''क्योंकि औद्योगिक विश्व में कच्चे माल समाप्त हो रहे हैं।'' अमेरिका ने घोषणा कर दी है कि *''अफ्रीका में अमेरिकी हितों के लिए कांगो बहुत महत्वपूर्ण है''* क्योंकि उसके पास विश्व की 13 प्रतिशत पनबिजली संपदा है, 28 प्रतिशत कोबाल्ट के सुरक्षित भण्डार हैं और 18 प्रतिशत औद्योगिक हीरा के सुरक्षित भण्डार हैं।''[1]

आंग्ल-अमेरिकी साम्राज्यवाद अब कांगो और अफ्रीका को फिर से उपनिवेश बनाने के अपने अधिकार का तकरीबन खुलेआम दावा करने लगा है और स्पष्ट तौर पर किसी भी प्रकार की वास्तविक स्वतंत्रता से इंकार करता है। कांगो की संपदा *''अमेरिकी हितों के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण''* भला कैसे हो सकती है जब तक कि अमेरिकियों ने कांगो पर हाथ डालने का निर्णय न ले लिया हो, वह भी किसी भी कीमत पर? अमेरिका-रवांडा-युगांडा का आक्रमणकारी युद्ध पहले ही कांगो में 4,000,000 जानें ले चुका है। लेकिन कौन इसकी चर्चा करता है? दूसरी ओर, कामरेड स्तालिन के निधन की पचासवीं बरसी पर, पूरा बुर्जुआ प्रेस उन्हीं आरोपों पर वापस लौट गया है जिसमें बरसों पहले नाजियों द्वारा स्तालिन को ''रक्तपिपासु'' कहा गया था।

स्तालिन और समाजवादी विकास के लिए संघर्ष

सोवियत संघ में विकास की रफ्तार तेज करने की पूर्वशर्त थी स्वतंत्रता। स्वतंत्रता के कारण ही यह संभव हुआ कि समाजवादी राज्य के हाथों में केन्द्रित हो गये। उत्पादन के अति महत्वपूर्ण साधन और रिकार्ड समय में औद्योगिक, कृषि, सांस्कृतिक व सैन्य विकास की मुख्य समस्याओं के समाधान के लिए उनका नियोजित उपयोग किया जा सका। 1928 में स्तालिन ने जबर्दस्त आर्थिक विकास के लिए प्रथम पंचवर्षीय योजना का आरम्भ किया।

4 फरवरी 1931 को स्तालिन ने घोषणा की *''हम उन्नत देशों से 50 से 100 वर्ष पीछे हैं। हमें इस दूरी को 10 वर्षों में नापना होगा। या तो हम सफल होंगे या डूब जायेंगे।''* स्तालिन ने शर्त जीत ली, एक ऐसी चुनौती जिसके बारे में सोचना भी किसी बुर्जुआ के लिए असंभव होता।

उन्होंने दो जादुई हथियारों का प्रयोग किया। बोल्शेविक पार्टी से जुड़े मजदूरों और किसानों के हरावल तत्वों को संगठित करना, और दूसरे, जनता की चेतना का स्तरोन्नयन और उसे आर्थिक विकास के लिए गोलबन्द करना।

जार के शासनकाल में रूस में 37 वर्षों तक रहे एक विदेशी ने कहा; *''बोल्शेविकों ने पांच करोड़ से अधिक उदासीन, जीवित से ज्यादा मृत मनुष्यों को गतिमान किया है और उनके अंदर एक नई जान फूंक दी है। क्रान्तिकारी उत्साह की गर्मी बड़ी से बड़ी बाधाओं को गला डाल रहा है। इस तरह की चीज आज तक कभी नहीं देखी गई।''*

देहात में पले-बढ़े अलेक्सांद्र जिनोविएव ने कृषि के सामूहिकीकरण और आधुनिकीकरण के लिए चले तीखे संघर्षों के बीच जीवन व्यतीत किया था। उनका कहना है, *''जब मैं गांव वापस लौटा तो मैंने अपनी मां और 'कोलखोज (सामूहिक फार्म) के अन्य सदस्यों से पूछा कि अगर उन्हें निजी काश्त दिये जाने की संभावना बनती है तो क्या वे उसे स्वीकार करेंगे? उन सभी ने स्पष्ट तौर पर इंकार कर दिया। सामूहिकीकरण के दौरान ग्रामीण क्षेत्रों ने एक अभूतपूर्व सांस्कृतिक क्रान्ति का अनुभव कियाथा : प्राथमिक विद्यालय खोले गये थे, साथ ही साथ सेकेंडरी और तकनीकी विद्यालय भी खोले गये थे जिनमें पशु चिकित्सकों, मिस्त्री, ट्रैक्टर चालकों और कृषि वैज्ञानिकों के प्रशिक्षण की सुविधा थी। ग्रामीण जनसंख्या की संरचना शहरी समाज के करीब आ गयी थी। ग्रामीण समाज में इस त्वरित परिवर्तन से नई व्यवस्था से जनसंख्या के बड़े हिस्से का भारी समर्थन प्राप्त हुआ।''*

1928 से 1937 तक औद्योगिक उत्पादन प्रतिवर्ष 16.5 प्रतिशत की दर से बढ़ा। 1920 में लेनिन ने सोवियत संघ के विद्युतीकरण के लिए एक व्यापक योजना प्रस्तावित की थी। पंद्रह वर्षों बाद स्तालिन ने योजना को 230 प्रतिशत लागू कर लिया था।

कृषि का सामूहिकीकरण अभूतपूर्व रूप से व्यापक जनांदोलन था जिसने छोटे और मध्यम किसानों को पुराने भूस्वामियों के शोषण से मुक्त होने, और आधुनिक औजारों व मशीनों के प्रयोग से सामूहिक कृषि द्वारा समृद्ध होने का अवसर प्रदान किया। 1929 के आरम्भ में रूस के पास 19000 ट्रैक्टर थे। 12 वर्षों बाद 1941 में 'कोलखोज' (सामूहिक फार्म) और 'सोविरखोज' (राजकीय फार्म) को मिलाकर कुल 684,000 ट्रैक्टर थे।

जनता में ऐसी गतिमानता ने, जो इतिहास में इसके पूर्व कभी नहीं देखी गयी, मात्र बारह वर्षों में एक पिछड़े और बरबाद देश को यूरोप की सबसे ताकतवर साम्राज्यवादी शक्ति नाजी जर्मनी के बराबर ला खड़ा कर दिया। आज की तीसरी दुनिया में निजीकरण, विदेशी प्रतिबंधों और फरमानों, अनऔद्योगीकरण तथा व्यापक गरीबी का सामना कर रहा कौन ऐसा देश होगा जो स्तालिन की उपलब्धियों से ईर्ष्या नहीं करता होगा?

स्तालिन और क्रान्तिकारी बोल्शेविक पार्टी

बोल्शेविक पार्टी के नेतृत्व में ही यह सारी जीतें हासिल हुईं। 1917 में क्रान्ति की सफलता के वक्त जब पार्टी भूमिगत थी उस समय पार्टी में मात्र 30,000 तपे-तपाये क्रान्तिकारी थे। 1921 में 14 विदेशी शक्तियों के खिलाफ प्रतिरोध युद्ध के समय पार्टी में 600,000 सदस्य हो चुके थे। स्तालिन ने संगठन

और शिक्षा को अभूतपूर्व उद्वेग दिया और 1932 में, जो औद्योगीकरण व सामूहिकीकरण की सफलता के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण वर्ष था, पार्टी के पच्चीस लाख सदस्य थे। यह उस महान राजनीतिक सेना के अदम्य त्याग की भावना, जनता के प्रति समर्पण और काम करने का उत्साह ही था जिसने पिछड़ेपन के विरुद्ध लड़ने के लिए मजदूरों में जोश भर दिया।

आधुनिक क्रान्तिकारी पार्टी के सिद्धान्तों की स्थापना और पार्टी की रीढ़ का निर्माण करने वाले लेनिन थे, लेकिन वह स्तालिन ही थे जिन्होंने पार्टी को एक शानदार राजनीतिक सेना में रूपान्तरित किया और जनता को शिक्षित और प्रेरित किया।

पार्टी की निर्णायक नेतृत्वकारी भूमिका के बिना कोई भी ऐतिहासिक जीत संभव नहीं थी, चाहे वह जारशाही से स्वतंत्रता का संघर्ष रहा हो, विकास के लिए संघर्ष रहा हो अथवा फासीवाद विरोधी महान युद्ध।

स्तालिन *'सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी का इतिहास'* पुस्तक के प्रमुख लेखक थे, एक ऐसी आवश्यक पुस्तक जो आज भी दुनिया भर में क्रान्तिकारियों की नई पीढ़ी को शिक्षित करने के लिए उपयोग में लायी जाती है।

स्तालिन और अवसरवाद व घुसपैठ का घातक खतरा

सोवियत समाजवाद के अंदर उसके शत्रु पार्टी की निर्णायक भूमिका को प्रारम्भ से ही अच्छी तरह समझते थे और उसमें घुसपैठ करने और उसे अंदर से नष्ट करने के लिए उन्होंने हर संभव कोशिशें शुरू कर दीं।

युवा प्रतिक्रान्तिकारी बोरिस बोझनोव 19 वर्ष का था जब उसने 1919 में बोल्शेविक पार्टी में घुसपैठ करने का निर्णय किया। 1923 में वह कामरेड स्तालिन और पोलित ब्यूरो का सचिव बन गया। अपनी आत्मकथा में उसने बाद में लिखा :

''बोल्शेविक विरोधी सेना के सैनिक के रूप में मैंने अपने सामने शत्रु के मुख्यालय में प्रवेश करने का कठिन और खतरनाक काम रखा। मैंने अपना लक्ष्य हासिल कर लिया था।''

इसके अलावा पुराने शोषणकारी समाज की आहतें जिद्दी थीं और नये समाजवादी शासन के कुछ नेता धीरे-धीरे इनके प्रभाव में आ गये।

पार्टी के अंदर विभिन्न राजनीतिक रूझानों के बीच का संघर्ष हमेशा सोवियत संघ में व्याप्त वर्ग हितों के बीच के संघर्ष को प्रतिबिम्बित करता था। 1917 की विजय के बाद से ही बोल्शेविक पार्टी के अंदर के अवसरवादी रूझान लेनिन और स्तालिन की नीतियों का विरोध करने लगे थे।

1927 में त्रात्स्की, जिनेविएव और कामेनेव को उनकी दुश्मनाना गतिविधियों के कारण पार्टी से निष्कासित कर दिया गया। हालांकि कुछ ही समय बाद जिनोविएव और कामेनेव को वापस पार्टी में ले लिया गया। 1928 और 1930 के बीच त्रात्स्की, जिनोविएव, कामेनेव और बुखारिन ने बलात औद्योगीकरण और सामूहिकीकरण का विरोध किया। 1931 में एक बार फिर जिनोविये और कामेनेव को बोल्शेविक-विरोधी कार्यक्रम को सार्वजनिक समर्थन देने के कारण पार्टी से निकाल दिया गया। इस कार्यक्रम का बुखारिन ने पोलित ब्यूरो का सदस्य होते हुए भी समर्थन किया था।

1934 में पार्टी की 17वीं कांग्रेस हुई, यह विजय और एकता की कांग्रेस थी। करोड़ों मजदूरों के शौयपूर्ण कार्यों के दम पर हासिल विराट उपलब्धियों से अब इंकार नहीं किया जा सकता था। स्तालिन को भरोसा था कि पार्टी और जनता द्वारा हासिल की गई उपलब्धियों और प्रगति से असहमत और विरोधी तत्व सही दृष्टिकोण अपना लेंगे। निष्कासित किये गये काडरों की सदस्यता वापस देकर उनके अधिकारों को बहाल कर दिया गया। इनमें प्याताकोव, रादेक, स्मिरनोव, प्रेयोबाझेन्स्की, जिनोविएव और कामेनेव भी थे। इन सभी ने 17वीं कांग्रेस में भाग लिया और अपने वक्तव्य दिये।

यह कहा जाना चाहिए कि स्तालिन कभी संकीर्ण सोच के नहीं रहे, वह काडरों को पिछली गलतियों के लिए माफ करके उन्हें दूसरा मौका देते थे। पहली दिसम्बर, 1934 को पार्टी की कमान में दूसरे स्थान के नेता किरोव की उनके दफ्तर में हत्या कर दी गयी। हत्यारों का पता नहीं चला।

पार्टी को 1936-37 में पता चला कि किरोव के विरुद्ध षड्यंत्र एक भूमिगत संगठन ने अंजाम दिया था जिसमें जिनोविएव, कामेनेव, स्मिरनोव, रादेक और अन्य कॉडर शामिल थे और उस संगठन के त्रात्स्की के साथ भी सम्बन्ध थे।

त्रात्स्की एक ऐसे कम्युनिस्ट का प्रतिरूप था जो घोर कम्युनिस्ट-विरोधी होने की हद तक पतित हो जाता है। 1934 में उसने लिखा, ''हिटलर की विजय स्तालिन की आपराधिक नीतियों का परिणाम थी।'' ''हिटलर को उखाड़ फेंकने के लिए पहले कम्युनिस्ट इंटरनेशनल को खत्म करना होगा।''

त्रात्स्की ने नंगे शब्दों में जर्मनी को रूस पर आक्रमण करने के लिए उकसाया। 1938 में उसने लिखा''बर्लिन जानता है कि शासक गुट ने सेना और जनता को हताशा के किस स्तर तक पहुंचा दिया है। स्तालिन देश के नैतिक बल और प्रतिरोध को अभी भी लगातार कमजोर कर रहे हैं। समय आने पर स्तालिनवादी कैरियरवादी देश के साथ विश्वासघात करेंगे।'' जब नाजी सोवियत संघ पर आक्रमण की तैयारी कर ही रहे थे, त्रात्स्की ने सोवियत संघ की जनता से पार्टी और स्तालिन के विरुद्ध उठ खड़े होने का आह्वान किया। उसने घोषणा की, ''नये परजीवियों की कुख्यात तानाशाही के विरुद्ध सोवियत सर्वहारा की आवाज ही अक्टूबर क्रान्ति की उपलब्धियों में जो भी शेष हैं, उसको बचा सकती है''। त्रात्स्की की भड़काऊ भाषा जर्मनी के फासीवादियों की सीधे सेवा करती थी।

विरोधियों और घुसपैठियों के भूमिगत तंत्र की जांच के दौरान सैन्य अफसरों में ऐसे भूमिगत समूहों के बारे में ज्ञात हुआ जो तख्तापलट की तैयारी कर रहे थे। मार्शल तुखाचेव्स्की और जनरल ओसेप्यान काशीरिन और आल्सनिस उन दर्जनों सैन्य षडयंत्रकारियों में से थे जिन्हें गोली से उड़ा दिया गया। एक ओर जहां फ्रांस और बेल्जियम में बुर्जुआ वर्ग का आधिसंख्य हिस्सा आक्रान्ता शत्रु से सांठ-गांठ कर चुका था, वहीं इसके विपरीत सोवियत संघ में गद्दारों का सफाया हो चुका था।

स्तालिन द्वारा किये गये विश्वासघातियों के सफाये के बारे में, हिटलर के विस्तारवाद के विरुद्ध युद्ध के समर्थक ब्रिटेन के चर्चिल का कहना था : ''प्राग में रूसी दूतावास के माध्यम से जर्मनी की सरकार कुछ महत्वपूर्ण रूसी व्यक्तित्वों से संपर्क में थी। षड्यंत्र का उद्देश्य स्तालिन को उखाड़ फेंकना और रूस

में जर्मनीपरस्त सत्ता की स्थापना करना था। सोवियत संघ ने राजनीतिक और आर्थिक हलकों से ऐसे तत्वों का सफाया करके एक निर्मम लेकिन निस्संदेह उपयोगी काम किया है। सोवियत सेना को जर्मनी के समर्थकों से मुक्त कर दिया गया था।''

इन कार्रवाइयों के बारे में नाजी गोएबेल्स ने 8 मई 1943 को अपनी डायरी में लिखा : ''फ्यूरर ने तुखाचेव्स्की के विषय में विस्तार से बताया और कहा कि हम पूरी तरह गलत होंगे अगर हम सोचते हैं कि स्तालिन लाल सेना को बरबाद कर देगा। सच इसके विपरीत था : स्तालिन ने विरोधी तबकों को लाल सेना से निकाल बाहर किया, इस तरह यह सुनिश्चित किया कि सेना में कोई भी पराजयवादी समूह अब नहीं रह गये हैं।''

सामाजिक जनवादी बुखारिन से संशोधनवादी गोर्बाचोव तक

जहां एक ओर 1937-38 के सफाये ने नाजी आक्रमण के लिए समझौताहीन प्रतिरोध का निर्माण किया वहीं इसने उन अवसरवादी रुझानों पर भी सांघातिक प्रहार किया जिनका लक्ष्य पार्टी नेतृत्व में बहुमत हासिल कर धीरे-धीरे पूंजीवाद की ओर वापसी करना था। इस संदर्भ में 1938 का बुखारिन का मुकदमा एक ऐतिहासिक महत्व रखता है। बुखारिन उस समय का गोर्बाचोव था।

1938 में बुखारिन उन लोगों में से पार्टी का सबसे सम्मानित नेता, और सबसे ऊंचे ओहदे पर था जो साम्यवादी शासन को उखाड़ फेंकने के लिए षडयंत्र कर रहे थे। अमरीका के राजदूत जोसेफ डेविस जो मुकदमे के समय उपस्थित थे, ने लिखा : ''*मुकदमे में उपस्थित राजनयिकों की आम भावना यह है कि एक अत्यन्त गम्भीर षडयंत्र सिद्ध हो चुका है।*''

इतने प्रबल साक्ष्यों का सामना करने पर बुखारिन का कम्युनिस्ट आत्मसम्मान फूट पड़ा और उसने सब कुछ स्वीकार कर लिया। उसने राजनीतिक पतन की उस पूरी प्रक्रिया का खुलासा कर दिया जिसके तहत उस जैसे पुराने बोल्शेविक और लेनिन के सबसे प्रिय शिष्य ने सोवियत क्रान्ति के साथ विश्वासघात किया।

उसकी आत्मस्वीकृति इस अर्थ में विशिष्ट है कि पचास वर्षों बाद गोर्बाचोव के प्रति-क्रान्तिकारी गुट ने ठीक बुखारिन वाली लाइन अपनाई और इसे उसके तार्किक अंजाम तक पहुंचायापूंजीवाद की, बल्कि पूंजीवाद के सबसे माफिया जैसे रूप की पुनर्स्थापना कर डाली।

आज ''बुखारिनवादियों और त्रात्स्कीवादियों के सोवियत विरोधी गुट पर मुकदमे की सुनवाई'' की रिपोर्ट को पढ़ा जाना अत्यन्त आवश्यक है।

मुकदमे के दौरान बुखारिन, त्रास्तकी और उनके अनुयायियों पर छद्म-लेनिनवादी भाषा का प्रयोग कर समाजवादी शासन की बुनियाद पर हमला करने, रूस में समाजवाद को उखाड़ फेंकने को तत्पर ताकतों, सामंती तत्वों और पुराने बुर्जुआ वर्ग को सैद्धान्तिक मंच प्रदान कराने का आरोप लगाया गया।

त्रात्स्कीवादी और बुखारिनवादी चमकदार पदावली की आड़ में पूंजीवाद की पुनर्स्थापना की तैयारी कर रहे थे। ठीक यही गोर्बाचोव ने भी छद्म ''लेनिनवादी'' शब्दावली का प्रयोग करके किया।

बुखारिन के मुकदमे का ब्योरा यह बताता है कि इस पुनर्स्थापना को आसान बनाने के लिए विरोधी तत्वों ने साम्राज्यवादी ताकतों से सम्पर्क किया जिनमें नाजी जर्मनी भी था। आरोप पत्र में यह कहा गया है, ''बुखारिनवादी और त्रात्स्कीवादी अंतरराष्ट्रीय फासीवाद की अगुवा टुकड़ी है; वे विश्वासघातियों का एक गुट है।''

यह मुकदमा हमें याद दिलाता है कि पूंजीवाद और समाजवाद परस्पर विरोधी जानी दुश्मन हैं, और इनके रूप में दो विश्व आमने-सामने हैं। वर्ग शत्रुता का तर्क रूस के अंदर बचे रहे गये शोषण वर्ग और सीमापार के शोषकों को मजदूरों की राजसत्ता पर उग्रतर हमलों के लिए प्रवृत्त कर रहा है। ठीक इसी तरीके से गोर्बाचोव के अनुयायियों ने पचास वर्षों बाद समाजवाद के विश्वासघातियों और अमेरिकी साम्राज्यवाद व अंतरराष्ट्रीय फासीवाद की अगुवा टुकड़ियों की भूमिका निभाई। येल्तसिन के रूस में व्लासोव का फासीवादी संगठन खुले तौर पर अपनी गतिविधियां चलाता रहा।

बुखारिन के मुकदमे ने इस तत्य को रेखांकित किया कि षडयंत्रकारियों और पश्चिमी गुप्तचर संस्थाओं के बीच संबंध थे। आरोप में ये तथ्य भी शामिल थे कि बुखारिनवादी और त्रात्स्कीवादी रूस को खंडित करने व यूक्रेन और बेलारूस को अलग करने की तैयारी कर रहे थे।

आज हम इस बात को समझ सकते हैं कि गोर्बाचोव और येल्तसिन ने उसी कार्यक्रम को क्रियान्वित किया जिसके लिए उनके पूर्वजों बुखारिन और त्रात्स्की को 1938 में मौत की सजा सुनाई गयी थी। गोर्बाचोव के समय के उच्च पदस्थ नौकरशाह इस बात का दम्भ भरते रहे हैं कि वे अमेरिकी गुप्तचर संस्थाओं के साथ दर्शकों से संपर्क में थे। इसलिए यह तथ्य कि गोर्बाचोव ने 1990 में बुखारिन और त्रात्स्की को आधिकारिक तौर पर प्रतिष्ठापित किया, कोई सामान्य बात नहीं लगती। त्रात्स्कीवादी नेता अर्नेस्ट मेंडल का 1989 में यह कहना महत्वपूर्ण है : ''पेरेस्त्रोइका सही मायने में एक नई क्रान्ति है। 55 वर्षों से त्रात्स्कीवादी आंदोलन ने इसी विचार की वकालत की है, यही कारण है कि उसके ऊपर प्रतिक्रान्तिकारी होने का आरोप लगा। आज यह समझना आसान है कि सच्चे क्रान्तिकारी और सच्चे प्रतिक्रान्तिकारी कहां खड़े हैं।''

बुखारिन और त्रात्स्की 1935 के गोर्बाचोव थे, लेकिन उनका पर्दाफाश हुआ और सजा दे दी गयी। तभी सोवियत संघ फासीवादी आक्रमण के विरुद्ध अपनी रक्षा की तैयारी और समाजवाद के निर्माण को आगे बढ़ा सका।

इतिहास ने दिखा दिया है कि सम्पूर्ण समाजवादी क्रान्ति के अंदर अवसरवाद और घुसपैठ अंदरूनी खतरों के रूप में मौजूद थे। त्रात्स्की, जिनोविएव और बुखारिन के रूप में अवसरवादियों की एक श्रृंखला थी जो देश के अंदर प्रतिक्रान्तिकारियों और देश के बाहर फासीवादियों से जुड़ी हुई थी। स्तालिन और पार्टी के नेतृत्व में गोलबंद क्रान्तिकारी मजदूरों, किसानों और बुद्धिजीवियों ने उन्हें कुचलकर रख दिया। भितरघातियों से मुक्त सोवियत संघ बर्बर फासीवादी ताकतों को पराजित कर सका। सोवियत जनता ने न केवल अपनी आजादी के लिए वीरतापूर्ण संघर्ष किये बल्कि उन सभी की आजादी के लिए लड़ी जो फासीवाद और उपनिवेशवाद कुचले गये थे। इन ऐतिहासिक संघर्षों में दो करोड़ सत्तर लाख से ज्यादा सैनिकों और नागरिक योद्धाओं की जानें गईं। एक नये विश्व की रचना के लिए

इससे पहले कभी भी इतनी महान और निर्णायक लड़ाई नहीं लड़ी गई। महान स्तालिन के निधन की पचासवीं बरसी पर बुर्जुआ मीडिया द्वारा पोसे गये भ्रष्ट और नशीले झूठ से जांबाजों के खून से लिखे गये सत्य का एक अंश भी नहीं बदलेगा।

स्तालिन और अंतरराष्ट्रीय फासीवाद विरोधी गठबंधन

स्तालिन ने न सिर्फ सोवियत संघ के अंदर कार्यरत नाजियों से जुड़े भितरघातियों को नष्ट किया बल्कि 1935 से फासीवाद विरोधी अंतरराष्ट्रीय ताकतों और देशों के गठबंधन को भी समर्थन दिया। 1935 में सोवियत संघ ने जर्मन और इतालवी फासीवादी विस्तारवाद के विरुद्ध यूरोप में एक सामूहिक सुरक्षा तंत्र के गठन का प्रस्ताव रखा। 1936 में जब फासीवादी ताकतों ने स्पेन में हस्तक्षेप कर जनरल फ्रांको की फासीवादी तानाशाही स्थापित करने में मदद की, तो लोकतांत्रिक ताकतों, ब्रिटेन और फ्रांस ने तटस्थता की नीति अपनाई और सोवियत प्रस्ताव को नकार दिया। फिर ब्रिटेन और फ्रांस ने म्यूनिख में फासीवादी ताकतों से समझौता किया और चेकोस्लोवाकिया के सुडेटनलेड के क्षेत्र को जर्मनी को सौंप दिया था। हिटलरी जर्मनी ने ग्रेट ब्रिटेन के साथ समझौता किया कि वे एक दूसरे के विरुद्ध युद्ध नहीं छेड़ेंगे। एक सामूहिक रक्षा तंत्र के गठन के लिए स्तालिन की लगातार अपील अप्रभावी रही : यहां तक कि ब्रिटेन और फ्रांस ने हिटलर को मार्च 1939 में पूरे चेकोस्लाविया पर कब्जा कर लेने दिया। वास्तव में, वे हिटलर को पूर्वी यूरोप में लड़ाई छेड़ने के लिए उकसा रहे थे।

जून 1939 से अगस्त 1939 तक, फासीवाद विरोधी गठबंधन के लिए अंतिम मिनट तक रूस से ब्रिटेन और फ्रांस से बातचीत चलायी। लेकिन जुलाई में, ब्रिटिश प्रधानमंत्री चेम्बरलेन की हिटलर के साथ गुप्त बातचीत हुई जिसको यह वादा करते हुए कि वह स्तालिन से संबंध विच्छेद कर लेगा, उसने हिटलर को पूर्वी और दक्षिण पूर्वी यूरोप में कार्रवाई करने की छूट दे दी। अगस्त 1939 में स्तालिन समझ गये कि लंदन और पेरिस ने हिटलर को पोलैण्ड पर कब्जा कर लेने देने का निर्णय ले लिया है ताकि हिटलरी फौजों के रूस तक पहुंचने के लिए रास्ता साफ हो जाये।

हिटलर रूस, फ्रांस और ब्रिटेन को युद्ध में हराने के लिए दृढ़ था। लेकिन वह एक साथ दो मोर्चों पर युद्ध नहीं चाहता था। वह चाहता था कि या तो फ्रांस और ब्रिटेन के विरुद्ध युद्ध हो या अकेले रूस के विरुद्ध। एक रणनीतिकार के रूप में उसने अपने कमजोर शत्रुओं से लड़ने और उन्हें हराने को प्राथमिकता दी। वह जानता था कि रूस के विरुद्ध लड़ाई निर्णायक और भयंकर होगी, क्योकि यह दो दुनियाओं की लड़ाई थी। हिटलर जानता था कि ब्रिटेन और फ्रांस में उसके कई मित्र और समर्थक हैं। 20 अगस्त को उसने सोवियत संघ के साथ अनाक्रमण संधि का प्रस्ताव रखा। नाजी बर्बरता का अकेले ही सामना करने की संभावना के कारण स्तालिन ने इसे तुरन्त स्वीकार कर लिया।

ब्रिटिश और फ्रांसीसी साम्राज्यवादी भी हिटलर का प्रयोग सोवियत संघ को नष्ट करने के लिए करना चाहते थे थे, अपने ही जाल में फंस चुके थे। हिटलर ने सोचा कि वह पहले फ्रांस, बेल्जियम और ब्रिटेन को फिर स्तालिन के विरुद्ध पूरे यूरोप की सैन्य शक्ति के साथ हमला बोलेगा।

रूस को अपनी सुरक्षा को निर्णायक रूप से मजबूत कराने के लिए 21 महीने का समय मिल गया। जर्मनी, जापान और इटली की धुरी ताकतों के विरुद्ध फासीवाद विरोधी मोर्चे के निर्माण और उसकी विजय के लिए यह एक निर्णायक कारक साबित हुआ।

महान फासीवाद विरोधी युद्ध में स्तालिन की निर्णायक भूमिका

पूरे युद्ध के दौरान, विशेषतः सबसे कठिन पहले वर्ष में, स्तालिन के धैर्य, दृढ़निश्चय, और कुशलता ने पूरे रूस की जनता को प्रेरित और प्रोत्साहित किया। निराशा के क्षणों में, स्तालिन ही थे जिन्होंने अंतिम विजय में विश्वास कायम रखा।

25 अक्टूबर 1941 को नाजी सेना मास्को के प्रवेशद्वार पर थी। स्तालिन ने हिटलर की फौजों को नजरंदाज करके लाल चौक में पारम्परिक सैन्य परेड की, जहां उन्होंने ऐतिहासिक भाषण दिया जिसे पूरे देश में प्रसारित किया गया। इसने उक्रेन के छापामारों को भावविह्वल कर दिया : स्तालिन कहते हैंहम जीतेंगे, और जीतेंगे हम ही।

आने वाले हफ्तों में नाजी सेना मास्को के बाहरी इलाकों में प्रवेश कर गयी, लेकिन स्तालिन शांतचित्त शहर में ही डटे रहे और गुपचुप ढंग से सात लाख सैनिकों को जमा करने के काम में जुटे रहे।

नाजियों के विरुद्ध सोवियत संघ की विजय का आधार 1928 से 1941 के बीच स्तालिन की महान उपलब्धियों में खोजा जा सकता है। उस व्यक्ति की पचासवीं वर्षगांठ पर जिसने हिटलर को पराजित किया, इन्हीं भव्य उपलब्धियों के बारे में नये और पुराने फासीवादी कहते हैं आतंक अंधी हत्यायें, विध वंस...। यह देखना मुश्किल नहीं है कि ये बुर्जुआ पत्रकार हमारे समय के फासीवादियों की चापलूसी करके बचते हैं कि इससे उन्हें अधिक सम्मान और ओहदा मिलेगा।

फासीवाद विरोधी महान युद्ध के सबसे प्रतिभावान वरिष्ठ अधिकारी मार्शल झुकोव ने बाद में धूर्त ख्रुश्चेव का साथ दिया, लेकिन कुछ वर्षों बाद उन्होंने ख्रुश्चेव के झूठों को गलत ठहराने के लिए स्तालिन का यह मूल्यांकन प्रस्तुत किया :

एक अत्यन्त विकसित उद्योग, सामूहिक कृषि, सारी जनता के लिए सार्वजनिक शिक्षा, देश की एकता, समाजवादी राज्य की ताकत, लोगों के बीच देशभक्ति की उत्कट भावना, नेतृत्व जो पार्टी के माध्यम से लड़ाई के मोर्चे पर और मोर्चे से इतर एकता बनाने में सक्षम रहा, साथ ये सभी तत्व फासीवाद के विरुद्ध संघर्ष में महान विजय का कारण रहे।

सोवियत उद्योग ने बड़ी संख्या में हथियारों के उत्पादन में खुद को सक्षम सिद्ध किया। तकरीबन 490,000 बंदूकें व मोर्टार, 102000 से अधिक टैंक व स्वचालित तोपें, 137000 लड़ाकू विमानये दिखाते हैं सैन्य दृष्टिकोण से आर्थिक आधार काफी सुदृढ़ था।''

प्रतिक्रान्तिकारी और विश्वासघाती ख्रुश्चेव ने यह लिखने का दुस्साहस किया कि स्तालिन न किसी पर विश्वास करते थे और न किसी की सलाह लेते थे। वास्तव में, इतिहास के इस सबसे महान युद्ध में स्तालिन के पास कामों की भरमार थी, जिसमें आदेशों पर हस्ताक्षर करने के लिए सामूहिक बौद्धिक क्षमता का प्रयोग किया। स्तालिन की कार्यशैली हमेशा जनवादी रही। वे हर विरोधी दृष्टिकोण को सुनते, सभी

उपयोगी सुझावों की एकत्रित करने और सभी उपयोगी विचारों का समाहार करते थे।

1942 से सैन्य प्रमुख वसीलेव्सकी ने लिखा कि स्तालिन जब भी किसी काम की तैयारी करते थे, तो हमेशा कमांड अधिकारियों को बुला लेते थे, जिससे कि आवश्यक जानकारियां और सुझाव लिये जा सकें, और उन्हें और उन्हें लिये गये निर्णय की प्राथमिक रूपरेखा दी जा सके। उन्होंने लिखा है : ''स्तालिन हमेशा सामूहिक तर्कणा पर भरोसा करते थे।''

उपसेना प्रमुख जनरल श्तेमेंको ने भी ख्रुश्चेव के झूठे आरोपों को गलत ठहराते हुए लिखा''स्तालिन युद्ध के महत्वपूर्ण प्रश्नों पर न तो खुद ही निर्णय लेते थे और न वे ऐसा चाहते थे। इस संश्लिष्ट क्षेत्र में सामूहिक काम की महत्ता को वे अच्छी तरह समझते थे। वे संबंधित क्षेत्र के विशेषज्ञ की राय जरूर लेते थे।''

प्रथम स्टाफ प्रमुख झुकोव ने इसे प्रमाणित किया : ''जोसेफ स्तालिन ऐसे व्यक्ति नहीं थे जिनके समक्ष कठिन समस्यायें नहीं उठाई जा सकती थीं, जिनके साथ विचार-विमर्श नहीं किया जा सकता था या पूरी ऊर्जा से वकालत नहीं की जा सकती थी। अगर कुछ लोगों की राय इसके विपरीत हैं तो मैं कहूंगा कि उनकी मान्यताएं गलत हैं। स्तालिन की विद्वता महान थी और स्मृति अद्भुत। उनके पास बहुत तीक्ष्ण नैसर्गिक बुद्धि था और वह अद्भुत रूप से ज्ञानी थे। वह ध्यान से सुनते थे, कभी-कभी प्रश्न भी पूछते, फिर जनाब देते थे। जब विचार-विमर्श समाप्त हो जाता तो वे सटीकता से निष्कर्षों को सूत्रबद्ध कर देते थे।''

1945 में अमेरिका ने हिटलर का झण्डा उठा लिया

जर्मन, जापानी और इतालवी फासीवाद ताकतों की पराजय के तुरन्त बाद दुनिया पर, वर्चस्व कायम करने का हिटलरी स्वप्न अमेरिका ने अपना लिया और इसके लिए उसने भारी संख्या में पुराने नाजियों को अपने साथ ले लिया।

जर्मनी में अमेरिकी सेना की गर्वनर रहे राबर्ट मर्फी ने 1945 में लिखा *"जनरल पैटन वैफन एसएस की दो टुकड़ियों को फिर हथियारबंद कर अमेरिका की तीसरी सेना में शामिल करके लाल सेना के विरुद्ध भेजना चाहते थे। उसने मुझे बताया'हम लाल सेना को वापस रूस भेज सकते हैं। अपनी जर्मन सेनाओं के साथ हम ऐसा करने में सक्षम हैं।'"* पैटन ने यह डींग हांकी थी कि वह तीस दिनों के अंदर ही मास्को पहुंच सकता है।'' युद्ध के दौरान नाजी जनरल गेहलेन रूस में नाजी खुफिया तंत्र का प्रमुख था। मई 1945 में उसने अमेरिकियों के आगे आत्मसमर्पण कर दिया। समझौते के अनुसार गेहलेन को अमेरिकियों द्वारा सोवियत संघ को सौंपा जाना था, चूंकि वह उन अपराधियों की सूची में मुख्य था जिसकी सोवियत संघ को तलाश थी। लेकिन उसने खुद गुप्तचर विभाग के प्रमुख एलेन डुलेस से समझौता वार्ता की। समझौते के अनुसार गेहलेन ने सोवियत संघ के बारे में सभी गुप्त सूचनायें अमेरिका को सौंप दीं और अमेरिका के नेतृत्व में रूस में अपने पुनाने खुफिया तंत्र को पुनर्जीवित कर लिया। कुछ ही समय बाद गेहलेन संघीय जर्मन गणराज्य (पश्चिमी जर्मनी) के खुफिया विभाग का पहला प्रमुख बना जहां उसने अमेरिकी आदेश के तहत साम्यवाद विरोधी वही लड़ाई जारी रखी जो उसने हिटलर के नेतृत्व में लड़ी थी।

युद्ध के दौरान अमेरिकी गुप्तचर विभाग का प्रमुख था जान लाफ्टसन, जिसकी जिम्मेदारी थी अमेरिका में आने वाले हर पूर्व नाजी पर नजर रखना। 1944 से अमेरिका की अन्य गुप्तचर सेवाएं पूर्व नाजियों के देश में लाने का हर संभव प्रयास कर रही थीं। अपनी पुस्तक में लाफ्टसन ने अनुमान लगाया है कि अमेरिका में स्थापित पूर्व नाजियों की संख्या 10,000 के आसपास थी। शीत युद्ध में जर्मन, उक्रेनी, लातवियाई और रूसी पूर्व नाजियों को महत्वपूर्ण भूमिका निभानी थी। इनमें से कुछ कुख्यात नाजी अपराधी थे जो 130,000 मौतों के जिम्मेदार थे जैसे क्लौस, बार्बी, एलोइस ब्रूनर, ओटो डान बोल्शविग, आइशमान के सहयोगी आदि।

1945 से अमेरिका ने सर्वाधिक आक्रमणकारी और युद्धकारी शक्ति के रूप में हिटलर के जर्मनी का स्थान और भूमिका अपना ली।

अमेरिका ने बिना किसी सैन्य कारण के हिरोशिमा और नागासाकी पर परमाणु बमों का प्रयोग किया। जापानी सेना को चीन में लाल सेना ने कुचल दिया था। हिरोशिमा और नागासाकी पर बम मूलतः स्तालिन को यह दिखाने के लिए गिराये गये थे कि अमेरिका क्या कुछ कर सकता है। अंग्रेज फील्डमार्शल एलन ब्रुक ने चर्चिल की इस सोच की पुष्टि की थी कि वह सोवियत संघ के औद्योगिक केन्द्रों को नष्ट करने में सक्षम है।

ग्रीस की जनता ने एक संगठित फासीवाद विरोधी क्रान्तिकारी सशस्त्र सेना का निर्माण कर जर्मन फासीवादियों से खुद को मुक्त कर लिया। ग्रीस की मुक्ति के बाद ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने एथेंस पर कब्जा कर लिया और देशभक्तों से लड़ने के लिए नाजी जर्मनी के पुराने समर्थकों से अपना नाता जोड़ लिया।

कोरिया में, राष्ट्रवादी और कम्युनिस्ट ताकतों ने जापानी सेना को माओ त्से-तुङ के चीन और सोवियत संघ की सहायता से पराजित कर दिया था।

अमेरिकी कोरिया के दक्षिणी हिस्से में जहाज से उतरे जहां फासीवाद के समर्थकों को जेल से निकाला गया और अमेरिकी दुमछल्लों की अगुवाई में दक्षिण कोरिया का गठन किया गया।

अमेरिका का 1950 में कोरिया के विरुद्ध युद्ध एक कम्युनिस्ट विरोधी आम लड़ाई का प्रस्थान बिन्दु था। एक बार कोरिया को हराने के बाद अगला लक्ष्य चीन होता। अमेरिका के आधिपत्य में चीन सोवियत संघ के विरुद्ध युद्ध के लिए मुख्य आधार बन जाता, जिस पर पश्चिम जर्मनी से भी आक्रमण किया जा सकता था।

अमेरिका के कोरिया पर आक्रमण के समय जारी सोवियत संघ का घोषणापत्र आज फिर से प्रासंगिक हो उठा है :

''अगर साम्राज्यवादी तीसरा विश्व युद्ध छेड़ते हैं तो वह अलग-अलग पूंजीवादी राज्यों की ही मौत नहीं बल्कि समूचे विश्व पूंजीवाद की मौत साबित होगा।'' कोरिया पर अमेरिकी आक्रमण के विरुद्ध विश्व शान्ति परिषद के नेतृत्व में पूरी दुनिया में जो महान आंदोलन उभरा वह इसके पहले कभी देखने में नहीं आया था।

50 करोड़ लोगों ने आम निरस्त्रीकरण और परमाणविक हथियारों पर प्रतिबंध लगाने

के लिए स्टाकहोम अपील पर हस्ताक्षर किये। अमेरिकी आक्रमणकारियों ने 30 लाख कोरियाइयों की जान ली, लेकिन विजय प्रतिरोध युद्ध की ही हुई, वह प्रतिरोध युद्ध जिसका नेतृत्व कामरेड किम इल सुंग और कोरिया की वर्कर पार्टी ने किया, जिसका समर्थन समाजवादी चीन, सोवियत संघ और युद्ध के खिलाफ विश्वव्यापी अभियान ने किया। अमेरिका के सोवियत संघ चीन में समाजवादी सत्ताओं के सफाये की योजना को छोड़ना पड़ गया।

सोवियत संघ में प्रतिक्रान्ति से अमेरिकी युद्धों के विरुद्ध वैश्विक मोर्चे तक

कामरेड स्तालिन की दुखद मौत से लेकर अब तक घटनाओं और उलटफेरों से समृद्ध पचास वर्ष बीत चुके हैं। त्रात्स्की, जिनोविएव और बुखारिन के उत्तराधिकारी के रूप में ख्रुश्चेव के नेतृत्व में एक संशोधनकारी समूह सत्ता पर काबिज हो गया। जिससे भ्रष्ट राजनीति और विचारधारा का पतन खुलकर सामने आ गया। समाजवाद से गहराई से जुड़ी सोवियत जनता से विश्वासघात करने के लिए कम्युनिस्ट ले आने का वादा किया। ब्रेझनेव के राज में असैनिक क्षेत्र पीछे छूट गया और उसमें पूंजीवादी तौर-तरीकों की घुसपैठ हो गयी। पार्टी नेतृत्व की संरचना में क्रमिक उत्तरोत्तर पतन साथ-साथ एक ऐसी समान्तर अर्थव्यवस्था का विकास हुआ जो स्पष्टतः पूंजीवाद ही था। सोवियत संघ अभी भी एक महान ताकत था जो अमेरिकी साम्राज्यवाद की सर्वाधिक आक्रमणकारी नीतियों का प्रतिरोध करने में सक्षम था। तीसरी दुनिया के क्रान्तिकारी संघर्षों ने भी साम्राज्यवाद के लिए दिक्कतें पैदा कर दीं। इनमें वियतनाम का विजयी युद्ध, अंगोला का मुक्तियुद्ध, तेल उत्पादक देशों और अन्य कच्चा माल पैदा करने वाले देशों का संघर्ष शामिल था। 1991 में सोवियत संघ धराशायी हो गया। इस पतन का बुर्जुआ वर्ग द्वारा विजयी भाव से स्वागत किया गया और उसने कम्युनिज्म और इतिहास के अंत की घोषणा कर दी।

लेकिन, इतिहास हमें द्वंद्वात्मकता की शिक्षा देता है, जैसा कोई भी प्रोफेसर नहीं पढ़ा सकता। 1989-91 में प्रतिक्रान्ति ने सोवियत संघ में एक ऐसे पूंजीवाद की बहाली की जो अपने पूर्ण विकसित माफिया के रूप में सामने आया। लेकिन साथ ही साथ उसने यह भी सिद्ध कर दिया कि पूंजीवाद का कोई भविष्य नहीं है। साम्राज्यवाद ने वादा किया था कि पूंजीवाद पूर्व सोवियत संघ में आश्चर्यजनक परिवर्तन लायेगा। वह इतिहास का अंत था।

खैर इतिहास के अंत के उपहारस्वरूप सोवियत जनता को एक ऐसी महाविपदा का सामना करना पड़ा जैसा किसी भी बड़े औद्योगिक राष्ट्र नहीं भुगता था। 1990 की तुलना में 1999 में रूस में औद्योगिक उत्पादन 41 प्रतिशत और यूक्रेन में 58 प्रतिशत नीचे गिर गया। 12 वर्षों में रूस की जनसंख्या में 1.2 करोड़ निवासी कम हो गये। प्रतिक्रान्ति के बाद से मृत्यु दर में 33 प्रतिशत की वृद्धि हुई और जन्म दर में 40 प्रतिशत की गिरावट आई है। आज रूस में 40 लाख बेसहारा बच्चे हैं। यह ऐसी परिस्थिति है जिसके बारे में समाजवादी शासन के दौरान सोचा भी नहीं जा सकता था। 1985 में सेकेण्डरी शिक्षा में उपस्थिति करीब 100 प्रति थी जो आज 75 प्रतिशत रह गई है।

विजेता पूंजीवादी खेमे में इतिहास का अंत एक अलग ही मोड़ लेता है। भीषण आर्थिक संकट बारी-बारी से लगभग हर 'मॉडल' राष्ट्र में आता है। जापान, मेक्सिको, दक्षिण-पूर्वी एशिया, रूस, ब्राजील...सभी जगह मंदी छा जाती है।

आज हम वैश्विक स्तर पर भारी परिमाण में पूंजी के संकेन्द्रण को देख सकते हैं। विश्व अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों को 5 से लेकर 10 बड़े बहुराष्ट्रीय निगम संचालित कर रहे हैं। वे शोषण को बढ़ाते जाते हैं, मजदूरों की संख्या को घटाते जाते हैं, और इस तरह उत्पादकता में अभूतपूर्व वृद्धि होती जाती है। यह सब बहुत ही विध्वंसक तरीके से पूंजीवादी व्यवस्था के मूलभूत असमाधेय अंतर्विरोधों के रूप में प्रतिबिम्बित होता हैअनियंत्रित उत्पादन क्षमता और सिकुड़ते बाजारों के बीच का अंतरविरोध।

विश्व अर्थव्यवस्था को झकझोर कर रख देने वाले इन संकटों से बच निकलने के लिए अमेरिकी बहुराष्ट्रीय निगम वही इकलौता रास्ता अपना रहे हैं, ऐसी स्थितियों में जो पूंजीवाद के सामने होता है। वे शस्त्रों के उत्पादन में तेजी से ला रहे हैं। जिससे शत्रुओं को कुचलकर उनके कच्चे माल और बाजारपर कब्जा किया जा सके। यह विश्व युद्ध के लिए मार्ग प्रशस्त करता है। पिछले दो विश्व युद्ध द्वेष के कारण नहीं लड़े गये बल्कि उनका कारण साम्राज्यवादी व्यवस्था में निहित राजनीतिक और आर्थिक नियम हैं। आज अभूतपूर्व आर्थिक संकट के सामने खड़ा अमेरिका वापस 1945-1953 के दौर में लौट गया है जब उसने जर्मन नाजियों के बैनर तले अपना वर्चस्व कायम करने का प्रयास करके कोरिया, चीन और सोवियत संघ के विरुद्ध तीसरे विश्व युद्ध की तैयारी करनी शुरू कर दी थी।

आज हालांकि विश्व की जनता बीसवीं शताब्दी की महान क्रान्तिकारी विजयों और अवसरवाद के कारण हुई पराजयों से काफी कुछ सीख चुकी है।

2003 में विश्व की जनता के नंबर एक शत्रु अमेरिकी वर्चस्ववाद के खिलाफ अभूतपूर्व विश्व मोर्चा खड़ा हो चुका है। यह 1941 में बर्लिन-टोक्यो-रोम की फासीवादी धुरी के मुकाबले ज्यादा ताकतवर, बड़ा और ज्यादा अंतरराष्ट्रीय चरित्र का है।

आज कामरेड स्तालिन की मृत्यु की 50वीं बरसी पर वे सभी राजनीतिक बौने जो अमेरिकी बुर्जुआ वर्ग के टुकड़ों पर पलते हैं, 1941-1953 के क्रान्तिकारियों पर जहर उगल सकते हैं। लेकिन इससे बुश के फासीवाद और हजार सालों तक चलने का मंसूबा पालने वाली अमेरिकी हिटलरशाही की स्थापना के लिए छेड़े जाने वाले विश्वयुद्ध की उन्मादी योजनाओं के खिलाफ युद्ध विरोधी और साम्राज्यवाद विरोधी आन्दोलनों को उठ खड़े होने से नहीं रोका जा सकता जिनका इतिहास में कोई सानी नहीं होगा।

साम्राज्यवादी भूमण्डलीकरण के खिलाफ करोड़ों आन्दोलनकारियों को संघर्ष के अनुभव और बीसवीं सदी के क्रान्तिकारी इतिहास से निश्चय ही दिशानिर्देश प्राप्त होगा।

1932 और 1953 के बीच कामरेड स्तालिन द्वारा फासीवादी ताकतों ओर अमेरिकी वर्चस्ववाद के खिलाफ विकसित की गयी रणनीति और रणकौशल उन सभी के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण सन्दर्भों का काम कर सकते हैं जो शान्ति, स्वतंत्रता, नियोजित और सन्तुलित विकास और समाजवाद की विजय के लिए कटिबद्ध हैं।

अनु. **अभिषेक**

('ललकार' से साभार)

इराक : संगठित और व्यापक होता प्रतिरोध संघर्ष

सत्यप्रकाश

महाविनाश के भयंकर हथियारों के दम पर इराक में भारी तबाही मचाने के बाद अमेरिकी-ब्रिटिश गठबंधन ने वहां कब्जा तो कर लिया लेकिन इराकी जनता की जबर्दस्त गुरिल्ला लड़ाई ने उसके छक्के छुड़ा दिये हैं। इराक की तेल सम्पदा की लूट के लिए पहुंचे अमेरिकी बन्दर की मुट्ठी तेल से भरे घड़े के मुंह में फंस गयी है।

बेहाल अमेरिकी सैनिकों पर हमलों की संख्या और उनकी मारक क्षमता हर दिन बढ़ती जा रही है। अमेरिकी सैन्य कमान के मुताबिक इराक में उसके सैनिकों पर रोज औसतन 35 हमले होते हैं। इराकी लड़ाके पहले घर में बने बमों और बारूदी सुरंगों या छोटे हथियारों का इस्तेमाल करते थे। पर अब वे राकेट से दागे जाने वाले ग्रेनेड, विस्फोटकों से भरी गाड़ियों और छोटी मिसाइलों का इस्तेमाल करने लगे हैं। नवम्बर में तीन अमेरिकी हेलीकाप्टरों को ध्वस्त करके और 75 से अधिक विदेशी सैनिकों को मारकर इराकी छापामारों ने बता दिया है कि आने वाले दिन अमेरिकी कब्जावरों के लिए कैसी सौगात लेकर आयेंगे!

अमेरिकी अधिकारी बार-बार बेशर्मी से यह दुहरा रहे हैं कि ये हमले सद्दाम हुसैन के बचे-खुचे समर्थकों ने किये हैं जिनका जल्दी ही सफाया कर दिया जायेगा। लेकिन ऐसे हर दावे के बाद हमलों की तादाद और दायरा बढ़ता ही जाता है। सद्दाम हुसेन के बेटों के मारे जाने के बाद हमले कम होने के बजाय और बढ़ गये। हेलीकाप्टर गिराये जाने के बाद इराक के अमेरिकी गवर्नर पाल ब्रेमर कातर होकर चिल्लाये कि ईरान और सीरिया से आने वाले बाहरी लोग ये सब गड़बड़ी कर रहे हैं। अमेरिकी नेतृत्व यह स्वीकार करने को तैयार नहीं है कि बढ़ता प्रतिरोध इराक की धरती पर उनके अवैध कब्जे का परिणाम है और इसे चलाने के लिए किसी बाहरी ताकत की जरूरत नहीं है। लेकिन असलियत से आंखें चुराना अब साम्राज्यवादी मीडिया के लिए भी मुश्किल होता जा रहा है। एसोसिएटेड प्रेस जैसी अमेरिकी समाचार एजेंसियां इराकी छापामारों के लिए अब आतंकवादी के बजाय 'प्रतिरोध योद्धा' जैसे शब्द इस्तेमाल करने लगी हैं।

भारी सुरक्षा वाले बगदाद के होटल में अमेरिकी रक्षा उपमंत्री पाल वोल्फोविट्ज पर हुआ हमला प्रतिरोध की ताकतों के बढ़ते हौसले को दर्शाता है। इन कार्रवाइयों से अमेरिकी शासकों में उपजी बदहवासी को इस तथ्य से समझा जा सकता है कि इराक में सुरक्षा की स्थिति लगातार सुधरने के शीर्ष अधिकारियों के आश्वासनों के बावजूद संयुक्त राष्ट्र और दूसरी एजेंसियों के कार्यकर्ता वहां से पलायन कर रहे हैं। पिछले दिनों कई अमेरिकी ठेकेदारों की हमलों में मौत के बाद तो लूट के माल में हिस्सा लेने पहुंची अमेरिकी कम्पनियों के अफसरों की हवा खराब है। ये अलग बात है कि जबर्दस्त मुनाफे की गन्ध इन लालची कुत्तों को लार टपकाते हुए खींचकर वहां लाती ही रहेगी।

अमेरिकी अफसर और मीडिया बार-बार दावे कर रहे हैं कि छापामार कार्रवाइयां बस मध्य इराक में 'सुन्नी त्रिभुज' कहलाने वाले इलाके तक सीमित हैं। लेकिन हमलों का दायरा फैल रहा है। उत्तरी इराक के कुर्द इलाके के सबसे बड़े शहर मोसुल और आसपास गठबन्धन सेनाओं पर कई हमले हुए हैं। शिया बहुल दक्षिणी इराक का प्रमुख शहर करबला भी प्रतिरोध संघर्ष का एक केन्द्र बनकर उभर रहा है।

सबसे बड़ी बात यह है कि ये हमले अब अलग-अलग छिटपुट होने वाली कार्रवाइयों तक ही सीमित नहीं हैं बल्कि संगठित और सुनियोजित गुरिल्ला युद्ध का रूप लेने लगे हैं। काफी पहले ही इस बात के संकेत मिलने लगे थे कि विभिन्न गतिविधियों को कोई भूमिगत ताना-बाना संगठित कर रहा है। कारों के हार्न बजाकर या फिर रंगीन रोशनी वाले राकेट हवा में छोड़कर दुश्मन सेनाओं के काफिले की आवाजाही की जानकारियां दी जाती थीं। ऐसे कई और खुफिया तरीकों की जानकारी छिटपुट खबरों में मिली थी। लेकिन अभी अमेरिकी गवर्नर के कार्यालय द्वारा तैयार एक आन्तरिक रिपोर्ट में इस बात पर गहरी चिन्ता प्रकट की गयी है कि छापामार हमले काफी योजनाबद्ध ढंग से किये गये लग रहे हैं।

इसमें शक नहीं कि इराक में कई किस्म की ताकतें हमलावर फौजों से लड़ रही हैं। इनमें देशभक्त इराकी जनता है जो अपनी मिट्टी से प्यार और साम्राज्यवाद से रग-रग से नफरत करती है; सद्दाम के वफादार लोग हैं जो अपनी खोई सत्ता की वापसी के लिए लड़ रहे हैं; सद्दाम के निरंकुश शासन में सताये गये वे लोग हैं जो पश्चिमी ढंग के लोकतंत्र की चाहत रखते हैं; इस्लामी कट्टरपंथी ताकतें हैं, और कम्युनिस्ट शक्तियां हैं जिनका सद्दाम हुसैन ने क्रूरता से दमन किया था। लेकिन ये सब इस सवाल पर एक हैं कि अमेरिकी नेतृत्व में वहां काबिज हमलावरों को अपनी धरती से खदेड़ना होगा ताकि इराक के भविष्य का फैसला खुद इराकी जनता कर सके। इस मकसद से इराक में एक ढीला-ढाला मगर ताकतवर और विस्तृत गठबंधन आकार ले रहा है। अमेरिकी प्रशासन ऊपरी तौर पर इसके अस्तित्व से इंकार करता है लेकिन इस असलियत की जानकारी से उसकी नींद हराम है।

बौखलाये अमेरिकी शासकों के पास एक ही जवाब है। सैन्य ताकत का और भी पागलपनभरा इस्तेमाल। युद्ध खत्म होने की बुश की घोषणा के सात महीने बाद अमेरिकी सेना ने इराक में एक बार फिर टैंकों और भारी हथियारों से इराकी जनता के खिलाफ हमला बोल दिया है। छापामारों के साथ ही उनके साथ सहानुभूति रखने का शक भी होने पर आम नागरिकों को बख्शा नहीं जा रहा है। अमेरिकी सैनिकों के मारे जाने की खबरें तो मीडिया में आ रही हैं लेकिन युद्ध खत्म होने के बाद भी इराक में कितनी बड़ी संख्या में आम नागरिक मारे जा रहे हैं इसके ब्योरे बहुत कम आते हैं। प्रसिद्ध पत्रकार राबर्ट फिस्क ने करीब डेढ़ महीना पहले लिखा था कि युद्ध के बाद से अमेरिकी और ब्रिटिश सैनिकों के हाथों कम से कम दस हजार

पेज 59 पर जारी

क्या हम पहले भी यह सब देख चुके हैं?

कभी-कभी हम किसी मामले में इस कदर शामिल होते हैं कि हम यह देख ही नहीं पाते कि हम वाकई कहां खड़े हैं। खास तौर पर, युद्ध या अन्य राष्ट्रीय आपातस्थितियों में ऐसा ही होता है।

भय या संकट के समय में प्रायः हम विवेक और पश्चदृष्टि के साथ क्रिया करने के बजाय प्रतिक्रिया करते हैं।

अगर हम यह देखें कि पर्ल हार्बर के बाद अमेरिकियों ने जापानी मूल के अपने साथी नागरिकों के साथ क्या व्यवहार कियाहजारों को बर्बर यातना शिविरों में ठूंस दिया गया तो हमें थोड़ा-सा अंदाज होगा कि भय किस प्रकार मस्तिष्क को संकुचित कर देता है।

अब 9-11 के बाद के अमेरिका पर नजर डालें : यातना शिविरों में बन्द सैकड़ों लोग जो वकीलों, परिवारों, हरेक से कटे हुए हैं; दर्जनों आत्महत्या कर चुके हैं; देश भर की जेलों में बंदी हजारों नागरिक और अनागरिकआव्रजन संबंधी आरोपों में गिरफ्तार! जज आहें भरते हैं कि उनके हाथ बंधे हुए हैं और मुख्य न्यायाधीश ऐसी सूक्तियां उच्चरित करता है कि 'युद्ध काल में, कानून खामोश रहता है', और हमारी आंखों के सामने संविधान के चिथड़े कर दिये जाते हैं। चौथा संशोधन एक दूर की याद भर रह गया है; खुफिया एजेंसियां टेलीफोन टेप कर रही हैं, ईमेल पढ़ रही हैं, कम्प्यूटरों में ताक-झांक कर रही हैं और घर-घर में जासूसी का जाल बिछा रही हैंऔर यह सब कुछ 'पेट्रियट एक्ट' के नाम पर हो रहा है! अमेरिकियों को अब भी भय ने जकड़ रखा है, और सरकार अपना शिकंजा कसे जा रही है।

हाल ही में मैंने एक लेख पढ़ा जिसमें इससे मिलती-जुलती ऐतिहासिक घटनाओं का ब्योरा था, इतनी ज्यादा मिलती-जुलती कि हैरत से मेरी सांस अटक गयी।

लेखक एक नेता (अनिर्वाचित) का जिक्र करता है जो एक ध्वस्त इमारत के मलबे के सामने खड़ा हुआ और इसे "ईश्वर का संकेत" और "इतिहास के एक महान युग" का चिह्न बताया। इमारत के ध्वंस को "उग्रवादियों" और "आतंकवादियों" की करतूत बताया गया जिनकी जड़ें मध्यपूर्व में थीं, जिन्हें सिर्फ "पूर्ण युद्ध" से ही रोका जा सकता था।

हमले के बाद कुछ हफ्तों के भीतर आतंकवादियों के संदिग्ध सहयोगियों को बंद करने के लिए दर्जनों बंदी शिविर स्थापित हो गये। कुछ ही समय बाद, एक नया कानून पारित हुआ जिसका नाम था "जनता और राज्य की सुरक्षा का कानून'। नागरिक अधिकार कर्मियों और कुछ विचारवान सांसदों ने इसका विरोध किया लेकिन बहुसंख्यक जनता ने इसे अत्यन्त देशभक्तिपूर्ण कानून माना। नागरिक अधिकार कर्मियों को खुश करने के लिए इसमें यह प्रावधान डाल दिया गया था कि अगर चार वर्ष में "राष्ट्रीय आपातस्थिति" दूर हो गयी तो लोगों के निलम्बित अधिकार लौटा दिये जायेंगे और देश की पुलिस पर फिर से लगाम कस दी जायेगी।

यह ऐसी आपातस्थिति थी कि सांसदों ने बाद में कहा कि आतंकवाद-विरोधी विधेयक को मंजूरी देने से पहले इसे पढ़ लेने का उन्हें समय ही नहीं मिला। जहां तक प्रेस की बात है, तो वह देशभक्ति की भावना से ओत-प्रोत था। जब सरकार ने अपने लिए अवांछित व्यक्तियों और अपने आलोचकों को गिरफ्तार करना शुरू किया तो प्रेसवालों ने या तो इसकी अनदेखी की, या फिर लिखा कि ये लोग आतंकवाद के समर्थक या देशद्रोही थे। सैकड़ों लोग गिरफ्तार किये जाने लगे, फिर हजारों और फिर दसियों हजार।

अपने भाषणों में महान, लोकप्रिय नेता "पितृभूमि" की और अपनी गहरी धार्मिक आस्था की बातें करता था। उसके सिपाही भी जो गरीब और मेहनतकश वर्गों से आते थे, ऐसा ही सोचते थे और उनकी नई, कड़क वर्दियां भी इसकी गवाही देती थींउनकी पेटी के बकसुओं पर लिखा होता था, 'ईश्वर हमारे साथ है।' महान नेता ने अपने पीछे एकजुट जनता का आह्वान किया अन्य देशों पर चढ़ाई करने के लिए और वहां ऐसे नेता गद्दी पर बैठाये गये जो "दोस्ताना" रुख रखते थे। "टाइम" पत्रिका ने इस नये लोकप्रिय नेता को "मैन आफ दि इयर" कहकर उसकी तस्वीर मुखपृष्ठ पर छापी और उसका यशगान किया।

जैसा कि आपमें से कुछ ने अनुमान लगा लिया होगा, यह जर्मन चांसलर एडोल्फ हिटलर के उत्थान का ब्योरा है जिसके कैरियर ने 27 फरवरी, 1933 को राइखस्टाग (जर्मन संसद) के जलकर नष्ट होने के बाद उड़ान भरी। इसी के बाद बड़े उद्योगपतियों की भरपूर मदद से फासिज्म का वह दौर शुरू हुआ जिसने धरती को खून से तर कर डाला।

9-11 के बाद के अमेरिका के बारे में सोचिए, और ये समानताएं, ये एक जैसी ऐतिहासिक परिस्थितियां आपको ठिठक जाने पर विवश कर देंगी। यह इतिहास का एक सबक है। क्या हम इससे सीखेंगे, या इसे दुहरायेंगे?

मूमिया अबु-जमाल

(हत्या के झूठे आरोप में 26 वर्ष से अमेरिकी जेल में कैद काले राजनीतिक कार्यकर्ता और पत्रकार)

पश्चिम एशिया : शान्ति की शर्त फलस्तीन की आजादी

योगेश पन्त

सीरिया पर ताजा इजरायली हमले के खिलाफ संयुक्त राष्ट्र संघ में पेश प्रस्ताव पर वीटो का इस्तेमाल कर अमेरिकी हुक्मरानों ने अपने पिट्ठुओं की पीठ एक बार फिर थपथपा दी है। इसके पहले अराफात को गाजापट्टी से "हटाने" सम्बन्धी इजरायली कैबिनेट के फैसले के खिलाफ निन्दा प्रस्ताव पर भी अमेरिका वीटो कर चुका था। इजरायली हुक्मरानों ने उकसावेबाजी की ये दोनों कार्रवाइयां प्रधानमंत्री एरियल शैरोन की भारत यात्रा से लौटने के तत्काल बाद कुछ ही दिनों के अन्तराल में कीं। कुछ टिप्पणीकारों का यह आकलन बेजा नहीं जान पड़ता कि भारतीय शासकों से याराना निभाने का आश्वासन लेकर लौटे शैरोन ने उत्साहित होकर उकसावेबाजी की ये कार्रवाइयां कीं। यह आकलन भी बेबुनियाद नहीं लगता कि सीरिया पर इजरायल ने हमला खुली अमेरिकी शह पर किया है क्योंकि इराक पर कब्जा जमा लेने के बाद अब अरब जगत में दो ही देश बचे हैं जो अमेरिकी "राष्ट्रीय हितों" के आड़े आ रहे हैं—ईरान और सीरिया। इनमें भी ईरान के मुकाबले सीरिया कमजोर लक्ष्य है।

अपने पिट्ठू के जरिये सीरिया पर हमला करवाकर अमेरिकी हुक्मरान अरब जगत में इसकी प्रतिक्रिया देखना चाहते थे। उधर शैरोन का भी यह आकलन था कि अगर सीरिया हमले का जवाब देता है और युद्ध सचमुच शुरू हो जाता है तो यह उसके मंसूबों को आगे बढ़ाने की दिशा में अच्छी बात होगी। युद्ध की आड़ में फलस्तीनी धरती को पूरी तरह अपने कब्जे में कर 'वृहत्तर इजरायल' बनाने के अपने सपने को पूरा करने की दिशा में आगे बढ़ा जा सकता है—कम से कम शैरोन का आकलन तो यही था। इसीलिए हमला उसने "आतंकवाद को ट्रेनिंग देने वाले ठिकानों को नष्ट करने" के नाम पर किया।

सीरिया के शासक शैरोन के उकसावे में नहीं आये। जवाबी हमला न होने से युद्धपिपासु शैरोन और उसकी कम्पनी फिलहाल मन मसोस कर रह गयी है। लेकिन एरियल शैरोन ने अपनी मंशा का खुल्लमखुल्ला इजहार कर दिया है। पश्चिम एशिया में शान्ति की किसी भी कोशिश को वह आगे नहीं बढ़ने देगा। ओस्लो समझौते को वह पहले ही रद्दी की टोकरी में फेंक चुका है। शान्ति के अमेरिकी 'रोडमैप' को भी वह अपनी कार्रवाइयों के जरिये रोज-रोज कुचल रहा है।

दरअसल, एरियल शैरोन और इजरायली शासक वर्ग का समूचा कट्टरपंथी धड़ा

पृष्ठ 57 से आगे

इराकी नागरिक मारे जा चुके हैं। इनमें औरतें, बच्चे और बूढ़े लोग भी शामिल हैं। ऐसी ज्यादातर हत्याएं चेकपोस्टों पर, घरों में मारे गये छापों के दौरान या फिर विरोधप्रदर्शनों पर गोलीबारी में हुई हैं।

अमेरिका लाख दावे करे, सच यह है कि इराक के मुट्ठीभर गद्दारों को छोड़कर सारी जनता अपनी जमीन को गंदा कर रहे सैनिकों और उनके आकाओं से घृणा करती है। टीवी पर यह देखा जा सकता है कि हर अमेरिकी वाहन या हेलीकाप्टर जो हमलों का निशाना बनता है, उसके इर्द-गिर्द इराकी लोगों की भीड़ खुशियां मना रही है, नाच रही है। क्या ये सारे के सारे "आतंकवादी" हैं! हालत यह है कि अमेरिकी सैनिक जिन्हें ''मुक्त'' कराने पहुंचे हैं उन्हीं लोगों के बीच वे पलभर भी निर्भय होकर नहीं रह सकते। वे इतने डरे हुए हैं कि छोटे-छोटे बच्चों तक के हाथों में खिलौना बन्दूक देखकर गोलियां चला देते हैं। अमेरिकी प्रशासन ने बगदाद के 11 इलाकों को ''लाल घेरे वाला क्षेत्र'' घोषित किया है और अपने स्टाफ तथा गैरसरकारी कर्मियों को चेतावनी दी है कि इन इलाकों में तभी जायें जब बेहद जरूरी हो।

यही कारण है कि सर्वथा अन्यायपूर्ण इस तैनाती से पैदा हुई घुटन और बेबसी के चलते इराक में अमेरिकी सैनिक आत्महत्या करने लगे हैं। 'यू.एस. टुडे' नामक अमेरिकी अखबार के मुताबिक पिछले सात महीनों में 14 सैनिक और तीन मरीन सैनिक हताशा में अपनी जान ले चुके हैं। विशेषज्ञों का मानना है कि अवसाद, जीने की विषम परिस्थितियां और अमानुषिक-बर्बर कार्रवाइयों से उत्पन्न होने वाला अपराधबोध इस समस्या के मूल में है।

दूसरी ओर खुद अमेरिका के भीतर आंदोलन एक बार फिर जोर पकड़ रहा है। पिछले दिनों वाशिंगटन में हजारों लोगों ने विशाल युद्ध विरोधी रैली निकाली। जैसे-जैसे सैनिकों की लाशें घर पहुंच रही हैं, सेना को इराक से वापस बुलाने की आवाज तेज होती जा रही है।

मुनाफे के लिए पगलाये और ताकत के मद में चूर अमेरिकी सत्ताधारी इन आवाजों को अनसुना कर रहे हैं और इराक में तेज होते जन-संघर्ष को अनदेखा कर रहे हैं, लेकिन एक दिन आयेगा जब सच्चाई उनके कान के परदे चीर देगी और उनकी आंखें फटी रह जायेंगी। ●

'परिकल्पना' का नया प्रकाशन

इराक : साम्राज्यवादी कब्ज़ा और प्रतिरोध

यह किताब इराक पर हमले की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि बताने के साथ ही खाड़ी युद्ध के बाद इराकी जनता पर टूटे कहर के आंखें खोल देने वाले ब्यौरे देती है और साम्राज्यवादी आधिपत्य के खिलाफ वहां जारी जन प्रतिरोध की जीत में भरोसा पैदा करती है। साथ ही यह दुनिया में अनेक युद्धों के लिए जिम्मेदार तेल की राजनीति और अर्थशास्त्र को समझने के लिए बेहद महत्वपूर्ण सामग्री मुहैया कराती है।

लेखक : हरपाल बराड़ **पृ. 160, मूल्य : 40 रुपये**

'जनचेतना' की सभी शाखाओं पर उपलब्ध

फिलहाल इस रणनीति पर चल रहा है कि इराक पर अमेरिकी कब्जे के बाद फिलहाल शान्ति की किसी भी प्रक्रिया को आगे बढ़ने के रास्ते में हरमुमकिन अड़ंगेबाजी की जाये। फलस्तीनी अवाम का दमन तेज कर दिया जाये और इस तरह फलस्तीनी आजादी के सवाल को जब तक सम्भव हो टालते रहा जाये। साथ ही, इस दौरान अधिकतम सम्भव फलस्तीनी भूभाग को अपने कब्जे में लेकर फलस्तीनी अवाम को प्राप्त सीमित स्वायत्तता को भी हड़प लिया जाये। यही वजह है कि निहत्थे फलस्तीनी बच्चों, महिलाओं और बूढ़ों तक को इजरायली टैंक और बमवर्षक निर्ममता के साथ निशाना बना रहे हैं। फलस्तीनी नेताओं पर निशाना साधकर किये जाने वाले हमलों में भी तेजी आ गयी है।

एरियल शैरोन इस भ्रम में नहीं है कि दमनचक्र तेज करने और उकसावेबाजी की कार्रवाइयों से फलस्तीनी आत्मघाती हमले बन्द हो जायेंगे। वे और तेज होंगे और इनके बहाने इजरायली शासक दमन चक्र भी तेज कर देंगे।

इजरायली हुक्मरानों का भ्रम

हर प्रतिक्रियावादी की तरह एरियल शैरोन भी न केवल मूर्ख है वरन बदगुमानी में जी रहा है। उसकी अगुवाई में इजरायली जियनवादी शासक अगर यह समझते हैं कि फलस्तीनी राष्ट्र को खून की नदियों में डुबोकर अपने "शुद्ध यहूदी राज्य" के सपनों को पूरा कर लेंगे तो यह उनका मतिभ्रम है।

पिछले साल मार्च-अप्रैल में रामल्ला की घेरेबन्दी और पश्चिमी तट पर इजरायली हमले के बाद इजरायली शासकों ने यह दावा किया था कि उन्होंने "आतंक के बुनियादी ढांचे को जड़ से खत्म" कर दिया है। उन्होंने यह भी दावा किया था कि *हमास, इस्लामिक जेहाद* और *अल अक्सा ब्रिगेड* के नेतृत्व को तितर-बितर कर दिया गया है।

इजरायली शासकों के ये दावे कितने खोखले थे इसका सबूत उन्हें जल्दी ही मिल गया था जब घेरेबन्दी खत्म होने के कुछ ही दिनों बाद इजरायली जमीन पर आत्मघाती हमले हुए। अमेरिकी सरपरस्ती और अपने हथियारों की ताकत से मगरूर इजरायली हुक्मरानों को यह भ्रम है कि 'आतंक के इन्फ्रास्ट्रक्चर' को तहस-नहस कर देने से आत्मघाती हमले रुक जायेंगे। शैरोन का दावा यह भी है कि वह फलस्तीनी दिलो-दिमाग को बहुत अच्छी तरह समझता है। अपनी इसी समझ के आधार पर वह समय-समय पर उकसावेबाजी की कार्रवाइयाँ करता रहता है। लेकिन शैरोन का यह दावा एक फासिस्ट की मनोग्रस्तता से अधिक कुछ नहीं है। वह इस सच्चाई को नहीं समझ सकता कि फलस्तीनी अवाम अपनी आजादी, और स्वाभिमान की हिफाजत के लिए कुर्बानियों की किन हदों तक जा सकता है। आज हर फलस्तीनी युवा शहादत के लिए तत्पर हैं। इजरायली फौजों के साये तले जीने या इजरायली चेक पोस्टों पर रोज-रोज अपमानित होते हुए जीने से वे मरना अधिक पसन्द करते हैं। ओस्लो समझौते के बाद चले शान्तिवार्ताओं के घिनौने नाटक को देखने के बाद अब किसी भी तरह की शान्ति वार्ताओं के प्रति उनके मन में कोई उम्मीद नहीं है। साथ ही यासिर अराफात की समझौतापरस्ती और भविष्य के अन्धेरे ने उन्हें हताशा-निराशा की मनःस्थिति में आत्मघाती राह पकड़ने पर मजबूर किया है। स्थिति यह है कि आज आत्मघाती हमलों पर न अराफात का वश है और न ही हमेशा यह जरूरी कि इसकी योजना हमास, या इस्लामिक जेहाद के संगठनकर्ता बनायें। फलस्तीनी युवा स्वतःस्फूर्त ढंग से इन कार्रवाइयों को अंजाम देने के रास्ते पर चल पड़े हैं। फलस्तीनी युवा किस मनःस्थिति में जी रहे हैं इसका एक बयान इजरायली शान्ति आन्दोलन के एक प्रमुख व्यक्तित्व गश शालोम ने पिछले 23 मार्च को इन शब्दों में किया है :

"जब कारों को कुचलती और दीवारों को भहराती हुई, सड़कों को गड्ढों में बदलती हुई, सभी दिशाओं में अन्धाधुन्ध गोले बरसाती हुई, समूची आबादी को खौफज़दा करती हुई तोपें धड़धड़ाते हुए किसी शहर के बीचो-बीच घुस आती हैंतो इससे असहाय आक्रोश पैदा होता है...जब किसी परिवार के घर की दीवारों को ध्वस्त करते हुए सिपाही भीतर घुस आते हैं, बच्चों और बड़ों को आघात पहुँचाते हैं, उनके साजो-सामान को रौंद डालते हैं, खून-पसीने की सारी कमाई को तहस-नहस कर डालते हैं, और फिर दीवारें भहराते हुए अगले अपार्टमेण्ट में घुसकर तबाही मचाते हैंतो इससे असहाय आक्रोश जन्म लेता है.

.. जब सिपाही हर चलती-फिरती चीज को गोलियों का निशाना बनाते हैंचाहे खौफ के मारे या अफरा-तफरी के मारे या इसलिए कि शैरोन ने "नुकसान पहुँचाने" के लिए कहा हैतो इससे असहाय आक्रोश जन्म लेता है।

जब सेना का अधिकारी रक्तस्राव से मृत्यु की ओर घिसट रहे घायलों की जान बचाने में जुटे डाक्टरों और चिकित्सा सहायकों की हत्या करने के लिए ऐम्बुलेंसों पर गोली चलाने का आदेश देता हैतो इससे असहाय आक्रोश जन्म लेता है... और फिर यह दिखायी देता है कि आक्रोश असहाय नहीं रहा। आत्मघाती दस्ते बदला लेने के लिए सामने आते हैं, समूची जनता का आशीर्वाद उनके साथ होता है, और हर इजरायली के मारे जाने पर वे खुशियाँ मनाते हैं, चाहे वह सिपाही हो, बसाया गया यहूदी हो, बस में सफर कर रही कोई लड़की हो या किसी डिस्कोथेक में गया कोई नौजवान हो।"

ऐसा है आज फलस्तीनी युवाओं का आक्रोश! और समूचा फलस्तीनी अवाम उनके साथ खड़ा है।

आत्मरक्षा के नाम पर जारी सफाया अभियान

अपने वतन की आजादी के लिए समूची कौम के मर मिटने की चाहतों की अनदेखी करते हुए फलस्तीनी आत्मघाती हमलों से आत्मरक्षा के नाम पर इजरायली शासकों का 'सफाया अभियान' लगातार जारी है।

पिछले साल (मार्च-अप्रैल 2002) पश्चिमी तट पर डेढ़ महीने के हमले के दौरान इजरायली फौजों ने जो कत्लेआम मचाया और क्रूरता की जो बेमिसाल कारस्तानियाँ कीं वे हत्यारे शैरोन के 'सफाया अभियान' का अंग थीं। शैरोन न केवल जार्डन नदी और भूमध्य सागर के बीच की जमीन से फलस्तीनी आबादी का पूर्ण सफाया चाहता है बल्कि फलस्तीनी इतिहास का नामोनिशान मिटाकर एक 'शुद्ध' यहूदी राज्य कायम करने के अपने सपने को साकार करना चाहता है।

फरवरी 2001 में आम चुनावों के जरिये सत्ता में आने के बाद से ही हत्यारा एरियल शैरोन अपनी योजना को अमल में लाने के लिए माकूल बहाना तलाश रहा था। यूँ उसने

अपनी योजना पर अमल का संकेत उसी समय दे दिया था जब उसने सितम्बर 2000 में अल अक्सा मस्जिद की उकसावे भरी यात्रा की थी जिसके बाद दूसरा *इन्तिफ़ादा* (जिसे अल अक्सा इन्तिफादा भी कहा जाता है) शुरू हो गया था। प्रधानमंत्री बनने के बाद उसने इन्तिफादा वाले क्षेत्रों में बर्बर दमन-चक्र शुरू किया। साथ ही अपनी "लक्ष्यबद्ध हत्याओं" (फलस्तीनी नेताओं और कार्यकर्ताओं की हत्याओं को इजरायली शासकों ने यही नाम दिया है) का सिलसिला भी नये सिरे से शुरू किया। इसी सिलसिले की कड़ी के रूप में अगस्त 2001 में रामल्ला में *पीपुल्स फ्रण्ट फॉर द लिबरेशन ऑफ पैलेस्टाइन* (पी एफ एल पी : पी.एल.ओ. का मार्क्सवादी दृष्टि सम्पन्न घटक) के नेता अबू मुस्तफा की उनके कार्यालय में हेलिकॉप्टर से मिसाइलें दागकर हत्या की गयी। इसका बदला लेते हुए पी एफ एल पी के लड़ाकुओं ने शैरोन की कैबिनेट के धुर-दक्षिणपंथी सदस्य रहवाम जीवी की गोली मारकर हत्या कर दी थी। शैरोन को ऐसे ही किसी बहाने की तलाश थी। फिर 11 सितम्बर '01 को डब्ल्यू. टी. सी. पर आतंकवादी हमले की घटना के बाद अमेरिका ने आतंकवाद को खत्म करने के नाम पर जो मुहिम शुरू की उसने शैरोन की हत्यारी योजनाओं के अमल के लिए अनुकूल हालात पैदा कर दिये। शैरोन ने अराफात पर रहवाम जीवी के हत्यारों को पकड़कर उसके हवाले करने और फलस्तीन के भीतर "आतंकवाद के नेटवर्क" को खत्म करने के लिए दबाव बनाना शुरू किया। बिल्कुल उसी तर्ज पर जिस तरह अमेरिका ने बिन लादेन को हवाले करने के लिए तालिबानों पर दबाव बनाया था।

अराफात ने इजरायली-अमेरिकी दबाव में दिसम्बर '01 में दो लड़ाकू फलस्तीनी संगठन 'हमास' और 'इस्लामिक जेहाद' के दफ्तरों को सील कर दिया। उधर इन्तिफादा के क्षेत्रों में लगातार इजरायली दमन-चक्र से साल भर से अधिक समय तक जूझते फलस्तीनी अवाम के भीतर अराफात की समझौतापरस्ती से निराशा घर करने लगी। इन्हीं हालात में फलस्तीनी युवाओं के आत्मघाती दस्तों की कार्रवाइयाँ शुरू हुईं जिससे आत्मरक्षा के बहाने पश्चिमी तट पर कब्जा और घेराबन्दी कर शैरोन ने अपने सरपरस्त अमेरिका की सहमति से सफाया अभियान की शुरुआत की।

डेढ़ महीने के हमले के दौरान इजरायली फौजों ने पश्चिमी तट के शहरों में दिल दहलाने वाला जो खूनी खेल खेला वह यहूदियों पर नाजियों के अत्याचारों को भी मात कर देने वाला था। हेब्रान, बेतेलहम, रामल्ला, नेब्लस और जेनिन शहरों में नौजवानों के साथ ही बच्चों, बूढ़ों, औरतों को अन्धाधुन्ध गोलियों का निशाना बनाया गया। शिविर-दर-शिविर, गाँव-दर-गाँव बिना किसी चेतावनी के घरों पर बुलडोजर चलाये गये। योजनाबद्ध ढंग से अस्पतालों, स्कूलों, संस्थाओं, तमाम सरकारी इमारतों, पानी की टंकियों, सीवर लाइनों, बिजली लाइनों व उपभोक्ता सामानों के भण्डारों को नष्ट किया गया। डॉक्टरों, पैरामेडिकल कर्मचारियों, चर्च व रेडक्रॉस के कर्मचारियों किसी को नहीं बख्शा गया। "आतंक के बुनियादी ढाँचे को नष्ट करने" के नाम पर तमाम सरकारी कागजात, कम्प्यूटर के हार्ड डिस्कों को इजरायली फौजों ने अपने कब्जे में कर लिया।

जेनिन शहर का शरणार्थी शिविर तो इजरायली बर्बरता का प्रतीक बन गया है। इजरायली फौजों ने 1982 में लेबनान पर हमले के दौरान साबरा और शातिला शरणार्थी शिविरों में जो कत्लेआम मचाया था, जेनिन में उसको भी मात दे दिया। इसकी वजह यह थी कि जेनिन में निहत्थी फलस्तीनी जनता ने इजरायली फौजों का जो बहादुराना प्रतिरोध किया उसका सबक सिखाया गया।

जेनिन में कुल कितने फलस्तीनी मारे गये इसकी ठीक-ठीक संख्या बता पाना मुश्किल है क्योंकि इजरायल ने संयुक्त राष्ट्र संघ के तथ्यान्वेषी दल को जेनिन नहीं जाने दिया। लेकिन तमाम पर्यवेक्षकों के अनुमानों के अनुसार डेढ़ महीने के इजरायली हमले के दौरान कुल दो हजार से अधिक फलस्तीनी मारे गये, 50,000 घायल हुए और 9000 लोगों को पकड़कर इजरायली जेलों में ठूँस दिया गया है। इजरायली फौजों ने निहत्थे लोगों के खिलाफ युद्धक विमानों, तोपों और अत्याधुनिक युद्धक उपकरणों का इस्तेमाल किया।

इजरायली फौजों की ये बर्बर कार्रवाइयाँ फलस्तीनी आबादी के सफाया अभियान (जिसे इजरायली शासक फलस्तीनी जनता को "सामूहिक दण्ड" देने की कार्रवाई कहते हैं) के साथ-साथ फलस्तीनी अथॉरिटी का बुनियादी ढाँचा नष्ट करने के लक्ष्य पर भी केन्द्रित थीं। इस ताजा कार्रवाई के बाद अब फलस्तीनी अथॉरिटी के नियंत्रण में कोई 'ए' क्षेत्र नहीं बचा, जिसमें ओस्लो समझौते के तहत नागरिक प्रशासन के साथ-साथ सुरक्षा व्यवस्था भी अथॉरिटी के नेतृत्व में थी। अब फलस्तीनी स्वशासन के तहत आने वाला समूचा क्षेत्र 'बी' में तब्दील हो चुका है जिसमें सिर्फ नागरिक प्रशासन ही फलस्तीनी अथॉरिटी के नियंत्रण में रहता था। हमले में समूचे नागरिक प्रशासन का बुनियादी ढाँचा भी तहस-नहस किया जा चुका है। दरअसल, शैरोन चाहता ही यही है कि अन्तरराष्ट्रीय दबावों-मजबूरियों के तहत अगर फलस्तीनी आबादी का पूरा सफाया करना या खदेड़कर भगा देना सम्भव न हो तो फलस्तीनी राष्ट्र के सवाल को सिर्फ नगर प्रशासन की आजादी तक सीमित कर दिया जाये, जिसे वह 'ग्राम लगान व्यवस्था' का नाम देता है।

अराफात की लोकप्रियता का चढता-गिरता ग्राफ

फलस्तीनी धरती पर इजरायली कब्जे और फलस्तीनी अवाम पर इजरायली फौजों के बर्बर अत्याचारों के खिलाफ समूचे अरब जगत की जनता के उठ खड़े होने के बाद अमेरिकी हुक्मरानों ने शैरोन पर घेराबन्दी खत्म करने के लिए दबाव बनाना शुरू किया था लेकिन इसके बदले में शैरोन अपनी शर्तों पर अड़ा हुआ था। यूँ तो वह रामल्ला में अराफात के मुख्यालय की घेरेबन्दी के दौरान ही अराफात की भी हत्या करना चाहता था लेकिन इसकी प्रतिक्रिया से घबराये अमेरिकी और तमाम साम्राज्यवादी हुक्मरानों ने इसकी इजाजत नहीं दी। शैरोन ने एक बयान में सार्वजनिक रूप से इस पर अफसोस जाहिर किया कि 1982 में लेबनान पर हमले के दौरान उसने अराफात को बचकर क्यों निकल जाने दिया। वह अपनी इस शर्त पर अड़ा हुआ था कि अराफात के मुख्यालय *मक्ता* में छिपे छह लड़ाकुओं को इजरायल के सुपुर्द किया जाये। इनमें से चार रहवाम जीवी की हत्या में शामिल थे, पाँचवें पी एफ एल पी के नये महासचिव अहमद सादात और छठवें फलस्तीनी अथॉरिटी के

वित्तीय अधिकारी फाऊद सुबाकी जिन पर ईरान से हथियारों की खेप मँगाने का आरोप था। इस खेप को इजरायली अधिकारियों ने पकड़ लिया था। इसके अलावा बेतेलहम के *चर्च ऑफ नेटिविटी* में छुपे 13 लड़ाकुओं की सुपुर्दगी की शर्त भी शैरोन ने रखी थी।

अराफात ने शुरू में तो इजरायली शर्तों को पूरी तरह नकार दिया था लेकिन बाद में बीच का रास्ता अख्तियार करते हुए कहा कि इन "आतंकवादियों" पर वह खुद मुकदमा चलायेंगे। फिर अप्रैल के अन्त में रामल्ला मुख्यालय में छिपे छह लड़ाकुओं पर हड़बड़ी में एक फलस्तीनी ट्रिब्यूनल में मुकदमा चलाया गया और उन्हें 18 साल कैद की सजा दी गयी। इसके बाद अमेरिकी-ब्रिटिश सुरक्षा अधिकारियों की निगरानी में इन छहों को जेरिको में जेल भेज दिया गया और अराफात ने उन्हें रिहा न करने का आश्वासन दिया। साथ ही चर्च ऑफ नेटिविटी में छिपे 13 लड़ाकुओं को भी यूरोप में निर्वासन में भेज दिया गया। इसके बाद इजरायली फौजों ने 1 मई को रामल्ला की 34 दिनों बाद पुरानी घेरेबन्दी खत्म की थी।

पी.एल.ओ. मुख्यालय में अराफात की घेरेबन्दी के पीछे इजरायली शासकों की मंशा नेतृत्व को जलील कर फलस्तीनी अवाम के मनोबल को तोड़ना था। लेकिन शुरुआत में इजरायली शर्तों के आगे न झुकने और शहीद हो जाने की घोषणा से ऐसा लगा कि फलस्तीनी अवाम की नजरों में अराफात की गिरी हुई साख फिर बहाल हो जायेगी। अराफात की लोकप्रियता का ग्राफ तेजी से ऊपर चढ़ने लगा था। लेकिन आखिर में घेरेबन्दी खत्म कराने के लिए अमेरिकी-इजरायली दबावों के आगे झुकते हुए उन्होंने जो समझौता किया उससे अराफात एक बार फिर अपने अवाम की नजरों से उतर गये हैं। इस समझौते के बाद फलस्तीनी अवाम को यह महसूस हो रहा है कि 1993 में ओस्लो समझौते के जरिये फलस्तीनी स्वशासन के नाम पर अराफात ने जो लूली-लंगड़ी आजादी हासिल की थी वह भी हाथ से निकल गयी है।

लेकिन इजरायली हुक्मरानों द्वारा अराफात को पश्चिमी तट से "हटाने" के ताजा फैसले के बाद एक बार फिर अराफात की लोकप्रियता उठान पर है। उनकी गिरती साख एक बार फिर सम्भल गयी है।

शान्ति के नाम पर ब्लैकमेलिंग की कोशिशें जारी

पश्चिम एशिया में अपने लठैत इजरायली हुक्मरानों की पीठ पर हाथ रखकर और अपने अरब पिट्ठुओं के दम पर इस क्षेत्र पर आर्थिक-राजनीतिक-सामरिक दबदबा बनाये रखने के अमेरिकी साम्राज्यवादियों के मंसूबों के रास्ते में फलस्तीनी अवाम का बहादुराना प्रतिरोध और अरब जनता का प्रतिरोध दीवार बनकर खड़ा है। अमेरिका पश्चिम एशिया में शान्ति अपनी शर्तों पर चाहता है और वह अपने लाड़ले इजरायली जियनवादियों को नाराज भी नहीं करना चाहता। इजरायली जियनवादी भी अपने आकाओं की मजबूरियों को बखूबी समझते हैं। इसलिए वे पश्चिम एशिया में अमेरिकी हितों की चौकीदारी की भारी फीस वसूलते हैं। अमेरिका इजरायल को अत्याधुनिक हथियारों, अन्य फौजी साजो-सामान के अलावा हर साल भारी मात्रा में नकद सहायता देता है। अमेरिका इजरायल को हर साल 2.7 अरब डालर का अनुदान देता है।

अमेरिका-इजरायल के हितों की इस जुगलबन्दी का ही नतीजा है कि ताजा इजरायली हमले और इजरायली फौजों के अत्याचारों को भी उसने इजरायल के आत्मरक्षा के अधिकार के नाम पर खुला समर्थन दिया। पिछले वर्ष पश्चिम तट पर इजरायली हमलों के बाद अमेरिकी शैतानों ने सोचा था कि फलस्तीनी नेतृत्व को अपमानित कर और फलस्तीनी अवाम के मनोबल को कुचलकर वह फलस्तीनी राष्ट्र के सवाल पर अपने व अपने शैतानी पूत के लिए अधिक अनुकूल शर्तों पर सौदेबाजी कर सकेगा। लेकिन अरब देशों की जनता ने जो जबर्दस्त प्रतिक्रिया दिखायी थी उससे उसका गुणा-भाग गड़बड़ा गया। इसलिए उसने इजरायली हमलों की निन्दा करना और फलस्तीनी राष्ट्र की समस्या को हल करने की नये सिरे से कवायद शुरू कर दी थी।

लेकिन साम्राज्यवादी अपनी मक्कारियों से भला क्यों बाज आयेंगे। उसने एक राजनीतिक ब्लैकमेलर की भाषा में अमेरिकी हुक्मरानों ने यह राग अलापना शुरू किया था कि फलस्तीनी राष्ट्र के सवाल पर बातचीत शुरू करने से पहले फलस्तीनी नेतृत्व में परिवर्तन होना चाहिए और फलस्तीनी अथॉरिटी के भीतर "जनतांत्रिक सुधार" होने चाहिए। "जनतंत्र" के प्रति यह अमेरिकी मनोग्रस्तता का पुराना रोग है जो जब-तब उभर आता है। वरना दुनिया के फौजी तानाशाहों, अरब जगत की शेखशाहियों की पीठ पर हाथ रखने वाले अमेरिका को भला जनतंत्र की क्या परवाह! 11 सितम्बर की घटना के बाद तो खुद अमेरिका के भीतर "जनतंत्र" को साँस लेना मुश्किल हो रहा है। फलस्तीनी अथॉरिटी के भीतर "जनतांत्रिक सुधार" की माँग उठाने के पीछे अमेरिका का असली गणित यह है कि खुद फलस्तीनी अवाम के भीतर यासिर अराफात की समझौतापरस्ती, स्वेच्छाचारिता और फलस्तीनी अथॉरिटी के शासन में फैले व्यापक भ्रष्टाचार के खिलाफ गुस्सा है। दूसरे, इस "जनतांत्रिक सुधार" की प्रक्रिया में इस बात की गुंजाइश भी बन सकती है कि कोई ऐसा नया नेतृत्व खड़ा हो जो यासिर अराफात से अधिक लचीला होकर अमेरिकी हितों के लिए कम से कम खतरा बन सके।

बहरहाल, यासिर अराफात ने अमेरिकी माँग पर थोड़ा कान देते हुए "सुधारों" की दिशा में कुछ कदम भी उठा लिये थे। जाहिर है ऐसा उन्होंने अमेरिकी दबाव से ज्यादा अपनी जनता के दबाव में किया था। पिछले मई महीने में अराफात ने 1997 में *फलस्तीनी राष्ट्रीय परिषद* द्वारा पारित किये गये बुनियादी कानून (संविधान) को मंजूरी दे दी थी। अब तक यह धूल खा रहा था। यह संविधान विधायिका और कार्यपालिका की शक्तियों और दायित्वों को व्याख्यायित करता है। इस कानून को मंजूरी देने के एक हफ्ते बाद अराफात ने न्यायपालिका को स्वतंत्र करने के अध्यादेश पर दस्तखत कर दिये। सुरक्षा व्यवस्था के पुनर्संगठन की शुरुआत भी की गयी है। इसके साथ ही अराफात ने स्थानीय निकायों, संसदीय व राष्ट्रपति चुनावों की घोषणा भी कर दी है। पहले उन्होंने यह वायदा किया कि कुछ ही महीनों में स्थानीय निकायों के चुनाव, फिर साल के आखिर तक संसदीय चुनाव और अगले साल की शुरुआत में राष्ट्रपति चुनाव सम्पन्न कराये जायेंगे। लेकिन बाद में अराफात ने कहा कि चुनाव तब कराये जायेंगे जब इजरायली फौजें सितम्बर 2000 (जब दूसरा

इन्तिफादा शुरू हुआ था) से पहले की स्थिति में वापस लौट जायेंगी।

इराक पर अमेरिकी कब्जे के बाद बढ़े हुए मनोबल के साथ इजरायली हुक्मरानों ने यह दबाव बनाना शुरू किया है कि फलस्तीनी धरती से अपनी फौजें वह तब हटायेगा जब फलस्तीनी परिषद 'हमास' और 'इस्लामिक जेहाद' को निश्शस्त्र करने की कार्रवाई करे। इजरायली आक्रान्ताओं की इस मांग को किसी भी रूप में मानना अराफात के वश की बात नहीं। अराफात इस सच्चाई से बखूबी वाकिफ हैं कि 'हमास' इस समय फलस्तीनी अवाम की उम्मीदों का एक नया केन्द्र बनकर तेजी से उभरा है। फलस्तीनी युवाओं के बीच 'इस्लामिक जेहाद' की लोकप्रियता भी काफी बढ़ी है। ऐसे में इजरायली शासकों की मांग पर एक भी कदम बढ़ाने का अर्थ होगा अराफात की रही-सही साख भी मटियामेट हो जाना। इन हालात में अमेरिकी-इजरायली अमेरिकी ब्लैकमेलिंग के आगे अराफात उसी हद तक झुकेंगे जिस हद तक खुद उनकी वर्गीय सीमाएँ इजाजत देंगी।

अरब के पिट्ठू शासकों की दुविधा

अमेरिका के अरब पिट्ठू फलस्तीन के सवाल पर लगातार दुविधा के शिकार रहे हैं। सऊदी अरब, जार्डन, बहरीन, कुवैत, मिस्र आदि देशों की जनता का अपने शासकों पर लगातार यह दबाव बना रहता है कि फलस्तीनी सवाल पर वे अमेरिका-इजरायल के साथ न खड़े हों। ताजा हमले के दौरान यह दबाव इतना बढ़ गया था कि मजबूरी में सऊदी अरब तक को इजरायल-फलस्तीन संघर्ष के इतिहास में पहली बार खुलकर "शान्ति के लिए जमीन" वाले फार्मूले का प्रस्ताव सामने लाना पड़ा। 27-28 मार्च '03 को बेरूत में सम्पन्न *अरब लीग* के शिखर सम्मेलन में सऊदी अरब का यही प्रस्ताव स्वीकृत किया गया। अरब देशों ने इस फार्मूले के तहत इजरायल को आश्वासन दिया कि अगर वह अपने कब्जे की अरब जमीन लौटा दे तो उसके साथ न केवल कूटनीतिक बल्कि व्यापार व यात्रा के रिश्ते भी बहाल हो सकते हैं।

अरब लीग की इस शिखर वार्ता में यासिर अराफात नहीं शामिल हुये थे क्योंकि उन्होंने इजरायली शर्त ठुकरा दी थी। इजरायल ने घेरेबन्दी में पड़े अराफात को इस शर्त पर वार्ता में शामिल होने की इजाजत दी थी कि वह वहाँ कोई भड़काऊ बयान नहीं देंगे। अगर उन्होंने ऐसा किया तो वापस लौटने नहीं दिया जायेगा। इसके विरोध में मिस्र के राष्ट्रपति होस्नी मुबारक, जार्डन के शाह अब्दुल्ला भी शिखर वार्ता में शामिल नहीं हुये थे। लीबिया के राष्ट्रपति गद्दाफी ने पहले ही शामिल होने से इन्कार कर दिया था और अपदस्थ इराकी राष्ट्रपति सद्दाम हुसैन 1990 से ही अरब लीग की बैठकों से अलग रहे हैं। फिर भी शिखर वार्ता में फलस्तीनी प्रतिनिधि ने शरणार्थियों और यरूशलम का मसला पूरे जोर-शोर के साथ उठाया था।

ताजा इजरायली हमले के दौरान दबाव बनाने के लिए इराक ने अमेरिका को तेल की आपूर्ति रोक एक महीने रखी थी जिससे अमेरिका को 2.25 अरब डालर का नुकसान हुआ। ईरान ने भी कुछ समय तक इराक का साथ दिया लेकिन बाद में वह पीछे हट गया। इस बीच अमेरिका के सबसे चहेते पिट्ठू सऊदी अरब ने अपने आका को यह आश्वासन दे दिया कि वह तेल निर्यात बन्द नहीं करेगा जिससे अमेरिका पर अपेक्षित दबाव नहीं बन सका। दरअसल अरब पिट्ठू शासक दिल से तो पश्चिम एशिया में अमेरिकी हितों के साथ खड़े हैं लेकिन अपनी जनता के दबाव में वे मजबूरी में फलस्तीनी राष्ट्र की आजादी के सवाल पर दबी जुबान से समर्थन जताते रहते हैं। दूसरे, लेबनान, सीरिया, जार्डन, मिस्र आदि जिन देशों में फलस्तीनी आबादी शरणार्थी शिविरों में रह रही है उससे इन देशों की जनता से सम्पर्क भी इनके शासकों के लिए सिरदर्द बना हुआ है। फलस्तीनी लोगों की गतिमानता उनके जुझारूपन, उनकी जनतांत्रिक चेतना का जो संक्रमण शेखशाहियों की जनता के भीतर लगातार जारी रहता है, उससे शेखों-शाहों का भयभीत रहना स्वाभाविक है। सद्दाम हुसैन के अपदस्थ होने के बाद भी और इराक पर अमेरिकी कब्जे के खिलाफ इराकी जनता जिस प्रकार प्रतिरोध की कार्रवाइयां जारी रखे हुए है और इन कार्रवाइयों को समूचे अरब जगत की जनता का जो समर्थन मिल रहा है उससे अमेरिका के अरब पिट्ठू अब भी भयभीत हैं। इसलिए वे फलस्तीनी मसले का कोई न कोई हल जल्दी चाहते हैं।

भारतीय हुक्मरानों का पैंतरापलट

शीतयुद्ध काल के खात्मे से पहले तक भारतीय शासक अपनी अन्तरराष्ट्रीय राजनीति के समीकरणों के तहत फलस्तीनी आजादी के सवाल पर मुखर समर्थन-सहयोग दिया करते थे। भारत में यासिर अराफात का स्वागत जननायकों की तरह हुआ करता था। लेकिन शीतयुद्धोत्तर दुनिया के बदले समीकरणों के चलते और भारतीय बुर्जुआ राजनीति के दक्षिणपंथी पलटाव के बाद अब भारतीय शासक वर्ग इजरायली शासकों से आर्थिक-राजनीतिक-कूटनीतिक-सामरिकहर क्षेत्र में करीबी रिश्ते बना रहा है। आज भारतीय शासक इजरायल से आतंकवाद के दमन के नुस्खे सीख रहे हैं। आज स्थिति यह हो चुकी है कि इजरायल भारत का दूसरा सबसे बड़ा हथियार आपूर्तिकर्ता देश बन चुका है। ऐसे में फलस्तीनी राष्ट्र के सवाल पर आज भारतीय शासक वर्ग नपे-तुले कूटनीतिक वक्तव्य से आगे नहीं जाता। फलस्तीन पर इजरायल के पिछले हमले की बस दबी जुबान में निन्दा की गयी थी। जबकि फलस्तीनी आत्मघाती हमलों के खिलाफ तत्कालीन विदेश मंत्री जसवन्त सिंह ने इजरायली विदेश मंत्री को फोन कर अपनी एकजुटता जाहिर की। इसके चन्द घण्टों बाद ही रामल्ला मुख्यालय पर हमले हुए थे।

इजरायली प्रधानमंत्री एरियल शैरोन की ताजा भारत यात्रा भी भारतीय-इजरायली शासकों के बीच बढ़ती नजदीकियों की ही देन है। यात्रा के समय दोनों देशों की ओर से जीर साझा वक्तव्य में "आतंकवाद के खिलाफ मिल-जुलकर लड़ने" की घोषणा के मकसद को आसानी से समझा जा सकता है। शैरोन की यात्रा के दौरान आयोजित एक भी सरकारी कार्यक्रम के दौरान भारत सरकार की ओर से फलस्तीनी राष्ट्र के सवाल को किसी भी रूप में उठाया नहीं गया। शैरोन के वापस लौटने के बाद इस गरज से कि अरब शासकों से रिश्ते पूरी तरह न बिगड़ जाये प्रधानमंत्री वाजपेयी ने यह गोलमोल बयान दे डाला कि उनकी सरकार पश्चिम एशिया में शान्ति के प्रति प्रतिबद्ध है।

भारत यात्रा से वापस लौटने के तत्काल बाद एरियल शैरोन ने अराफात को "हटाने" का जो फैसला लिया और सीरिया पर जो हमला किया उसके पीछे भारतीय शासकों की

दोस्ती निभाने के वादे से पैदा हुआ नया जोश भी था। इन दोनों इजरायली कार्रवाइयों के खिलाफ भारत सरकार की नखदन्तहीन प्रतिक्रिया से भी यह समझा जा सकता है कि भारतीय हुक्मरानों के लिए इजरायली दोस्ती की अहमियत कितनी ज्यादा है।

"शान्ति" का अमेरिकी 'रोडमैप' भी इजरायली बूटों के नीचे

1993 में सम्पन्न ओस्लो समझौता शीतयुद्धोत्तर काल की सर्द हवाओं में सम्पन्न फलस्तीनी राष्ट्र की ऐतिहासिक बदनसीबी का दस्तावेज था। इसके तहत पश्चिमी तट की सिर्फ 18 फीसदी जमीन ही फलस्तीनी अथॉरिटी के हाथ में आयी थी। इसमें भी 'ए' और 'बी' दो क्षेत्र थे। 'बी' क्षेत्र का सिर्फ नगर प्रशासन ही फलस्तीनी अथॉरिटी के नियंत्रण में था और इसकी सुरक्षा इजरायली हाथों में थी। समझौते में फलस्तीनी क्षेत्रों पर यहूदी बस्तियों का बसाया जाना रोकने की बात तो शामिल थी पर यरूशलम और शरणार्थियों के सवाल पर भविष्य की वार्ताओं में फैसले होने थे।

इजरायल के ताजा हमले के बाद अब यह अपमानजनक समझौता भी बेमानी हो चुका है। आज फलस्तीनी अथॉरिटी के तहत व्यवहारतः कोई क्षेत्र 'ए' नहीं रहा। यरूशलम और शरणार्थियों के सवाल जहाँ थे वहीं पड़े हैं। उधर यहूदी बस्तियों का बसाया जाना न केवल जारी है वरन इनकी गति और भी तेज हुई है। 75 फीसदी से ज्यादा बस्तियाँ 1993 के बाद बसायी गयी हैं। अब तक कुल बसायी जा चुकी 170 यहूदी बस्तियाँ, जिनमें कुल दो लाख से अधिक यहूदी बस चुके हैं, 300 मील लम्बी सड़कों के जरिये आपस में जुड़ी हुई हैं। इस संजाल के बीच में बिखरे फलस्तीनी अथॉरिटी नियंत्रित इलाकों में आवाजाही पर इजरायली फौजों का नियंत्रण है। जगह-जगह बने चेकपोस्टों पर फलस्तीनी अवाम के स्वाभिमान को रोज-रोज रौंदा जाता है। यह सब फलस्तीनी अवाम के समूचे वजूद को ही नेस्तनाबूद कर देने की जियनवादियों के खूनी मंसूबों को पूरा करने के मकसद से किया जा रहा है।

ओस्लो समझौते के बेमानी हो जाने के बाद पश्चिम एशिया में "शान्ति" के लिए अमेरिकी हुक्मरानों ने पिछले 30 अप्रैल '03 को एक नया 'रोडमैप' तैयार किया। यह ओस्लो समझौते से भी कई कदम पीछे का प्रस्ताव है जिसमें अमेरिकी-इजरायली मंसूबों की खातिर फलस्तीनी आजादी को मुंह चिढ़ाने का ही काम किया गया है।

गौरतलब है कि अमेरिका ने यह 'रोडमैप' भी तब प्रकाशित कराया जब फलस्तीनी परिषद पर दबाव बनाकर अपने पसंदीदा महमूद अब्बास उर्फ माज़ेन को नये फलस्तीनी प्रधानमंत्री के रूप में नियुक्ति करवा ली। अबू माजेन अराफात के राजनीतिक विरोधी और अमेरिका-इजरायल धुरी के प्रति नरम रुख रखने वाले फलस्तीनी नेता के रूप में जाने जाते रहे हैं।

इस अमेरिकी 'रोडमैप' में हालांकि इजरायल और फलस्तीन के बीच दो राष्ट्रों के बंटवारे को सिद्धान्ततः स्वीकार किया गया है लेकिन पूर्वी यरूशलम और फलस्तीनी शरणार्थियों की घर वापसी के सवाल को पूरी तरह नजरअन्दाज कर दिया गया है। पश्चिमी तट पर बसायी गयी यहूदी-बस्तियों के बारे में भी इस 'रोडमैप' में सिर्फ इतना कहा गया है कि सितम्बर 2001 के बाद बसायी गयी बस्तियां हटायी जाये। अपने आकाओं के दबाव में इस रोडमैप को भी इजरायली आक्रान्ताओं ने बुझे मन से औपचारिक मंजूरी तो दे दी लेकिन उनकी हर मुमकिन कोशिश यही है कि पश्चिम एशिया में किसी भी तरह की पश्चिम एशिया में किसी भी तरह की शान्ति प्रक्रिया को आगे बढ़ने न दिया जाये। यही कारण है कि उसने 4 जून 2003 को जार्डन के शहर अकाबा में बुश, शैरोन और अब्बास की मीटिंग के बाद घोषित युद्धविराम के फैसले की लगातार अवेहलना कर पश्चिमी तट और गाजापट्टी के नागरिक ठिकानों पर हमले और फलस्तीनी नेताओं की हत्याओं का अभियान जारी रखा। पश्चिम एशिया में शान्ति की नयी प्रक्रिया के लिए अनुकूल वातावरण बनाने के लिए 'हमास' और 'इस्लामिक जेहाद' ने भी युद्धविराम को मंजूरी दे दी थी, लेकिन इजरायली शासकों द्वारा लगातार इसके उल्लंघन के बाद दोनों संगठनों ने फिर से आत्मघाती हमले शुरू कर दिये।

अकाबा मीटिंग में तत्कालीन फलस्तीनी प्रधानमंत्री अहमद अब्बास ने अमेरिकी-इजरायली शासकों की आशा के अनुरूप घुटनाटेकू रवैया अख्तियार किया था जिसे 'हमास' और 'इस्लामिक जेहाद' के साथ ही अराफात तक के लिए पचाना मुश्किल हो रहा था। अब्बास के प्रति भड़की फलस्तीनी अवाम की नफरत का ही नतीजा था कि उन्हें अपने पद से इस्तीफा देना पड़ा। इसके बाद अहमद कुरेई उर्फ अबू अली को नया प्रधानमंत्री नियुक्त किया गया है।

नये प्रधानमंत्री ने पदभार ग्रहण करने के फौरन बाद युद्धविराम की मंशा जाहिर की लेकिन शैरोन ने इसे नकार दिया है। वह अपनी रट लगाये हुए है कि फलस्तीन परिषद 'हमास' और 'इस्लामिक जेहाद' को निश्शस्त्र करे। इजरायली हुक्मरान पश्चिमी तट के भीतर से होकर सैकड़ों किमी लम्बी एक 'सुरक्षा दीवार' भी बनाते जा रहे हैं। इस दीवार के भीतर पश्चिमी तट की 10 प्रतिशत से अधिक भूभाग शामिल है। इजरायली शासकों की इस अंधेरगर्दी पर भी संयुक्त राष्ट्र संघ में कोई प्रस्ताव नही पारित हो सका है। जाहिर है कि इजरायली जियनवादी पश्चिम एशिया में शान्ति की किसी भी प्रक्रिया को शुरू नहीं होने देना चाहते। इसका कारण उनकी यह बदगुमानी है कि इराक पर अमेरिकी कब्जे के बाद अब फलस्तीनी आजादी के सवाल को हमेशा के लिए खत्म कर अपना 'वृहत्तर इजरायल' का सपना पूरा कर लेंगे।

शान्ति की शर्त मुकम्मल आजादी

पश्चिमी तट और गाजापट्टी पर पिछले तीन साल से जारी इजरायली हमले ने समूची फलस्तीनी धरती को कत्लगाहों में तब्दील कर दिया है। जिन्दगी जीने के सारे साधनों को छिन्न-भिन्न, नष्ट-भ्रष्ट कर दिया गया है। पश्चिमी तट के उत्पादन का 75 फीसदी ठप हो चुका है। अकाल और भुखमरी के हालात पैदा कर दिये गये हैं। इजरायल के भीतर रह रही फलस्तीनी आबादी के लिए भी रोजी-रोटी कमाना नामुमकिन-सा हो गया है। इजरायली समाज का नाजीकरण इस हद तक हो चुका है कि इजरायली नियोक्ता अरब मूल के कामगारों को नौकरी पर नहीं रखते। वहाँ पूर्वी एशिया से मजदूरों को बुलाकर काम करवाने

पेज 70 पर जारी

दूरसंचार का निजीकरण

निकोलस बरान

सूचना युग और सूचना राजमार्ग के बारे में बड़े-बड़े दावे प्रस्तुत किये गये हैं। बिल गेट्स और निकोलस नेग्रोपोन्ते जैसे स्वयम्भू स्वप्नदर्शी एक नये स्वर्णयुग की तस्वीरें कुछ यूं पेश करते हैं दुनिया के एक कोने से दूसरे कोने तक हर आदमी एक दूसरे से जुड़ा होगा, सूचना हर आदमी की उंगलियों पर होगी और बुद्धिमान इलेक्ट्रॉनिक एजेण्ट हमारी रोजमर्रा की जिन्दगी के दुनियादारी के झंझटों से छुटकारा दिला देंगेमसलन हमारे बिलों का अपने-आप भुगतान होगा, इलेक्ट्रॉनिक अखबार उपलब्ध होंगे, रोबोट हमारे लिए कॉफी बनायेंगे और ऐसे ही बहुतेरे कामों को अंजाम देंगे।

दुर्भाग्यवश, इस रामबाण का दूरसंचार उद्योग की वास्तविकता से कोई लेना-देना नहीं हैन आज के समय में और न ही आने वाले कल में। हालांकि, बहुतेरी ऐसी तकनोलॉजी मौजूद हैं जो बिल गेट्स के सनकभरे सपनों को पूरा करती हैं, लेकिन यह मुनाफे और अल्पविक्रेताधिकारी (oligopolistic) बाजारों की सच्चाइयों के खिलाफ जाती हैं। इसीलिए, हम प्रायः देखते हैं कि बहुत सी उपयोगी और सम्भावनायुक्त तकनोलॉजी ठण्डे बस्ते में डाल दी जाती हैं क्योंकि वे मुनाफा नहीं देतीं। इसके विपरीत, दूसरी बहुत सी तकनोलॉजी जो मुख्य रूप से केवल विलासितापूर्ण उपयोग के लिये होती हैं, विकसित की जाती हैं। सूचना राजमार्ग की "अन्तर्वस्तु" पर विज्ञापन और मनोरंजन हावी रहते हैं। यह सच्चाई बिल्कुल उजागर हो चुकी है। हम देखते हैं कि विश्वव्यापी संजाल (world wide web) पर अधिकांश वेबसाइटों पर विज्ञापनों के बैनर कम्प्यूटर स्क्रीन पर रेलमपेल मचाये रहते हैं लेकिन फिर भी बड़े-बड़े इण्टरनेट सेवा प्रदाता भारी आर्थिक नुकसान उठाते रहते हैं।[1]

तकनोलॉजी रूपान्तरण

इसमें दो राय नहीं कि दूरसंचार उद्योग एक बड़े तकनोलॉजीय रूपान्तरण की दहलीज पर है, जिसका हमारे समाज पर जबर्दस्त प्रभाव पड़ेगा। इस रूपान्तरण का आधार है डिजिटल कम्प्यूटर का अभिसरण (convergence) और एकल संचार युक्ति के रूप में प्रयुक्त कम्प्यूटरीकृत टेलीफोन।

इस रूपान्तरण का फलितार्थ संक्षेप में इस प्रकार है आज अधिकांश दूरसंचार, जैसे टेलीफोन वार्तालाप और रेडियो एवं टेलीविजन प्रसारण सादृश्य संकेत (analog signal) के माध्यम से किया जाता है। 'सादृश्य संकेत' अधिकांश प्राकृतिक परिघटनाओं जैसे ध्वनि व प्रकाश का तरंग रूप(wave form) है। उदाहरण के लिए ज्या तरंग (sine wave) जो अधिकतम और न्यूनतम मानों के बीच क्रमशः ऊपर-नीचे होते हुआ अग्रसर होती है, एक सादृश्य तरंग रूप है। फिर भी, इन सादृश्य परिघटनाओं को अंकीय रूपण (digital format) में सम्प्रेषित करना अपेक्षाकृत अधिक दक्षतापूर्ण होता है, जो साधारण ऑन/ऑफ संकेतों द्वारा निरूपित होते हैंअर्थात यह संकेत 'आन' या 'आफ' दोनों में से किसी एक अवस्था में होता है।

चूंकि कम्प्यूटर अधिक शक्तिशाली और सॉफ्टवेयर अधिक परिष्कृत हो चुके हैं, अतः अब छायाचित्रों से लेकर चलचित्रों तकसूचना के सभी प्रकारों को डिजिटल फार्मेट में परिवर्तित करना सम्भव हो गया है। और इसकी खूबसूरती यह है कि एक बार जब ग्राफिक इमेज डिजिटल फार्मेट में निरूपित हो जाती हैं तो किसी भी अन्य डिजिटल डाटा की भांति मनचाहे ढंग से कम्प्यूटर में इनका इस्तेमाल किया जा सकता है अथवा किसी भी कम्प्यूटर नेटवर्क को सम्प्रेषित किया जा सकता है। ध्वनि और प्रकाश को मनचाहे ढंग से नियंत्रित करने में दक्ष, यह कम्प्यूटर ही है जो इस 'डिजिटल युग' का मूलाधार है।

एक विवेकवान समाज में डिजिटल युग का भविष्य अत्यन्त रोमांचक हो सकता है। डिजिटल संचार की नवीनतम प्रगति का प्रयोग शिक्षा में, विश्व भर में सूचना के आदान-प्रदान में, दूरवर्ती क्षेत्रों में राजनीतिक सहभागिता को सार्थक बनाने में तथा अनेक सामाजिक हितों के कार्यों में किया जा सकता है।

जब तक इसका बाजारीकरण नहीं हुआ था, तब तक इण्टरनेट तथाकथित दूरसंचार क्रांति से उपजे सम्भवनासम्पन्न विकास का एक उदाहरण था। यदि अन्तरराष्ट्रीय वित्तपोषण एवं सहयोग से इसे विकसित किया गया होता तो इण्टरनेट निश्चित रूप से एक अन्तरराष्ट्रीय संचार-तंत्र के रूप में सामने आया होता और सभी राज्यों के लोगोंअमीर व गरीब सबको बराबर उपलब्ध होता। लेकिन इसकी सम्भावना दिन-प्रतिदिन समाप्त होती जा रही है। इण्टरनेट विज्ञापन एवं 'एक्सेस' फीस के दम पर समाज के केवल धनवान तबके का संचार तंत्र बनता जा रहा है और आबादी के बड़े हिस्से की हैसियत के बाहर की चीज बन गया है।

इस स्याह तस्वीर की वजहें बिल्कुल सीधी और स्पष्ट हैं। इण्टरनेट निजी उद्यम के कब्जे में आ चुका है और इसके विकास और बेहतर कार्यकुशलता की मांग पूरी करने के लिए भारी मात्रा में पूंजीनिवेश की जरूरत होगी। अमेरिका ऑन लाइन, कम्प्यूसर्व और नेटकॉम जैसे इण्टरनेट सेवाप्रदाता गलाकाटू होड़ और अतिरिक्त क्षमता सृजन के लिये निवेश की जरूरत के चलते भारी घाटा उठा रहे हैं।[2] इन निवेशों के वित्तपोषण के लिए इण्टरनेट सेवाप्रदाता विज्ञापनदाताओं की ओर मुड़ रहे हैं क्योंकि अधिकांश उपभोक्ताओं ने इण्टरनेट एक्सेस की उंची फीस देने में अभी तक कोई खास दिलचस्पी नहीं दिखायी है। दरअसल, 1996 की दूसरी छमाही में इण्टरनेट सेवा प्रदाताओं ने बेमन से बीस डालर प्रति माह

की फीस देने पर मनचाही एक्सेस की सुविधा उपलब्ध कराने की तरकीब आजमायी पर इसका नतीजा तबाही पैदा करने वाला रहा। यह भविष्यवाणी दावे के साथ की जा सकती है कि कम फीस वाली एक्सेस ज्यादा दिनों तक नहीं चल सकेंगी। इण्टरनेट से अलग, आम तौर पर दूरसंचार इंफ्रास्ट्रक्चर में भारी सुधार की आवश्यता है। इसके लिए भारी पूंजीनिवेश की जरूरत होगी जिससे इण्टरनेट कम्पनियों द्वारा आगे बढ़ायी जाने वाली 'हाई स्पीड' डिजिटल सेवाएं टिक सकें।

इण्टरनेट का बाजारीकरण

इण्टरनेट दरअसल फिलहाल मौजूद सूचना राजमार्ग के दायरे के भीतर राज्य-समर्थित अनुसन्धान नेटवर्क द्वारा विकसित हुआ है।

यह सच्चाई कि इण्टरनेट आज हमारे सामने मौजूद है, इस बात का प्रमाण है कि राज्य समर्थित संस्थाएं कभी-कभी कितने जबर्दस्त रूप में कारगर हो सकती हैं। लेकिन राज्य ने भले ही इलेक्ट्रानिक मेल और डाटाबेस एक्सेस जैसे चाहे जितने महत्वपूर्ण संसाधन उपलब्ध कराये हों, हकीकत यह है कि इण्टरनेट पूरे तौर पर बाजारीकरण की ओर बढ़ रहा है। होने यह जा रहा है कि कुछ ही वर्षों में उपभोक्ताओं को उन संसाधनों तक अपनी पहुंच बनाने के पहले उबाऊ बाजारू विज्ञापनों के स्क्रीनों पर झख मारना होगा। जैसा पहले उल्लेख किया जा चुका है, यह प्रवृत्ति पहले ही जोरों पर है। इसके अलावा, महंगी फीस दे सकने वाले उपभोक्ता ही इण्टरनेट पर हाई स्पीड एक्सेस पा सकेंगे। बहुतेरे इण्टरनेट सेवा प्रदाता सामान्य फीस पर मनचाहे एक्सेस को बंद कर 'भुगतान करो, आगे बढ़ो' के आधार पर सेवा प्रदान करने की प्रकिया में हैं।

इण्टरनेट के वाणिज्यिक उद्यम बन जाने को समझने के लिए इसके इतिहास का संक्षिप्त सिंहावलोकन आवश्यक होगा। इण्टरनेट का जन्म यद्यपि 1960 के दशक के उत्तरार्द्ध में अमरीकी रक्षा विभाग पेंटागन द्वारा किये गये अनुसन्धान से हुआ, लेकिन यह मुख्यतः सैन दियागो स्थित केलिफोर्निया विश्वविद्यालय, कोर्नेल विश्वविद्यालय, शैम्पेन-उर्बाना स्थित इलिनॉय विश्वविद्यालय और कोलोरेडो में बोल्डर स्थित नेशनल सेण्टर फॉर एटमॉस्फेरिक रिसर्चइन पांच स्थानों पर स्थित सुपर कम्प्यूटरों को आपस में जोड़ने के लिए डिजाइन किये गये नेटवर्क से विकसित हुआ है। एनएसएफ नेट नामक इस नेटवर्क ने 1987 में काम शुरू किया और सुपरकम्प्यूटर साइटों के बीच हाईस्पीड कनेक्शन उपलब्ध कराये जिससे दूरस्थ सरकारी एजेंसियों और अकादमिक संस्थानों से शोधकर्ता और वैज्ञानिक इन साइटों तक पहुंच सकें। क्षेत्रीय नेटवर्कों को एनएसएफ "बैकबोन" (बैकबोन को महाद्वीपीय स्तर के नेटवर्क कैरियर के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो क्षेत्रीय नेटवर्कों को जोड़ता है) एवं साथ ही नेशनल स्पेस एडमिनिस्ट्रेशन (नासा) द्वारा विकसित ऐसे ही नेटवर्क 'नेशनल सांइस इण्टरनेट' से जोड़ा गया। इस प्रकार इण्टरनेट पहले राष्ट्रीय और अन्ततोगत्वा अन्तरराष्ट्रीय स्तर की संयुक्त नेटवर्क प्रणाली से विकसित हुआ और इसने इलेक्ट्रॉनिक मेल व डाटाबेस तथा ऐसे ही अन्य इण्टरनेट साधनों जैसे न्यूज ग्रुप्स और अत्याधुनिक वर्ल्ड वाइड वेब के लिए विश्वव्यापी एक्सेस को सुगम बनाया।

कुछ वर्ष पूर्व तक, इण्टरनेट के लिए अधिकांशतः एनएसएफ, नासा और अन्य सरकारी एजेंसियों के साथ ही अकादमिक संस्थाएं धनराशि उपलब्ध कराती थीं जो इण्टरनेट के एक्सेस के लिए भुगतान करते थे। इण्टरनेट संचालित करने की वास्तविक सेवाएं 'एडवांस्ड नेटवर्क एण्ड सर्विसेज (एएनएस) कम्पनी द्वारा एनएसएफ को दिये गये ठेके के अन्तर्गत उपलब्ध करायी गयीं, जो एमसीआई, आईबीएम और मेरिट नेटवर्क्स द्वारा खड़ी की गयी एक सेवाप्रदाता कम्पनी थी। इण्टरनेट को राजकीय फण्डिंग से पूर्ण व्यापारिक संचालन के तहत लाने की प्रक्रिया में 1995 के वसन्त में इस अनुबंध को समाप्त कर दिया गया।

एनएसएफ नेट के साथ इस अनुबंध के खत्म होते ही सभी साझेदारों (एम.सी.आई, आई.बी.एम. और मेरिट) ने एएनएस को एओएल के हाथों बेच दिया (दरअसल यह हाईस्पीड फोन लाइनों और सम्बन्धित उपकरण या "बैकबोन इंफ्रास्ट्रक्चर" की बिक्री थी)।

आज इण्टरनेट को लगभग पूरी तरह एमसीआई, एटीएण्डटी, और बोल्ट, बारानेक और न्यूमैन (बीबीएन) जैसे निजी उद्यमों (नेटवर्क सर्विस प्रोवाइडर्स) द्वारा फण्डिंग हो रही है। ये उद्यम क्षेत्रीय "नेटवर्क एक्सेस प्वाइंट्स" का संचालन करते हैं जो स्थानीय सेवा प्रदाताओं, निजी कम्पनियों, विश्वविद्यालयों और अब सरकारी एजेंसियों को भी इण्टरनेट एक्सेस बेचते हैं। सरकार अब किसी भी व्यापारिक ग्राहक की तरह एक ग्राहक है। उदाहरण के लिए, मेरीलैण्ड में बेथेस्दा स्थित नेशनल लाइब्रेरी ऑफ मेडिसन एनएसएफ नेट बैकबोन से इण्टरनेट एक्सेस प्राप्त किया करती थी लेकिन अब इसे सूरानेट (बीबीएन का एक क्षेत्रीय नेटवर्क) से खरीदती है। इसी तरह विश्वविद्यालयों को भी अपना नेटवर्क एक्सेस विभिन्न सेवाप्रदाताओं से खरीदना होता है, स्टैनफोर्ड विश्वविद्यालय बार्र नेट से नेटवर्क एक्सेस खरीदता है जो बीबीएन के स्वामित्व में एक अन्य क्षेत्रीय नेटवर्क है। वैसे इसी दौरान सरकार ने एनएसएफ के तत्वावधान में एक नया प्रयोगात्मक अनुसन्धान नेटवर्क प्रारंभ कर दिया है जो 'वेरी हाई स्पीड बैकबोन नेटवर्क' (VBNS) के नाम से जाना जाता है। यह सुपर कम्प्यूटर साइटों को जोड़ने तथा नये "वेरी हाई स्पीड" नेटवर्क संचालनों के लिए परीक्षण तल उपलब्ध कराना जारी रखेगा।[4]

बड़े-बड़े संस्थान और कारपोरेशन साधारणतया अपने इण्टरनेट एक्सेस सीधे बड़े

> "सारा वैज्ञानिक श्रम, सारा आविष्कार और सारा अन्वेषण सार्विक श्रम है। यह श्रम अंशतः जीवित लोगों के सहयोग पर और अंशतः उन लोगों के श्रम के उपयोग पर निर्भर करता है जो मृत्यु को प्राप्त हो चुके हैं। इसके विपरीत सहकारी श्रम व्यक्तियों का प्रत्यक्ष सहयोग है।...
>
> ...आम तौर पर यह सबसे बेकार और निकृष्ट धनपति ही हैं कि जो मानव शक्ति के सार्विक श्रम के सभी विकासों और संयाजित श्रम के जरिये उनके सामाजिक उपयोग से अधिकतम मुनाफा बटोरते हैं।"
>
> **कार्ल मार्क्स**, 'पूंजी' खण्ड-तीन

क्षेत्रीय सेवाप्रदाताओं से पर्याप्त मासिक फीस अदा कर खरीदते हैं। इसमें चौबीस घण्टे की गारण्टीशुदा सेवा और अन्य सुविधाएं शामिल हैं। जबकि छोटे व्यवसायी और व्यक्ति अपने एक्सेस स्थानीय सेवाप्रदाताओं से खरीदते हैं। इन सेवाप्रदातों में से अधिकांश "मम्मी-पापा" टाइप घरेलू संचालन होते हैं जो कुछ फोन लाइनें लीज पर दे देते हैं और अपने ग्राहकों को एक्सेस टाइम की बिक्री करते हैं। चूंकि मांग तेजी से बढ़ती जा रही है और प्रतिस्पर्द्धा उग्र होती जा रही है अतः बहुत सम्भव है कि अगले कुछ ही वर्षों में ये "मम्मी-पापा" सेवाप्रदाता बिजनेस से बाहर हो जायें। बड़े इण्टरनेट सेवाप्रदाताओं द्वारा एक्सेस फीस बढ़ाने के कारण छोटे ऑपरेटर नयी क्षमता के लिए बड़ी हुई मांगों को पूरा करने में सक्षम नहीं हो सकेंगे और मुनाफा भी नहीं बटोर पायेंगे।[5]

क्षमता की समस्या

नियमित रूप से इण्टरनेट का उपयोग करने वाला हर व्यक्ति जानता है कि इसकी क्षमता बढ़ी हुई मांगों से पीछे जा रही है। कई संसाधन निरन्तर अनुपलब्ध होते जा रहे हैं। ग्राफिक बिम्बों का सम्प्रेषण कच्छप गति से होता है और ई-मेल लगातार अविश्वसनीय होता जा रहा है। इसका समाधान यह है कि हाई स्पीड टेलीफोन लाइनों और नेटवर्क उपकरणों को बढ़ाते हुए इसकी क्षमता बढ़ायी जाये। इसके लिए दूरसंचार कम्पनियों द्वारा भारी निवेश करने की जरूरत होगी। नयी क्षमता के लिए भारी निवेश की आवश्यकता अन्ततः छोटे सेवाप्रदाताओं को बाहर खदेड़ देगी और इण्टरनेट सेवाएं और महंगी हो जायेंगी।

क्षमता या बैंडविड्थ का प्रश्न इण्टरनेट और दूरसंचार प्रणालियों के अर्थशास्त्र का प्रमुख प्रश्न है, अतः इस पर थोड़ा विस्तार से चर्चा जरूरी है।[6] इलेक्ट्रॉनिक सूचना वितरण की धारिता (क्षमता) अवधाराणात्मक रूप से किसी पाइप की जलप्रवाहन धारिता के समतुल्य हैजितना बड़ा पाइप होगा उतनी ही अधिक मात्रा में जल का प्रवाह होगा। टेलीफोन लाइनें सूचनाओं (स्वर के रूप में या आंकड़ों के रूप में) को जिस अधिकतम दर से प्रवाहित कर सकती हैं वह प्रयुक्त केबल के प्रकार और सम्प्रेषित हो रही सूचना के प्रकार पर निर्भर करता है। मानव स्वर के सम्प्रेषण के लिए अपेक्षाकृत कम क्षमता या कम बैंडविड्थ वाले केबल की आवश्यकता होती है और प्रत्येक घर अथवा दफ्तर में उपलब्ध तांबे के तार (एक दूसरे में लिपटे हुए तारों के जोड़े) इस कार्य के लिए उपयुक्त हैं। मुड़े हुए तांबे के तारों के जोड़े फैक्स भेजने और मॉडम द्वारा प्राथमिक रूप से टेक्स्ट आधारित डाटा फाइलें भेजने के लिए उपयुक्त होते हैं। परन्तु ग्राफिक छवियों अथवा ध्वनि एवं चित्रयुक्त "मल्टी-मीडिया" सूचना सम्प्रेषित करते समय मुड़े हुए तारों के जोड़े काम नहीं कर पाते। बैंडविड्थ की यह सीमाबद्धता इण्टरनेट और "विडियो ऑन डिमाण्ड" जैसी तकनोलॉजियों, जिसमें उपभोक्ता इण्टरनेट पर ही फिल्मों को किराये पर लेकर देखते हैं, के विकास के लिए बहुत बड़े अवरोधक हैं।[7]

मुड़े हुए तांबे के तारों के बैंडविड्थ की बढ़ोत्तरी के लिए कुछ प्रौद्योगिकियां काम में लायी गयी हैं। इनमें से सबसे लोकप्रिय इण्टिग्रेटेड सर्विसेज डिजिटिल नेटवर्क (आईएसडीएन) को माना जाता है जो आजकल उपलब्ध तीव्रतम परम्परागत मॉडमों की अपेक्षा दो गुना अधिक गति से काम करता है। हालांकि यह इण्टरनेट की कार्यकुशलता में काफी बढ़ोत्तरी करता है, फिर भी आईएसडीएन अभी तक पूरी गति वाले वीडियो एवं अन्य मल्टीमीडिया सेवाएं देने के लिए अनुपयुक्त है और इसे लगाना खर्चीला एवं पेचीदा है।[8]

फाइबर ऑप्टिक और कोएक्सियल केबल सटीक समाधान हैं

उच्चतम बैंडविड्थ प्रदान करने में सक्षम दो प्रकार के केबल ज्ञात हैंफाइबर ऑप्टिकल और कोएक्सियल केबल, जो केबल टेलीविजन में प्रयुक्त होते हैं। वस्तुतः अमेरिका में सभी लम्बी दूरी वाली लाइनें और यूरोप तथा एशिया को जाने वाली पारमहाद्वीपी लाइनें अब ऑप्टिकल फाइबर केबल की होती हैं। लेकिन ये लाइनें मुख्यतः बड़ी ट्रंक लाइनें होती हैं जो एक ही साथ लाखों टेलाफोन कालों को निपटाती हैं और इण्टरनेट की बैकबोन लाइनों की भूमिका भी निभाती हैं। कार्यालयों और घरों तक फीड करने वाले टेलीफोन परिपथों के मात्र थोड़े प्रतिशत ही ऑप्टिकल फाइबर केबुल को प्रयोग में लाते हैं। इन स्थानीय लाइनों के अधिकांश भाग अभी भी मुड़े हुए तांबे के तारों के जोड़े ही होते हैं। एक अनुमान के अनुसार यदि स्थानीय स्तर पर संयुक्त राज्य अमेरिका के अधिकांश भागों को फाइबर ऑप्टिक केबुल से जोड़ा जाये तो इसमें कुल 200 से 400 अरब डालर की लागत आयेगी और इसे सम्पन्न होने में बीस से तीस वर्षों का समय लगेगा।[9]

दूसरी ओर, 60 प्रतिशत से अधिक अमेरिकी घरों में केबल टलीविजन के लिए कोएक्सियल केबल लगाये जा चुके हैं और 90 प्रतिशत अमेरिकी घरों में इसके जरिए सामग्री उपलब्ध करायी जाती है। इस केबल का स्वामित्व केबल टेलीविजन कम्पनियों के पास है, जैसे टेलीकम्युनिकेशंस इं. और वायाकॉम। कोएक्सियल केबुल हाईस्पीड इण्टरनेट एक्सेस और साथ ही मल्टीमीडिया एवं अन्य डिजिटल सूचना के लिए पर्याप्त बैंडविड्थ उपलब्ध करा सकते हैं।

लेकिन इसमें एक झोल हैआज जो कोएक्सियल केबल लगाये गये हैं वे इकतरफा संचार के लिए डिजाइन किये गये हैं। वर्तमान केबल प्रणाली, केबल कम्पनियों के वितरण बिन्दु, जिसे डेड एण्ड कहते हैं, से ग्राहकों के घरों तक सम्प्रेषित होने वाले संकेत को संवर्द्धित करने के लिए 'यूनीडाइरेक्शनल एनालॉग एम्प्लीफायर्स' का प्रयोग करती है। इण्टरनेट के इस्तेमाल के लिए अथवा अन्य "द्वि-दिशात्मक" (बाइडायरेक्शनल) संचारों के लिए आवश्यक दोतरफा संचार को सुलभ बनाने के लिए इन एम्प्लीफायरों को बदलना पड़ेगा, और यह एक महंगी योजना है। इसके अतिरिक्त, हालांकि केबल टेलीविजन आवासीय क्षेत्रों में प्रायः सर्वव्यापी है फिर भी कार्यालयों या व्यावासायिक क्षेत्रों में इसकी पैठ बहुत कम है। अतः व्यावसायिक ग्राहकों को आकर्षित करने के लिए केबल कम्पनियों को व्यावासायिक भवनों में नये केबल इंस्टालेशनों के लिए भारी निवेश करना होगा। यह लेख लिखे जाते समय तक केवल कुछ आजमायशी दोतरफा केबल परियोजनाएं ही चालू हैं और इनकी एक्सेस दरें पारम्परिक इण्टरनेट के मुकाबले बहुत ज्यादा हैं।

यह वास्तविकता कि संयुक्त राज्य अमेरिका में कोएक्सियल केबल का बुनियादी ढांचा पहले से ही मौजूद है, केबुल कम्पनियों को उच्चबैंडविड्थ नेटवर्क सेवाएं मुहैया कराने

में टेलीफोन कम्पनियों की तुलना में एक तकनीकी लाभ प्रदान करता है। लेकिन बुनियादी ढांचे में आवश्यक सुधारों के लिए केबल कम्पनियों के पास मुद्रा की कमी है। मुद्रा की इस कमी से टेलीफोन और केबल कम्पनियों के बीच विलय की सरगर्मियां तेज हो गयी हैं। इनमें से प्रस्तावित टीसीएल-बेल अटलांटिक विलय प्रमुख है जिसका आरम्भिक मूल्यांकन 16 अरब डॉलर था और उसके बाद नम्बर आता है एसबीसी (पहले साउथवेस्टर्न बेल) व कॉक्स केबल के विलय का, जिसका मूल्य 5 अरब डॉलर के लगभग आंका गया है।

ऊपर वर्णित और अन्य "केबल/टेल्को" कम्पनियों के विलय घोषणा होने के कुछ ही समय बाद लुढ़क गये। इन विलयों के धराशायी होने का दिखने वाला कारण था फेडरल कम्यूनिकेशन्स कमीशन (एफसीसी) द्वारा केबल टीवी दरों का कम किया जाना। पर वास्तविक कारण यह था कि टेलीफोन कम्पनियां बदहवासी में मुंह के बल गिर पड़ी थीं। वे इस बारे में आश्वस्त नहीं थीं कि तथाकथित सूचना राजमार्ग के लिए वांछित भारी निवेश का बोझा उपभोक्ता अपने कन्धों पर लेने को आतुर होंगे। उपभोक्ता सर्वेक्षणों और "ब्राडबैण्ड सर्विसेज" जैसे वीडियो ऑन डिमाण्ड (सनद के तौर पर फ्लोरिडा में ऑर्लेण्डो स्थित टाइम वार्नर) द्वारा किये गये वास्तविक परीक्षणों से इन आशंकाओं की पुष्टि हो चुकी है। उपभोक्ता सूचना सेवाओं के लिए लगभग पच्चीस डॉलर प्रतिमाह से अधिक खर्च करने के मूड में नहीं हैं। यह धनराशि मोटा-मोटी उसके बराबर है जो उपभोक्ता अधिकांशतः केबल टीवी के लिए खर्च करते हैं।[10]

खुले बाजार की नीतियों के साथ ऊंची फीसें अदा करने में अपभोक्ताओं की अनिच्छा न केवल भारी पूंजी निवेश को हतोत्साहित करती है बल्कि उसे जटिल भी बना देती है। आजकल क्षेत्रीय स्तर पर बेल कम्पनी अपने सेवा क्षेत्र में इजारेदारी की हैसियत में है। लेकिन तब क्या हो जब अनेक टेलीकॉम कम्पनियां पड़ोस में ही फाइबर ऑप्टिक सेवा उपलब्ध कराने को सोच रही हों? तब बुनियादी ढांचे के रखरखाव की जिम्मेदारी कौन उठायेगा? या फिर क्या ऐसा होगा कि फाइबर ऑप्टिक केबुल बिछाने के लिए प्रतिस्पर्द्धी कम्पनियां सड़क के आर-पार अपने-अपने लिए गड्ढे खोदते नजर आयेंगी? वैसे ज्यादा सम्भवना यह बनती है कि टेलीकॉम कम्पनियां अपने प्रतिस्पर्द्धियों को खरीद कर अपने-अपने सेवाक्षेत्रों में इजारेदारी कायम रखने की चेष्टा करेंगी। प्रस्तावित एसबीसी पेसीफिक और बेल अटलांटिक/नाइनेक्स का विलय इसके ज्वलन्त प्रमाण हैं।

इण्टरएक्टिव टीवी को क्या हो गया?

वर्ष 1994 के प्रारम्भ में, केबल/टेलीफोन कम्पनियों के प्रस्तावित विलय के समय, अधिकांश विश्लेषकों एवं उद्योग विशेषज्ञों (बिल गेट्स सहित) ने भविष्यवाणी की थी कि इण्टरएक्टिव टेलीविजन दूरसंचार उद्योग में अगला तकनोलॉजिकीय प्रस्फोट होगा। इण्टरएक्टिव टीवी की संकल्पना भी डिजिटल और एनालॉग तकनोलॉली के अभिसरण पर आधारित हैप्रस्तुत सन्दर्भ में पर्सनल कम्प्यूटर और टेलीविजन का अभिसरण।

इण्टरएक्टिव टीवी की धारणा यह है कि कम्प्यूटर और दूरसंचार क्षमताओं को एक छोटे से 'टॉप बाक्स' में समाहित कर दिया जाये जो टेलीविजन को नियंत्रित करता रहेगा, जिससे किसी इन्फ्रारेड निर्देशन उपकरण अथवा की-बोर्ड का प्रयोग करके सभी प्रकार की डिजिटल सूचना को टेलीविजन पर देखा जा सके और प्रयोक्ता अपने पर्सनल कम्प्यूटर से बातचीत कर सके (अतः 'इण्टरएक्टिव टीवी' शब्दावली का उद्भव हुआ)। "वीडियो ऑन डिमाण्ड" को इण्टरएक्टिव टीवी पर पहली सेवा के रूप में प्रस्तावित किया जाना था, और उसके बाद वे सेवाएं प्रस्तावित थीं जो इण्टरनेट के जरिये उपलब्ध थीं (जैसे इलेक्ट्रॉनिक मेल, इलेक्ट्रॉनिक जर्नल्स और लाइब्रेरी, इलेक्ट्रॉनिक खुदरा व्यापार सेवाएं और बहुत कुछ)।

इण्टरएक्टिव टीवी अभी तक तो थोथा चना ही साबित हुआ है, और इसके अनेक कारण हैं। पहला तो यही कि इण्टरएक्टिव टीवी जितनी बड़ी चुनौती है, इसके प्रस्तोताओं (विशेषतः केबल मनोरंजन व टेलीविजन कम्पनियां) को इसका अनुमान नहीं था। इण्टरएक्टिव टीवी को न केवल वृहद् बैंडविड्थ की आवश्यकता होती है (सीधे घरों में कनेक्शन चाहे फाइबर ऑप्टिक केबुल लाइनों द्वारा हो या कोएक्सियल केबल लाइनों द्वारा), बल्कि इसे वृहद् कम्प्यूटरी शक्ति और डिजिटल भण्डारण क्षमता की आवश्यकता भी होती है। और सर्वोपरि तौर पर, इण्टरएक्टिव टीवी तंत्र को नियंत्रित करने के लिए उसी स्तर के जटिल सॉफ्टवेयर की आवश्यकता होती है जैसा एयर-ट्रैफिक नियंत्रण प्रणाली के लिए आवश्यक होता है, और ऐसे सॉफ्टवेयर को विकसित करने का कार्य निराशाजनक साबित हो चुका है।

ये तकनीकी अड़चनें, और उपभोक्ताओं द्वारा कीमत अदा करने में हिचकिचाहट भी, इण्टरएक्टिव टीवी में दिलचस्पी रखने वाली टेलीकॉम कम्पनियों को निरूत्साहित करने के प्रमुख कारण बन चुके हैं। इसके अलावा, धूम मचा रहा इण्टरनेट एक आकर्षक और बहुत ही सुविधाजनक विकल्प बन चुका है। यूं भी, इण्टरनेट पहले से मौजूद है और उपभोक्ताओं को अपेक्षाकृत सस्ता पड़ता है। समस्या यह है कि यदि इण्टरनेट टीवी को उसी प्रकार की सेवाएं प्रदान करने के लिए विकसित करना है जो इण्टरएक्टिव टीवी के लिए कल्पित थे तो पुनः टेलीकॉम कम्पनियों को भारी-भरकम निवेश करने की जरूरत के साथ ही ठीक उन्हीं तकनीकी अड़चनों का सामना करना पड़ेगा।[11] विडम्बना यह है कि वेब टीवी के नाम से विख्यात, टीवी और इण्टरनेट को संयुक्त करने का प्रयास पूर्णतः विफल हो चुका है, यद्यपि यह कम्पनी माइक्रोसॉफ्ट द्वारा अधिगृहित की जा चुकी है।[12]

बेतार विकल्प नहीं

संचार क्षमता के प्रश्न का व्यावहारिक समाधान बेतार नहीं है। एक बात तो यही है कि बहुत ही सीमित मात्रा में रेडियो स्पेक्ट्रम उपलब्ध है। जहां तारयुक्त संचार प्रणाली के विस्तार की कोई भौतिक सीमा नहीं है (इसे हम बस केबल जोड़ते हुए बढ़ाते रह सकते हैं), वहीं हम रेडियो और माइक्रोवेव स्पेक्ट्रम को जोड़ते हुए नहीं बढ़ा सकते। साथ ही, रेडियो आवृत्तियां एक महंगा माल हो चुकी हैं। एफसीसी ने अभी हाल में तथाकथित पर्सनल कम्युनिकेशंस सर्विसेज (पीसीएस) के लिए कुछ फ्रीक्वेंसी बैंड उपलब्ध करायीं, जो सेलुलर टेलीफोन सेवा के संवर्द्धन के लिए करायी गयीं। इसमें कुछ नयी विशेषताएं शामिल थीं, जैसे, समाचारों तथा शेयर बाजार भाव रिपोर्टों का हाथ में आसानी से आ जाने वाले (छोटे) यंत्रों तक सम्प्रेषण। एफसीसी पीसीएस

सेवाएं प्रदान करने की इच्छुक कम्पनियों को इन फ्रीक्वेंसी बैंड को इस्तेमाल करने के लाइसेंसों की नीलामी करती आ रही है, और लगभग 10 अरब डालर की बोलियां प्राप्त कर चुकी है।[13] हम निश्चित तौर पर कह सकते हैं कि इन बेहिसाब प्रवेश दरों के चलते ये पीसीएस सेवाएं केवल मालदार उपभोक्ताओं और व्यावसायिक "सत्पुरुषों" को ही नसीब हो सकली हैं। दरअसल, इन फ्रीक्वेंसी बैंड के लिए निविदाएं हासिल करने वाली तमाम कम्पनियां वित्तीय संकटों में फंसने वाली थीं।

सेलुलर टेलीफोनी शब्द-संचार के लिए तो दुरुस्त है पर डिजिटल डाटा सम्प्रेषण के लिए इसकी क्षमता सीमित है, जिसके सम्प्रेषण के लिए मानवीय स्वर के सम्प्रेषण की तुलना में अत्यधिक सूक्ष्मता की आवश्यकता होती है। सेलुलर टेलीफोनी सेलुलर बेस स्टेशन के सिद्धान्त पर कार्य करता है, जिसके द्वारा एक स्टेशन से दूसरे स्टेशन तक सिग्नल का "हस्तमुक्त संचरण" होता है। (प्रत्येक बेस स्टेशन लगभग आठ मील के व्यास के दायरे में षट्भुजाकार क्षेत्र में प्रभावी रहता है जिसे सेल कहते हैंइसी से सेलुलर नाम पड़ा)।

यदि आपने कभी सेलुलर फोन पर, विशेषतया सुदूर स्थित किसी व्यक्ति से बातचीत की हो तो आपने अनुभव किया होगा कि जैसे ही सिग्नल एक बेस स्टेशन से दूसरे बेस स्टेशन तक संचरण करता है तो कुछ रुकावटें और "रिक्त अन्तराल" सुनायी देते हैं। टेलीफोनी बातचीत में ये रिक्त अन्तराल हल्की झुंझलाहट पैदा करते हैं। जबकि किसी डाटा के सम्प्रेषण के समय ये भारी अवरोध बन जाते हैं। डाटा सम्प्रेषण को सुगम बनाने के लिए सेलुलर टेलीफोनी में अब कुछ डिजिटल तकनीकों का प्रयोग किया जा रहा है, लेकिन बैंडविड्थ कम ही रहता है और कीमत अधिक रहती है।[14]

सबसे महत्वपूर्ण तथ्य जो सामने आता है वह यह है कि बेतार संचारों में क्षमता वृद्धि का जुगाड़ करने की अपेक्षा फाइबर ऑप्टिक केबुल में क्षमता वृद्धि की युक्ति अधिक विवेकपूर्ण है। बेतार संचार मोबाइल प्रयोगों और रेडियो तथा टेलीविजन प्रसारणों (सेटेलाइट सहित) के लिए अधिक उपयुक्त है और सम्भवतः भविष्य में भी उन्हीं उद्देश्यों के लिए इसका उपयोग किया जाता रहेगा।

बाजार शक्तियां एक अच्छी चीज को नष्ट कर देंगी

जैसा पहले उल्लेख किया जा चुका है, इण्टरनेट अनुसन्धान उद्देश्यों के लिए विकसित किया गया और संघीय सरकार द्वारा इसकी फण्डिंग की गयी थी। इण्टरनेट एक देदीप्यमान तकनीकी उपलब्धि था जो मुक्त बाजार में कभी भी प्राप्त नहीं हो सकता था। हाल में इसके निजीकरण के पहले तक, लगभग दस वर्षों तक, इण्टरनेट, किसी के लिए भी बिना कोई प्रर्याप्त मुनाफा उत्पन्न किये अस्तित्व में बना रहा। निश्चित रूप से ए एन एस (निजी कन्सोर्टियम जिसने नेटवर्क सेवाओं का जाल फैलाया) के लिए यह कोई धनउगाही की मशीन नहीं था। यह शोधकर्ताओं और विद्यार्थियों तथा सरकारी एजेंसियों के लिए वृहत्तर उपयोगी संसाधन होता आया है। इसने प्रयोक्ताओं को सुदूर स्थित विश्वव्यापी लाइब्रेरियों से दस्तावेजों का पता लगाने और वैज्ञानिक तथा चिकित्सकीय शोध- सम्बन्धित सामग्री प्राप्त करने में काफी मदद की है। इसने बोलने की आजादी के दमन और सेंसरशिप को मात देने की शक्तिशाली पद्धति के रूप में लोगों के बीच विश्वव्यापी स्तर की हैसियत से विशाल सम्भावनाएं प्रदर्शित की हैं। इसका अच्छा दृष्टान्त हमें देखने को मिलता है, जब चियापास विद्रोह में शामिल लोगों ने उन रिपोर्टो को भेजने के लिये इण्टरनेट का उपयोग किया जो मेक्सिको की मीडिया द्वारा दबायी जा रही थीं। बर्मा में भी क्रान्तिकारी आन्दोलन द्वारा इसी प्रकार की संचार तकनीकों का प्रयोग किया।

इण्टरनेट इस बात का एक मॉडल बन चुका है कि सार्वजनिक निधि और परिवर्तनकारी तकनोलॉजी के संयोजन से क्या कुछ हासिल किया जा सकता है। आज, इसको सहज इलेक्ट्रॉनिक खरीदारी के केन्द्र और विक्रय अनुसूची(सेल्स कैटलॉग)में बदला जा चुका है। और यह महज चन्द समय की बात रह गयी है जब बाजारीकरण के इस दौर में इण्टरनेट की सर्वाधिक उपयोगी विशेषताएं विलुप्त हो जायेंगी।

यही बातें दूरसंचार इन्फ्रास्ट्रक्चर के लिए भी लागू होती हैं। विश्वभर में टेलीकॉम कम्पनियों को नियंत्रणमुक्त कर उनका निजीकरण करने की संयुक्त राज्य अमेरिका की वर्तमान कार्रवायों से यह स्पष्ट है कि अब बाजार शक्तियां ही यह निर्धारित करेंगी कि दूरसंचार इन्फ्रास्ट्रक्चर का कब और कहां आधुनिकीकरण किया जाये। अन्तरराष्ट्रीय दूरसंचार बाजारों को खोलने के लिए विश्व व्यापार संगठन द्वारा हाल में किया गया समझौता महज विश्वस्तर पर निजीकरण को त्वरित करेगा और दूरसंचार लकड़बग्घों की सत्ता के वर्चस्व को बड़ायेगा।15 दूरसंचार निजीकरण की यह कदम वैसा ही है जैसे यातायात इन्फ्रास्ट्रक्चर (उदाहरणार्थ सड़कें, राजमार्ग और सेतु आदि) को निजी उद्यमों के नियंत्रण में दिया जाता है और यात्रियों से मनमाना मार्ग-कर वसूला जाता है। (दरअसल, संयुक्त राज्य अमेरिका में कई राजमार्गों के स्ववित्तपोषित निर्माणों के साथ ऐसी बातें शुरू हो रही हैं जो केवल शुल्क अदा करने और ग्राहकों को ही सुलभ हो सकेगा।)

विश्व स्तर पर निजी उद्यम द्वारा नियंत्रित दूरसंचार के एक "उत्पाद" हो जाने से कोई सन्देह नहीं रह गया है कि विश्व जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा हाईस्पीड दूरसंचार के लाभों से वंचित रह जायेगा। तकनोलॉजी विशेषतः वहां पहुंचेगी जहां धन बटोरना होगा। बिल गेट्स और उनके संगी-साथी "स्वप्नद्रष्टा" स्वार्थहीन मानवतावादी नहीं हैं। वे ऐसे पूंजीपति हैं जो "न भूतो न भविष्यत" मुनाफा बटोरने के दिवास्वप्न में डूबे हैं, और दुर्भाग्यवश ऐसा प्रतीत होता है कि यह दिवास्वप्न सूचना राजमार्ग का नेतृत्व करेगा।

टिप्पणियां

1. द इकनॉमिस्ट, 8 मार्च 1997,पृ.75
2.वही।
3.वही।
4.इण्टरनेट के अतिरिक्त पृष्ठभूमि के लिए देखें एन.बरान."द ग्रेटेस्ट शो ऑन अर्थ" BYTE, जुलाई 1995।
5. एन.बरान, "प्राइवटाइजिंग साइबरस्पेस" द न्यू इंटरनेशनलिस्ट, दिसम्बर 1996।
6. बैंडविड्थ शब्द फ्रिक्वेंसी बैंड शब्द से निःसृत है, जो रेडियो तरंगों में पाया जाता है। एनालॉग रेडियो के संदर्भ में, फ्रिक्वेंसी बैंड जितना चौड़ा होगा उतने ही अधिक स्टेशन एक ही समय पर संप्रेषित कर सकते हैं, कम्प्यूटर शब्दावली में, बैंड का विस्तार जितना अधिक होगा, किसी

भी प्रदत्त समयावधि में उतना ही अधिक आंकड़े स्थानांतरित कर सकते हैं। और अधिक विस्तृत विवेचन के लिए देखें एन. बरान, 'इनसाइड द इन्फार्मेशन हाइवे रिवोल्यूशन'।

7. दूरसंचार कंपनियों ने ब्रॉड बैंड सर्विसेज की संकल्पना को अत्यधिक बढ़ावा दिया है, जिसका मूलतः अभिप्राय है, 'चलचित्रों और अन्य मनोरंजन का फोन लाइन से संप्रेषण' जिसके लिए उच्च बैंडविड्थ की जरूरत होती है (अतः "ब्रॉडबैंड" शब्द का उद्भव हुआ)।

8. आई एस डी एन व व्यावर्तित युग्म (ट्विस्टेड पेयर) की अन्य तकनोलॉजियों पर अधिक जानकारी के लिए, देखें ए.राइनहार्ट, "बिल्डिंग द डाटा हाइवे", BYTE, मार्च 1994।

9. ह्यूजेस इलेक्ट्रॉनिक कार्पोरेशन, एक सेटेलाइट निर्माता, द्वारा संपन्न अध्ययन से उद्धृत; देखें पी आर नयूज़वायर, 3 मई 1994।

10. ह्यूलेट-पेकार्ड द्वारा कराए सर्वेक्षण से; देखें 'वालस्ट्रीट जर्नल', 29 नवंबर, 1994।

11. इण्टरएक्टिव टीवी पर अधिक जानकारी के लिए, देखें बरान, 'इनसाइड द इन्फॉर्मेशन हाईवे'।

12. 'द इकनॉमिस्ट', 8 मार्च 1997,पृ.75।

13. वाल स्ट्रीट जनरल', 1 अप्रैल 1996।

14. बेतार संचार (वायरलेस कम्यूनिकेशंस) पर अतिरिक्त विवरण के लिए देखें, बरान, 'इनसाइड द इन्फॉर्मेशन हाईवे '।

15. "Telecom's Potential Shines in WTO Pact", लॉस एंजेलेस टाइम्स, 17 फरवरी 1997।

('Capitalism and the Information Age' पुस्तक से)

अनु. **सी.एल.गुप्ता**

फलस्तीन की आजादी...

पेज 64 से आगे

का चलन बढ़ता जा रहा है। इन हालात में अगर कोई सोचता है कि फलस्तीनी राष्ट्र के सवाल को दरकिनार कर पश्चिम एशिया में शान्ति कायम की जा सकती है तो वह इतिहास को मुँह चिढ़ा रहा है।

इतिहास गवाह है कि कोई भी कौम कभी भी इतनी पीछे नहीं धकेली जा सकती कि वह आगे बढ़ने का साहस हमेशा के लिए खो बैठे। न ही किसी कौम का पूरा सफाया ही किया जा सकता है। आज इजरायली शासक अपनी "उपलब्धियों" पर चाहे कितनी खुशियाँ मना लें, लेकिन वे फलस्तीन की आजादी को पूरी तरह कभी हजम नहीं कर सकते।

जैसा कि पहले भी हुआ है फलस्तीनी अवाम फीनिक्स पक्षी की तरह बार-बार भस्म होने के बाद फिर से जी उठती है। 1982 के हमले के बाद इजरायली शासकों ने सोचा था कि फलस्तीनियों के मनोबल को पूरी तरह कुचल दिया गया है, लेकिन 1987 में पहला इन्तिफादा फूट पड़ा। 1993 में ओस्लो समझौते के बाद एक बार फिर अमेरिका-इजरायल की शैतानी धुरी ने सोचा था कि फलस्तीनी अवाम अपमानजनक समझौते के तहत मिली अपनी लूली-लंगड़ी आजादी को अपनी नियति मानकर खामोश हो जायेगी। लेकिन सितम्बर 2000 में दूसरा इन्तिफादा फूट पड़ा। इस बार भी अपवाद नहीं होगा। फलस्तीनी शहीदों का खून रक्तबीज बनकर धरती पर बिखरा पड़ा है, जो धरती की कोख से नये-नये फलस्तीनी योद्धाओं को जन्म देता रहेगा। लड़ाई जारी रहेगी तब तक, जब तक कि फलस्तीनी अवाम मुकम्मल आजादी नहीं हासिल कर लेता।

साथ ही, अगर आज का फलस्तीनी नेतृत्व जनाकांक्षाओं को पूरा करने में नाकाम रहेगा तो कल फलस्तीनी अवाम अपना नया नेतृत्व भी पैदा कर लेगा। उसके पास अब एक नहीं, दो-दो इन्तिफादा का समृद्ध अनुभव संचित हो चुका है और पराजयों से उसका संकल्प और भी मजबूत होता जा रहा है। ऐसे में नेतृत्व का सवाल भी वह अमेरिकी-इजरायली शर्तों पर नहीं बल्कि अपनी शर्तों पर किसी न किसी रूप में हल कर लेगा।

(17 अक्टूबर 2003)

नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक

बिगुल

मेहनतकशों का
इंकलाबी
मासिक अखबार

एक अंक : 3 रु. वार्षिक : 36 रु.
(डाकव्यय सहित 40 रुपए)

प्राप्त करने के लिए लिखें :

जनचेतना, डी-68, निरालानगर
लखनऊ-226010

यूं ही हमेशा उलझती रही है जुल्म से खल्क, न उनकी हार नई है न अपनी जीत नई
यूं ही हमेशा खिलाये हैं हमने आग में फूल, न उनकी रस्म नई है न अपनी रीत नई

इंकलाबी छात्रों-युवाओं की त्रैमासिक पत्रिका

आह्वान कैम्पस टाइम्स

सम्पादकीय कार्यालय : 'आह्वान कार्यालय', कल्याणपुर, गोरखपुर-273 001
एक प्रति : छह रुपए, वार्षिक : 24 रुपए (डाकव्यय सहित 40 रुपए)
email : ahwancampustimes@rediffmail.com

सोच

रचना, विचार और विमर्श का उद्यम

संपादक : **पंकज सिंह**

पहले अंक की सामग्री

कुमार अम्बुज, विष्णु नागर और शुभा की कविताएं • उपेन्द्रनाथ अश्क, संजय कुन्दन और सविता सिंह की कहानियां • नोम चोम्स्की का साक्षात्कारः भूमंडलीकरण, वर्ल्ड सोशल फोरम और अमरीका • साम्प्रदायिकता विरोध और हमअसग़र वजाहत • कार्ल मार्क्स की वापसीरणधीर सिंह • नाजिम हिक्मत की जन्मशती परअसद जैदी • मुक्तिबोध पर सुधीश पचौरी • इरादतन जवानीकृष्ण कुमार • कविता की समझप्रभात त्रिपाठी • हिंदी समाज में साहित्य और साहित्यकारअरुण कमल • सौन्दर्यशास्त्रीय विचारख्वान रामोन ख़िमेनेस • ऋत्विक घटक पर पार्थ चटर्जी का संस्मरण • इराक युद्ध और मीडिया पर कमल गौतम और अनिल चटर्जी

सम्पर्क : 604, ब्लॉक 28, ईस्ट एंड अपार्टमेंट्स, मयूर विहार फेज-1 एक्सटेंशन, दिल्ली-110096 फोन : 011-22719840, 9810731911

मूल्य : 60 रु. **4 अंकों के लिए 225 रु.**

IMAGE ET CETERA के नाम से बैंक ड्राफ्ट या मनीआर्डर भिजवाएं

Hosp. (0551) **2292848** **2292340** **email : rajak@nda.vsnl.net.in**

RAJ EYE HOSPITAL (P) LTD. GORAKHPUR

राज आई हास्पीटल एवं लेसिक सेन्टर

Wish You Good Health

नसीराबाद, गोरखपुर (यू.पी.)
झंकार सिनेमा से 50 कदम पश्चिम

• आँख का पावर ठीक करने के लिए लेसिक लेजर • डायबेटिक रेटिनोपैथी का इलाज • कम्पयूटराइज्ड नेत्र परीक्षण व रिकार्डस कीपिंग • ग्लूकोमा मैनेजमेण्ट कम्प्यूटराइज्ड टेंशन मीटर व ऑटोमेटेड पेरोमीटर की सहायता से • फेको सर्जरी • लेसर सर्जरी • इण्ट्रा ऑकुलर लेंस इम्प्लाण्टेशन • कॉण्टेक्ट लेंस फिटिंग • रेटिना सर्विस

शनिवार बन्द

नया वर्ष
नयी उम्मीदों
नयी तैयारियों
नयी शुरुआतों के नाम,
पराजय की घड़ी में भी
विजय के स्वप्नों के नाम,
लगातार लड़ते रहने की
जिद के नाम
संकल्पों के नाम
जीवन, संघर्ष और सृजन के नाम

निराशा, पस्तहिम्मती, अनिश्चय और अविवेक के कुहासेभरे इस माहौल में
अपने अपनों को
आशा, उत्साह और जीवन को बेहतर बनाने के प्रण से लवरेज़ पैग़ाम भेजिए

सुन्दर, सुरुचिपूर्ण और सोद्देश्य बधाई कार्ड

निराला, मुक्तिबोध, रवींद्रनाथ ठाकुर, त्रिलोचन, फैज, अली सरदार जाफरी, ब्रेष्ट, मायकोवस्की, पाब्लो नेरूदा, माओ त्से-तुङ, वोले शोयिंका, जोस दि दिएगो, शंकर गुहा नियोगी, कात्यायनी, वेणुगोपाल, आदि की कविताओं और कलात्मक चित्रांकनों से सज्जित रंगीन आकर्षक कार्ड

पोस्टकार्ड 3 रुपये, **बड़े कार्ड (फोल्डर) - 8 रुपये**

सम्पर्क करें : जनचेतना, डी-68, निरालानगर, **लखनऊ**-226 010 फोनः 2786782; जनचेतना स्टाल, निकट काफी हाउस, हजरतगंज, **लखनऊ**; जनचेतना, जाफरा बाजार, **गोरखपुर**-273001 फोनः 2241922; जनचेतना, 989, पुराना कटरा, मनमोहन पार्क, यूनिवर्सिटी रोड, **इलाहाबाद** फोनः 2461661; जनचेतना, ग्राम भदईपुरा, **रुद्रपुर**, ऊधमसिंहनगर; जनचेतना ठेला, चौड़ा मोड़, **नोएडा**, फोनः 0120-3096414

ये कार्ड खरीदकर आप जनपक्षधर, प्रगतिशील पत्र-पत्रिकाओं और पुस्तकों के प्रकाशन में सहयोग भी करेंगे।

बेहतर ज़िन्दगी का रास्ता बेहतर किताबों से होकर जाता है

घटिया साहित्य के घटाटोप और अपसंस्कृति के अंधेरे में उत्कृष्ट, स्तरीय, जनपक्षधर, क्रान्तिकारी, क्लासिकी साहित्य को जन-जन तक पहुंचाने का एक अभियान

आम लोगों के लिए
जरूरी हैं वे किताबें
जो उनकी ज़िन्दगी की घुटन
और मुक्ति के स्वप्नों तक
पहुंचाती हैं विचार
जैसे कि बारूद की ढेरी तक
आग की चिनगारी।
घर-घर तक चिनगारी छिटकाने वाला
तेज हवा का झोंका बन जाना होगा
जिन्दगी और आने वाले दिनों का सच
बतलाने वाली किताबों को
जन-जन तक पहुंचाना होगा।

ऐसी किताबों को जन-जन तक पहुंचाना नये सर्वहारा नवजागरण-प्रबोधन का एक जरूरी कार्यभार है। वैकल्पिक मीडिया खड़ा करने की मुहिम का एक अहम कदम है। बड़बोली विज्ञापनबाजी से दूर, 'जनचेतना' पिछले पन्द्रह वर्ष से चुपचाप इस अभियान में जुटी है।

आज जब किताबें मुख्यतः पुस्तकालयों में कैद हो जाने के लिए छापी जा रही हैं और आम पाठकों और किताबों के बीच दूरी बढ़ती जा रही है, 'जनचेतना' अपने पांच मुख्य वितरण केन्द्रों, दो सचल स्टालों, अनेक छोटे स्टालों तथा वर्षभर चलने वाली छोटी-बड़ी प्रदर्शनियों के जरिए किताबों को लेकर सीधे पाठकों के बीच जाती है, नये पाठक और पुस्तकप्रेमी तैयार करती है। इसके कार्यकर्ता झोले में किताबें लेकर घरों, दफ्तरों, कारखाना क्षेत्रों, मजदूर बस्तियों और कालेजों में जाते हैं।

हिन्दी क्षेत्र में यह अपने ढंग का एक अनूठा प्रयास है। एक भी वैतनिक स्टाफ के बिना, समर्पित वालंटियरों और विभिन्न सहयोगी जनसंगठनों के कार्यकर्ताओं के बूते पर यह प्रोजेक्ट आगे बढ़ रहा है।

'परिकल्पना प्रकाशन' और 'राहुल फाउण्डेशन' के प्रकाशन प्रभाग की पुस्तकों का 'जनचेतना' मुख्य वितरक है। ये प्रकाशन पांच स्रोतोंसरकार, राजनीतिक पार्टियों, कारपोरेट घरानों, बहुराष्ट्रीय निगमों और विदेशी फण्डिंग एजेंसियों से किसी भी प्रकार का अनुदान या वित्तीय सहायता लिये बिना जनता से जुटाये गये संसाधनों के आधार पर आज के दौर के लिए जरूरी व महत्त्वपूर्ण साहित्य बेहद सस्ती दरों पर उपलब्ध कराने के लिए प्रतिबद्ध हैं।

परिकल्पना प्रकाशन की प्रस्तुतियां

शहीदेआजम की जेल नोटबुक **भगतसिंह**
पृष्ठ : 204, मूल्य : रु. 60.00

विचारों की सान पर
भगतसिंह और साथियों के चुने हुए लेख और दस्तावेज
पृष्ठ : 104, मूल्य : रु. 25.00

मक्सिम गोर्की की आठ पुस्तकों की मंजूषा

मां (उपन्यास) पृष्ठ : , मूल्य : रु. 70.00
फोमा गोर्देयेव (उपन्यास) पृष्ठ : 256, मूल्य : रु. 55.00
अभागा (उपन्यास) पृष्ठ : 128, मूल्य : रु. 25.00
बेकरी का मालिक (उपन्यास) पृष्ठ : 110, मूल्य : रु. 25.00
तलछट (नाटक) पृष्ठ : 128, मूल्य : रु. 30.00

चुनी हुई कहानियां
खण्ड एक पृष्ठ : 168, मूल्यः रु. 35.00
खण्ड दो पृष्ठ : 264, मूल्य : रु. 50.00
खण्ड तीन शीघ्र प्रकाश्य

सृजन की प्रक्रिया और शिल्प के बारे में
पृष्ठ : 160, मूल्य : रु. 30.00

तोल्स्तोय : एक शब्दचित्र
पृष्ठ : 80, मूल्य : रु. 20.00

ଌ ଌ ଌ

अंतोन चेखव : चुनी हुई कहानियां (दो खण्डों में)
पृष्ठ : 250 मूल्य : रु. 60.00

मार्क्सवाद और भाषाविज्ञान की समस्याएं
जे.वी. स्तालिन पृष्ठ : 48, मूल्य : रु. 15.00

निकोलाई आस्त्रोवस्की : जय जीवन!
पृष्ठ : 220, मूल्य : रु. 50.00

बेलिंस्की, हर्ज़न, चेर्नीशेव्स्की, दोब्रोल्युबोव
दर्शन, साहित्य और आलोचना
पृष्ठ : 256, मूल्य : रु. 60.00

चिरस्मरणीय (उपन्यास) **निरंजन**
पृष्ठ : 168, मूल्य : रु. 35

पांच कहानियां : पुश्किन मूल्य : रु. 30.00
दो अमर कहानियां : लू शुन मूल्य : रु. 20.00
श्रेष्ठ कहानियां : प्रेमचंद मूल्य : रु. 20.00
तीन कहानियां : गोगोल मूल्य : रु. 30.00

अब इंसाफ होने वाला है : शकील सिद्दीकी (सं.)
भारत और पाकिस्तान की उर्दू की प्रगतिशील कहानियों का प्रतिनिधि संकलन। मूल्य : रु. 75.00

माओ त्से-तुङ की कविताएं
राजनीतिक पृष्ठभूमि सहित विस्तृत टिप्पणियां एवं अनुवाद : **सत्यव्रत**
मूल्य : रु. 20.00

इकहत्तर कविताएं और तीस छोटी कहानियां : बेर्टोल्ट ब्रेष्ट
मूल जर्मन से अनुवाद : **मोहन थपलियाल,** मूल्य : रु. 60.00

समर तो शेष है...
इप्टा के दौर से आज तक के प्रतिनिधि क्रान्तिकारी समूहगीतों का अनन्य संकलन। मूल्य : रु. 35.00

मध्यवर्ग का शोकगीत : हान्स माग्नुस एंत्सेंसबर्गर
सम्पादन एवं अनुवाद : **सुरेश सलिल,** मूल्य : रु. 25.00

लहू है कि तब भी गाता है : पाश मूल्य : रु. 75.0

यह मुखौटा किसका है : विमल कुमार
मूल्य : रु. 35.00

दुर्ग द्वार पर दस्तक : कात्यायनी मूल्य : रु. 50.00

माओवादी अर्थशास्त्र और समाजवाद का भविष्य
रेमण्ड लोट्टा, मूल्य : रु. 25.00

क्रान्ति का विज्ञान : लेनी वुल्फ मूल्य : रु. 10.00

राहुल फाउण्डेशन के नये प्रकाशन

उम्मीद एक ज़िन्दा शब्द है
('दायित्वबोध' के महत्वपूर्ण सम्पादकीय लेखों का संकलन)
पृष्ठ : 224, मूल्य : रु. 60.00

एनजीओ : एक खतरनाक साम्राज्यवादी कुचक्र
पृष्ठ : 104, मूल्य : रु. 25.00

कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र
कार्ल मार्क्स, फ्रेडरिक एंगेल्स मूल्य : रु. 10.00

माओ त्से-तुङ : दर्शन विषयक पांच निबन्ध
पृष्ठ : 128, मूल्य : रु. 25.00

माओ त्से-तुङ : कला-साहित्य विषयक एक भाषण और पांच दस्तावेज पृष्ठ : 48 मूल्य : रु. 12.00

लेनिन : तोल्स्तोय के बारे में मूल्य : रु. 8.00

बोल्शेविक पार्टी का इतिहास पृष्ठः 352 मूल्य : 80/-

Mao Tse-tung : Selected Readings
A selection of Mao's most important articles.
Pages : 508 Price : Rs. 65.00

माओ त्से-तुङ की रचनाओं के उद्धरण मूल्य : रु. 35.00

Quotations from Mao Tse-Tung 40/-

लेनिन की नौ पुस्तकें

समाजवाद और युद्ध मूल्य : रु. 10.00

साम्राज्यवादः पूंजीवाद की चरम अवस्था मूल्य : रु. 25.00

राज्य और क्रान्ति मूल्य : रु. 25.00

सर्वहारा क्रान्ति और गद्दार काउत्स्की
मूल्य : रु. 15.00 (शीघ्र प्रकाश्य)

दूसरे इण्टरनेशनल का पतन मूल्य : रु. 10.00

गांव के गरीबों से मूल्य : रु. 10.00

मार्क्सवाद का विकृत रूप तथा साम्राज्यवादी अर्थवाद
मूल्य : रु. 10.00

कार्ल मार्क्स और उनकी शिक्षा मूल्य : रु. 10.00

पार्टी साहित्य और पार्टी संगठन लेनिन मूल्य : रु. 15.00

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद वी. अदोरात्सकी मूल्य : रु. 15.00

राजनीतिक अर्थशास्त्र के मूलभूत सिद्धान्त (दो खण्ड)
(दि शंघाई टेक्स्टबुक आफ पोलिटिकल इकॉनमी) हर खण्ड : रु. 60.00

बुर्जुआ वर्ग पर सर्वतोमुखी अधिनायकत्व लागू करने के बारे में
चाङ चुन-चियाओ मूल्य : रु. 3.00

अक्टूबर क्रान्ति और लेनिन अल्बर्ट रीस विलियम्स
मूल्य : रु. 75.00

दायित्वबोध पुस्तिका श्रृंखला

अनश्वर हैं सर्वहारा संघर्षों की अग्निशिखाएं
दीपायन बोस मूल्य : रु. 10.00

समाजवाद की समस्याएं, पूंजीवादी पुनर्स्थापना और
महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति शशि प्रकाश मूल्य : रु. 12.00

क्यों माओवाद शशि प्रकाश मूल्य : रु. 10.00

बिगुल पुस्तिकाएं

अक्टूबर क्रान्ति की मशाल रु. 12.00

पेरिस कम्यून की अमर कहानी : रु. 12.00

कम्युनिस्ट पार्टी का संगठन और उसका ढांचा लेनिन 5/-

मकड़ा और मक्खी विल्हेल्म लीब्कनेख्त 2/-

ट्रेडयूनियन काम के जनवादी तरीके सेर्गेई रोस्तोवस्की 2/-

पूरी पुस्तकसूची व पुस्तकें मंगाने के लिए सम्पर्क करें :

जनचेतना

डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020
काफी हाउस के पास, हजरतगंज, लखनऊ (शाम 5 से 8.30)
जाफरा बाजार, गोरखपुर-273001
989, पुराना कटरा, यूनिवर्सिटी रोड, इलाहाबाद
जनचेतना ठेला, चौड़ा मोड़, नोएडा (शाम 5 से 8.30)
ग्राम भदईपुरा, रुद्रपुर, ऊधमसिंहनगर
email : janchetna@rediffmail.com

विश्व साहित्य के अमर ग्रंथों का हिन्दी अनुवाद

अन्ना कारेनिना (दो खंड)

लेव तोल्स्तोय • *अनु. मदनलाल मधु*

इसकी मुख्य कथा अन्ना, उसके पति कारेनिन और प्रेमी ब्रोन्स्की से संबंधित है। लेखन ने तत्कालीन जीवन का ऐसा विशद, मार्मिक और बहुमुखी चित्र प्रस्तुत किया है कि पाठक पढ़ते ही दंग रह जाता है और परिवेश के चित्रण में तो तोल्स्तोय ने कमाल कर दिया है।

पेपरबैक मूल्य : 85; सजिल्द : 495 (प्रत्येक खंड)

धीरे बहे दोन रे... (दो खंड)

मिखाइल शोलोखोव • *अनु. गोपीकृष्ण 'गोपेश'*

नोबेल पुरस्कार विजेता लेखक के इस विश्वविख्यात उपन्यास में रूसी क्रांति से प्रभावित जीवन के नैतिक आचार-व्यवहार, सामान्य जीवन-परिचर्या और मानवीय मनोविज्ञान की झलक है। *पे.बै. मूल्य : 100; सजिल्द : 530 (प्रत्येक खंड)*

सुर्ख और स्याह

स्तांधाल • *अनु. नेमिचन्द्र जैन*

मनो-विश्लेषणात्मक यथार्थवाद के प्रवर्तक की प्रसिद्ध औपन्यासिक कृति जिसमें नायक जुलिएं के चरित्र के माध्यम से तत्कालीन फ्रांसीसी समाज के नैतिक मूल्यों के वीभत्स यथार्थ को बेलाग-लपेट प्रस्तुत किया गया है।

पे.बै. मूल्य :85; सजिल्द : 495

कला के सामाजिक उद्गम

गिओर्गी प्लेखानोव • *अनु. विश्वनाथ मिश्र*

आज भी कला-साहित्य की मार्क्सवादी सैद्धान्तिकी की सही समझ हासिल करने और भांति-भांति के नव वामपंथी विचलनों को समझने की दृष्टि से प्लेखानोव का कला-साहित्य विषयक लेखन क्लासिकी की भूमिका निभाता है। कला-साहित्य-संस्कृति के महत्वपूर्ण और आज भी प्रासंगिक सवालों से जूझती इस पुस्तक में प्लेखानोव की दो महत्वपूर्ण कृतियों को प्रस्तुत किया गया है। *पेपरबैक मूल्य : 75; सजिल्द : 295*

स्त्री अधिकारों का औचित्य साधन

मेरी वोल्स्टनक्राफ्ट • *अनु. मीनाक्षी*

स्त्री-मुक्ति विमर्श की सुदीर्घ परम्परा में जिस कृति को क्लासिकी कृति होने का श्रेय प्राप्त है, वह यही पुस्तक है। विश्व क्लासिकी श्रृंखला में इस पुस्तक की उपस्थिति एक विशेष उपलब्धि है। *पेपरबैक मूल्य : 75; सजिल्द : 295*

क्रूजर सोनाटा (लघु उपन्यास एवं कहानियां)

लेव तोल्स्तोय • *अनु. भीष्म साहनी*

रूसी समाज के नैतिक, सामाजिक जीवन को परत-दर-परत उघेड़ती रूसी समाज के चितेरे लेव तोल्स्तोय की छह अनूठी रचनाओं का संग्रह जो प्रसिद्ध कथाकार भीष्म साहनी द्वारा अनूदित हैं।

पेपरबैक मूल्य : 80; सजिल्द : 495

जिन्दगी से प्यार और अन्य कहानियां

जैक लण्डन • *अनु. सत्यम, रामकृष्ण पाण्डेय*

समकालीन अमेरिकी साहित्य में यथार्थवादी परम्परा को नई ऊंचाइयों पर पहुंचाने वाले जैक लण्डन की चुनी हुई कहानियों का संग्रह।

पेपरबैक मूल्य : 40; सजिल्द : 175

आग्नेय वर्ष

कोंस्तान्तन फेदिन • *अनु. योगन्द्र नागपाल*

नवोदित सोवियत रूस के सफेद गार्डों और हस्तक्षेपकारियों के विरुद्ध ग्रहयुद्ध की धधकती ज्वाला का औपन्यासिक वर्णन, प्रसिद्ध उपन्यासकार कोंस्तान्तिन फेदिन का उपन्यास। *पेपरबैक मूल्य : 100; सजिल्द : 550*

ऐरोस्मिथ

सिंक्लेयर लुइस • *अनु. सत्यप्रकाश*

यह उपन्यास विज्ञान और चिकित्सा की दुनिया पर काबिज धनलोलुप व्यवसायियों और नौकरशाही के शिकंजे में घुटते-जूझते एक प्रतिभाशाली वैज्ञानिक और डाक्टर की कहानी है। अपने युग के महानतम व्यंग्यकार, अमेरिकी समाज के प्रखर आलोचक सिंक्लेयर लुइस की एक अद्भुत रचना।

पेपरबैक मूल्य : 80; सजिल्द : 495

मोपासां की संकलित कहानियां

अनु. नरेन्द्र सैनी

19वीं शताब्दी के सर्वश्रेष्ठ फ्रांसीसी कथाकार मोपासां की दस चुनिंदा कहानियां जिनमें उनकी रचनात्मकता की सम्पूर्णता और विषयवस्तु के वैविध्यपूर्ण विस्तृत दायरे का साक्षात्कार होता है। *पेपरबैक मूल्य : 50; सजिल्द : 250*

पहले सेट की पुस्तकें

रामो का भतीजा (उपन्यासिका) : देनी दिदेरो
अनुवाद : *अरविन्द सिंह* पे.बै. मूल्य : 45 रुपये

किसान (उपन्यास) : ओनोरे द बाल्ज़ाक
अनुवाद : *सत्यम* पे.बै. मूल्य : 80 रुपये

जंगल (उपन्यास) : अप्टन सिंक्लेयर
अनुवाद : *सत्यम* पे.बै. मूल्य : 90 रुपये

मार्क्सवाद और भाषा का दर्शन : वी. एन. वोलोशिनोव
अनुवाद : *विश्वनाथ मिश्र* पे.बै. मूल्य : 75 रुपये

स्त्रियों की पराधीनता : जॉन स्टुअर्ट मिल
अनुवाद : *प्रगति सक्सेना* पे.बै. मूल्य : 50 रुपये

श्रृंखला सम्पादक : **कात्यायनी/सत्यम**

ग्रंथ शिल्पी प्रकाशन ही नहीं, राजनीतिक और सांस्कृतिक आंदोलन भी है

इतिहास और राजनीतिशास्त्र की पुस्तकें

रोमिला थापर

सोमनाथ : इतिहास एक, स्वर अनेक 165.00/75.00

प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास 485.00 /175.00

द्विजेंद्र नारायण झा

भारतीय सामंतवाद 750.00

प्राचीन भारत 265.00/60.00

अयोध्या सिंह

हिंदुस्तान का स्वाधीनता आंदोलन और कम्युनिस्ट 225.00/75.00

फासीवाद 575.00

भारत का मुक्ति संग्राम 850.00/250.00

रॉल्फ मिलीबैंड

पूंजीवादी समाज में राजसत्ता 450.00

इरफ़ान हबीब

भारतीय इतिहास की व्याख्याएं और उसकी प्रमुख दृष्टियां 150.00/75.00

भारतीय इतिहास में मध्यकाल (संशोधित) 350.00

रोडनी हिल्टन (सं.)

सामंतवाद से पूंजीवाद में संक्रमण 250.00/125.00

हेरॉल्ड जे. लास्की

कम्युनिस्ट घोषणापत्र 200.00

राजनीति का व्याकरण 850.00/250.00

अमर्त्य सेन

अतीत का वर्तमान : भारतीय इतिहास के अध्ययन का संदर्भ 150.00

मुरली मनोहर प्रसाद सिंह

समाजवाद का सपना 650.00

स्वामी सहजानंद सरस्वती

खेत मजदूर और झारखंड के किसान 225.00/75.00

मेरा जीवन संघर्ष 550.00/200.00

क्रांति और संयुक्त मोर्चा 325.00/125.00

किसान कैसे लड़ते हैं ? 50.00

वी.आई. लेनिन

साम्राज्यपाद : पूंजीवाद की उच्चतम अवस्था 225.00/60.00

मार्क्स और एंगेल्स

कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र 20.00

कार्ल मार्क्स

गोथा कार्यक्रम की आलोचना 50.00

टी. बी. बॉटमोर

समाजशास्त्र : समस्याओं और साहित्य का अध्ययन 475.00/175.00

जे.डी. बरनाल

विज्ञान की सामाजिक भूमिका 985.00

लिओ ह्यूबर्मन

मनुष्य की लौकिक संपदा 350.00/125.00

दामोदर धर्मानंद कोसंबी

मिथक और यथार्थ 450.00

जी.वी. प्लेखानोव

मार्क्सवाद की मूल समस्याएं 125.00

माइकेल विट्ज़ेल

आर्यों के भारतीय मूल की कल्पना: इतिहास में मिथक का सृजन 225.00

कृष्णकान्त मिश्र

समाजवादी चिंतन का इतिहास (तीन भागों का सेट) 1650.00

देवीप्रसाद चट्टोपाध्याय

प्राचीन भारत में विज्ञान और समाज 750.00

समीर अमीन

विश्वीकरण के युग में पूंजीवाद 225.00

आर्थर मारविक

इतिहास का स्वरूप 350.00/150.00

रजनी पाम दत्त

आज का भारत (अनु. रामविलास शर्मा) 850.00/250.00

फासीवाद और सामाजिक क्रांति 450.00

विश्व का राजनीतिक परिदृश्य 375.00

अलेक्जेंडर आई. चिचेरोव

मुगलकालीन भारत की आर्थिक संरचना 450.00

हरबंस मुखिया

फ्युडलिज्म और गैरयूरोपीय समाज 350.00

सुमित सरकार

बंगाल में स्वदेशी आंदोलन 650.00/200.00

सामाजिक इतिहास लेखन की चुनौती 625.00

ई. एम. एस. नंबूदिरिपाद

भारत का स्वाधीनता संग्राम 850.00/250.00

दीपक कुमार

प्रौद्योगिकी और भारत में अंग्रेजी राज 525.00

के.एन. पणिक्कर

औपनिवेशिक भारत में सांस्कृतिक और विचारधारात्मक संघर्ष 325.00

आर्नल्ड हाउजर

कला का इतिहास दर्शन 500.00

अंतोनियो ग्राम्शी

सांस्कृतिक और राजनीतिक चिंतन के बुनियादी सरोकार 985.00/250.00

विस्तृत जानकारी के लिए लिखें

ग्रंथ शिल्पी (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड, बी-7, सरस्वती कामप्लेक्स, सुभाष चौक, लक्ष्मी नगर, दिल्ली 110092

एक नये क्रान्तिकारी नवजागरण–प्रबोधन की मुहिम के सहयात्री बनें!

दायित्वबोध उन बुद्धिजीवियों की एक वैचारिक पत्रिका है जिन्होंने जनता का पक्ष चुना है, जो विश्व ऐतिहासिक विपर्यय एवं पुनरुत्थान के वर्तमान दौर में भी बेहतर भविष्य से नाउम्मीद नहीं हैं, जो इस बेहतर भविष्य को दूर और उसके लिए नये सिरे से लड़ाई की तैयारी को कठिन मानते हुए भी उससे किसी न किसी रूप में अपने को जोड़े हुए हैं और जो क्रान्तियों की नयी श्रृंखला की सर्जना के लिए आज एक नये क्रान्तिकारी वैचारिक–सांस्कृतिक नवजागरण एवं प्रबोधन के महाउद्यम में, जुट जाने के लिए तत्पर हैं।

विगत 9 वर्षों के दौरान इस महाउद्यम के बेहद छोटे अंग के रूप में दायित्वबोध ने अपनी यात्रा जारी रखी है। दायित्वबोध अपने मिशन में किस हद तक सफल रहा है, यह तय करने का काम हम पाठकों पर छोड़ देते हैं। हां, अपने तईं हम लगातार असन्तोष के शिकार रहे हैं कि पत्रिका की सामग्री में विविधता और सृजनात्मकता का उस स्तर का समावेश नहीं कर पा रहे हैं, जो हमारी परिकल्पना में है। बहरहाल, हमारे तईं, यह असन्तोष जारी रहना चाहिए, तभी पत्रिका उत्तरोत्तर अधिक परिपक्व होती जायेगी।

अपनी छोटी से टीम और अनेक प्रकार की तकनीकी दिक्कतों के कारण हम दायित्वबोध को अभी नियमित नहीं कर पा रहे हैं, इसके प्रति हमारा सर्वाधिक असन्तोष है, और जाहिर है पाठकों का भी। चूंकि पूरी टीम प्रत्यक्ष राजनीतिक–सामाजिक–सांस्कृतिक जनकार्रवाइयों में भी भरपूर शिरकत करती है, इसलिए भी अक्सर अंक नियमित करने में दिक्कतें आती हैं। अपने पाठकों–सहयोगियों–शुभचिन्तकों का सहयोग हमें निरन्तर मिलता रहा है। लेकिन, अब भी पत्रिका का एक सम्पूर्ण आत्मनिर्भर आर्थिक ताना–बाना नहीं खड़ा हो सका है। पत्रिका को नियमित न बना पाने में यह भी एक अहम कारण रहा है।

इसलिए, पत्रिका को नियमित बनाने की दिशा में लगातार प्रयास जारी रखते हुए इसके आर्थिक ताने–बाने को ज्यादा टिकाऊ स्वरूप देने के लिए हम एक **'विशेष सहभागिता अभियान'** चला रहे हैं। हम अपने सभी पाठकों–सहयोगियों–शुभचिन्तकों से इस अभियान में भरपूर सहयोग की अपील करते हैं। यह सहयोग हमारी मुहिम को जारी रखने में बेहद मूल्यवान होगा।

. . . . . .

'विशेष सहभागिता अभियान' में आप इस तरह सहयोग कर सकते हैं :

- ⇨ पत्रिका का एक स्थायी कोष बनाने के लिए सहयोग दें।
- ⇨ पत्रिका की आजीवन सदस्यता लें। आजीवन सदस्यता राशि रु. 1000 है।
- ⇨ पत्रिका की वार्षिक सदस्यता लें। वार्षिक सदस्यता रु. 60.00 है (डाक व्यय रु. 12 अतिरिक्त)। अपने मित्रों–सहकर्मियों को भी सदस्यता हेतु प्रेरित करें।
- ⇨ पत्रिका के मद में अपने मित्रों–सहयोगियों से धनराशि एकत्र करें।
- ⇨ पत्रिका के वितरण में हाथ बटायें।
- ⇨ पत्रिका के अंकों पर अपने–अपने क्षेत्रों में चर्चाएं आयोजित करें और इसकी रपट हमें भेजें।
- ⇨ पत्रिका से नियमित संवाद जारी रखने के लिए हमें अपनी बेबाक प्रतिक्रिया–सलाह–सुझाव भेजें।

आप धनराशि मनीऑर्डर अथवा दायित्वबोध के नाम से चेक या ड्राफ्ट (लखनऊ में देय) से भेज सकते हैं।
पता : 29, यू.एन.आई. अपार्टमेंट, जीएच–2, सेक्टर–11, वसुंधरा, गाजियाबाद–201010

क्रान्तिकारी अभिवादन के साथ,
सम्पादक मण्डल, 'दायित्वबोध'